पिव पिव लागी प्यास
(ओशो द्वारा दादू-वाणी पर प्रश्नोत्तर सहित दिए गए अपूर्व प्रवचनों
का संकलन)

प्रवचन-क्रम

1. गैब मांहि गुरुदेव मिल्या...2
2. जिज्ञासा-पूर्तिः एक...22
3. राम-नाम निज औषधि..40
4. जिज्ञासा-पूर्तिः दो...58
5. सबदै ही सब उपजै..76
6. जिज्ञासा-पूर्तिः तीन...94
7. ल्यौ लागी तब जाणिए..114
8. जिज्ञासा-पूर्तिः चार...132
9. मन चित चातक ज्यूं रटै...151 10..जिज्ञासा-पूर्तिः पांच 171

पिव पिव लागी प्यास
पहला प्रवचन

गैब मांहि गुरुदेव मिल्या

ओशो, प्रवचनमाला के शुभारंभ पर श्री चरणों में हम अपने प्रेम और प्रणाम निवेदित करते हैं।
संत श्रेष्ठ दादू के कुछ पद हैं यहांः

(दादू)गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध।।
(दादू)सत्गुरु यूं सहजै मिला लीया कंठि लगाई।
दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाई।।
(दादू)सत्गुरु मारे सबद सों निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवे और।।
सबद दूध घृत राम रस कोइ साध विलोवण हार।
दादू अमृत काढिलै गुरुमुख गहै विचार।।
देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।।
सत्गुरु मिलै तो पाइए भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिए, साहिब का दीदार।।

ओशो, कृपापूर्वक हमें इसका मर्म समझा दें।

एक खजाने हो तुम, जिसकी चाबी खो गई है। या कि एक बीज हो, जिसे अपनी भूमि नहीं मिल पाई है। एक ऐसे सम्राट हो, जिसने अपने को भिखारी समझ रखा है।
और गहरी नींद है। और उस नींद में तुम स्वयं जाग सकोगे इसकी संभावना नहीं है। तुम चाहो भी कि तुम अपने ही हाथ से जग जाओ, तो भी यह घट न सकेगा। घट इसलिए न सकेगा कि जो सोया है स्वयं, वह स्वयं को कैसे जगाएगा? जगाने के लिए जागा होना जरूरी है।
और तुम अगर अपने अस्मिता और अहंकार से भरे हुए सोचते रहे कि क्यों किसी से कहें कि जगाओ। अपने को ही जगा लेंगे; तो ज्यादा से ज्यादा इसी बात की संभावना है कि तुम एक सपना देखो, जिसमें कि तुम मान लो कि तुम जाग गए हो। सोया हुआ आदमी जागने का सपना देख सकता है; जाग नहीं सकता; सोए हुए आदमी की ज्यादा से ज्यादा संभावना यही है कि वह सपने में देख ले कि जाग गया है। नींद को तोड़ने के लिए बाहर से कोई--तुमसे बाहर से कोई चाहिए जो तुम्हें चौंका दे।
गुरु का कोई और अर्थ नहीं है; गुरु का इतना ही अर्थ है कि जो जागा हुआ
है और जो तुम्हारी नींद को तोड़ सकता है। कुछ और करना भी नहीं है। कुछ पाना नहीं है, क्योंकि जो भी पाने योग्य है, वह तुम अपने साथ ही लेकर आए हो। कुछ खोना भी नहीं है सिवाय निद्रा के; सिवाय मूर्च्छा के; सिवाय एक बेहोशी के। इसलिए गुरु तुम्हें आचरण नहीं देता और जो गुरु तुम्हें आचरण दे, समझना कि वह गुरु नहीं है। गुरु तुम्हें सिर्फ जागरण देता है। और जागरण के पीछे चला आता है आचरण अपने आप। वह जागे हुए आदमी की जीवन-प्रक्रिया है आचरण। और सोया हुआ आदमी लाख उपाय करे आचरण को साधने के, साध भी ले, तो भी सब सपना ही है। सब पानी पर उठा हुआ बबूला है। उसकी कोई सार्थकता नहीं है। तुम सपने में साधु भी हो जाओ तो क्या फर्क पड़ता है? तुम सपने में चोर थे, तुम सपने में साधु हो गए; पर दोनों ही सपने हैं। जाग कर तुम पाओगे, न तो सपने का चोर सच था, न सपने का साधु सच था।
इसलिए असली सवाल चोर से साधु होने का नहीं है; न बेईमान से ईमानदार होने का है; न बुरे से भला होने का है; न पापी से पुण्यात्मा होने का है; असली सवाल जागे हुए होने का है। सोए से जागे हुए होने का है।
आचरण तो शास्त्र से भी मिल सकता है। आचरण तो समाज भी दे देता है। आखिर समाज भी बिना आचरण के तो जी नहीं सकता। इतने लोग हैं वहां, बिना आचरण के

बहुत कशमकश होगी, बहुत संघर्ष होगा, बहुत बेचैनी, परेशानी होगी। जीना मुश्किल हो जाएगा। समाज भी आचरण थोप देता है। परिवार भी आचरण देता है। शास्त्र भी आचरण देते हैं। गुरु जागरण देता है।
और जब गुरु भी आचरण देने लगें, तो समझना कि वे समाज के ही हिस्से हो गए हैं। धर्म से उनका नाता टूट गया। जब वे भी तुम्हें समझाने लगें कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, तब उनकी उपयोगिता नैतिक हो गई; धार्मिक न रही।
धर्म और नीति में बड़ा भेद है। नीति साधी जा सकती है; सोए हुए जागना जरूरी नहीं है। सिर्फ सपना बदलना पड़ता है। कठिन है सपने को बदलना भी; लेकिन बदला जा सकता है। तुम क्रोध कर सकते हो, तो तुम अक्रोध भी कर सकते हो। तुम हिंसा कर सकते हो; तो तुम अहिंसा का व्रत भी ले सकते हो। तुम कामवासना से भरे हो, तुम ब्रह्मचर्य का आचरण साध सकते हो।
इन सबके लिए जागना जरूरी नहीं है। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे; सिर्फ तुम्हारे ऊपर की खोल बदल जाती है। तुम वस्त्र बदल लेते हो; तुम नहीं बदलते। गुरु का संबंध तुम्हें बदल देने से है। और जब तुम बदल जाओगे तो एक आचरण पैदा होता है। वह आचरण नैतिक नहीं है, धार्मिक है।
नैतिक आचरण में सुगंध होती ही नहीं। वह ऐसा है जैसे प्लास्टिक के फूल ऊपर से लगा दिए गए हैं। धार्मिक आचरण की एक सुगंध है, एक सौरभ है। जैसे फूल वृक्ष में लगे हों, जैसे फूलों की जड़ें जमीन में फैली हों और फूल सूरज से रोशनी लेते हों, जमीन से हरियाली लेते हों, हवाओं से ताजगी लेते हों, जीवित हों। धार्मिक व्यक्ति इस विराट अस्तित्व का एक हिस्सा हो जाता है। नैतिक व्यक्ति अपने आसपास नीति का आचरण बना लेता है, लेकिन अस्तित्व का हिस्सा नहीं हो पाता।
इसलिए नैतिक व्यक्ति तो नैतिक हो सकता है बिना ईश्वर की खोज किए। ईश्वर आवश्यक नहीं है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति बिना ईश्वर की खोज किए धार्मिक नहीं हो सकता। और ऊपर से देखने में कभी-कभी यह भी हो सकता है कि प्लास्टिक का फूल दूर से ज्यादा सुंदर मालूम पड़े; असली फूल से भी ज्यादा सुंदर मालूम पड़े। और यह तो निश्चित ही साफ है कि असली फूल सुबह खिलेगा, सांझ मुर्झा जाएगा। नकली फूल मुर्झाता ही नहीं; बड़ा मजबूत है।
आचरण जीवंत हो, तो प्रतिपल बदलता है। जीवन का लक्षण बदलाहट है। आचरण
जड़ हो, प्लास्टिक का हो, बदलता ही नहीं। एक दफा पकड़ लिया, पकड़ लिया। झूठे आचरण में एक संगति होती है। सच्चे आचरण में एक जीवंत क्रांति होती है। सच्चा आचरण एक सतत धार है--गंगा की धार। बहती जाती है, प्रतिपल बहती है। सच्चे आचरण का एक ही लक्षण है कि वह धार सदा सागर की तरफ बहती है। घाट बदलते, जमीन बदलती, पहाड़ बदलते, लोग बदलते, लेकिन धार में एक ही गहरी संगति है। सब बदल जाता है, लेकिन सागर की तरफ यात्रा नहीं बदलती।
नैतिक आचरण तो पोखर की तरह है, सरोवर की तरह है। वह बदलता नहीं, वह कहीं जाता नहीं। वह अपने में बंद, केवल सड़ता है।
अगर तुम नैतिक बनने आए हो, तो तुम गलत आदमी के पास आ गए। अगर तुम्हें धार्मिक बनने की हिम्मत है, तो तुम्हें अनायास ही मुझसे मिलन हो गया है। तुम किस कारण आए हो, वह मुझे पता नहीं; मैं किस कारण यहां हूं, वह मुझे पता है। इसलिए तुम्हें पहले ही सचेत कर देना जरूरी है कि मैं कम से राजी नहीं हूं, मैं सिर्फ पूरे से राजी हूं।
भिखारी जब तक सम्राट ही न हो जाए, तब तक--तब तक कुछ हुआ नहीं। जब तक यह मृतवत जीवन परिपूर्ण अमृत को उपलब्ध न हो जाए, तब तक कुछ हुआ नहीं। जब तक तुम्हें ऐसा खजाना न मिल जाए, जिसे चुकाना संभव नहीं है, जिसे तुम लुटाओ भी तो बढ़ता चला जाता है, तब तक तुम कुछ छोटी-मोटी संपदा पा भी लो, तो उसका कोई मूल्य नहीं है।
और यह घटना तो तभी घट सकती है जब कोई आघात करे तुम्हारी नींद पर। यह घटना तभी घट सकती है, जब कोई तुम्हें मार ही डाले। तभी तुम्हारे भीतर जो अमृत का स्वर है, वह बजेगा।
दादू इसी अदभुत कहानी की बात कर रहे हैं। उनका एक-एक शब्द समझने जैसा है।

दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
यह शब्द "गैब"--पहली बात समझ लेने जैसी है। इसका अर्थ होता है रास्ते में, लेकिन अनायास।
गुरु अनायास ही मिलता है क्योंकि तुम तो उसे खोजोगे कैसे? अगर इतनी ही तुम्हारे पास रोशनी होती कि तुम गुरु को खोज लो, तो उसी रोशनी में तो तुम अपने को ही खोज लेते। गुरु को खोजने की जरूरत ही न थी। अगर तुम इतने ही जागे हुए होते कि गुरु को पहचान लेते, तो उतने जागरण से तो तुम अपने को ही पहचान लेते, गुरु को पहचानने का सवाल ही न उठता था। अगर तुम इतने ही समझदार थे कि तुम परख लेते कि कौन गुरु है और कौन गुरु नहीं है, तो उतना विवेक तो पर्याप्त है। उससे तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाती।
गुरु को तुम खोज नहीं सकते। सोया हुआ आदमी कैसे उसको खोजेगा, जो उसे जगाए? और अगर सोया हुआ आदमी उसको खोज ले जो उसको जगाए, तो जगाने की जरूरत कहां है? वह आदमी जागा ही हुआ है।
इसलिए गुरु अनायास मिलता है। यह बात तो पहली समझ लेने जैसी है। अनायास का अर्थ है कि तुम्हें पता भी नहीं होता और मिल जाता है--आकस्मिक! तुम्हें अनायास लगता है। एक बहुत पुरानी इजिप्त में प्रचलित लोकोक्ति है कि जब शिष्य तैयार होता है, तब गुरु उपलब्ध हो जाता है। ऐसा नहीं है कि शिष्य उसे खोजता है, गुरु ही उसे खोज लेता है।
ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता हो कि तुम यहां चले आए हो, भीतर से देखने
पर तुम पाओगे कि मैं तुम्हारे पास आया हूं। इसके पहले कि तुम यहां आए, मैं तुम्हारे पास पहुंच गया था, अन्यथा तुम यहां आते कैसे? कोई दूसरा तो उपाय नहीं है आने का। तुम यहां हो--तुम्हारे कारण नहीं; तुम यहां खींच लिए गए हो। शायद तुम्हें आज साफ भी न हो, लेकिन जब भी तुम्हें थोड़ा सा होश आएगा और आंखें खुलेंगी, तब तुम समझ पाओगे।
दादू उसी क्षण की बात कह रहे हैं। "दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या।"
खोजा भी न था। अपने तरफ से खोजने के लिए कोई क्षमता भी न थी। मिल भी जाता, तो पहचानने का कोई मापदंड न था। सामने भी खड़ा होता, तो आंखें बंद थीं। गले से भी लगा लेता, तो स्वयं का हृदय तो धड़कता ही न था। पहचानते कैसे? प्रत्यभिज्ञा कैसे होती कि यही गुरु है? नहीं, शिष्य गुरु को नहीं खोजता; गुरु ही शिष्य को खोजता है। भला गुरु रत्ती भर न चलता हो और शिष्य हजार मील चल कर आया हो, लेकिन गुरु ही शिष्य को खोजता है। शिष्य गुरु को खोज ही नहीं सकता।
शिष्य इतना ही कर सकता है कि उपलब्ध रहे; कि जब गुरु पुकारे तो पुकार सुन ले, इतना ही काफी है; कि जब गुरु खींचे तो खिंच जाए, अड़चन न डाले, इतना ही काफी है। बाधा न खड़ी करे; जब बुलावा आए, तो बुलावे के अनुसार चल पड़े। तिब्बत में कहावत है कि हजार बुलाए जाते हैं, एक पहुंचता है। वह भी ठीक है। क्योंकि नौ सौ निन्यानबे तो हर तरह की बाधा डालते हैं। वे आना नहीं चाहते। वे नहीं चाहते कि कोई उन्हें खींच ले। क्योंकि जब कोई उन्हें खींचता है तो उन्हें लगता है, यह तो हम परवश हुए। यह तो अपनी सामर्थ्य गई। यह तो हम एक तरह की गुलामी में पड़े कि कोई खींचे और हम खिंच जाएं; कोई जगाए और हम जग जाएं; कोई उठाए और हम उठ जाएं। अहंकार बड़ी बाधाएं खड़ी करता है। बस, शिष्य इतना ही कर सकता है कि बाधाएं खड़ी न करे। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ तुम बहने को राजी हो जाओ। तो जब भी तुम बहने को राजी हो, अचानक तुम पाओगे कि गुरु द्वार पर खड़ा हैः या तुम गुरु के द्वार पहुंच गए हो।
जीवन बड़े रहस्यपूर्ण नियमों से बना है। जहां जरूरत होती है, वहां घटना घट जाती है।
गर्मी पड़ती है, धूप उतरती है आकाश से, आग जलती है जैसे, फिर वर्षा आ जाती है। गर्मी के पीछे वर्षा का आना एक नैसर्गिक नियम है। जब इतनी गर्मी पड़ जाती है, सब उत्तप्त हो जाता है, जल सूख जाता है, पृथ्वी सूखी हो जाती है, वृक्ष दीन दिखाई पड़ने लगते हैं, इस उत्तप्त अवस्था के कारण ही बादलों को निमंत्रण पहुंच जाता है। बादल भागे चले आते हैं।

वैज्ञानिक कहता है कि जब बहुत गर्मी पड़ती है, तो हवा विरल हो जाती है।
जब हवा विरल हो जाती है, तो आस-पास की हवाएं दौड़ कर उस गड्ढे को भरने के लिए आती हैं। उन्हीं हवाओं के साथ बादल भी भागे चले आते हैं। इसलिए जिस वर्ष जितनी ज्यादा गर्मी पड़ती है, उस वर्ष उतने ही बादलों का आगमन हो जाता है। जीवन में एक गहरी व्यवस्था है। यहां कुछ भी अनियमपूर्ण नहीं है। कुछ
भी अराजक नहीं है। जब हृदय उत्तप्त होता है शिष्य का, जलता है, रोता है, पीड़ित होता है जीवन के दुखों से--अचानक कोई बदली चली आती है खिंची हुई। वह बदली ही गुरु है। और मिलन आकस्मिक है। गुरु की तरफ से नहीं, शिष्य की तरफ से आकस्मिक है।
दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या...
और गैब का दूसरा अर्थ राह भी होता है। एक अर्थ होता है, अनायास आकस्मिक; और दूसरा अर्थ होता है, मार्ग, राह।
यह भी समझ लेने जैसा है कि जब तक तुम राह पर नहीं हो, गुरु न मिलेगा। थोड़ा सा तो तुम्हें राह पर होना ही पड़ेगा। राह का मतलब है कि तुम्हें थोड़ी सी तो खोज करनी ही पड़ेगी; यह भी जानते हुए कि तुम्हारी खोज से कुछ होने वाला नहीं है, तुम पहुंचोगे नहीं। तुम्हारी सब खोज अंधेरे में टटोलने जैसी है। लेकिन तुम टटोलते रहोगे तो ही गुरु मिलेगा। जिन्होंने टटोला ही नहीं है, उनको गुरु नहीं मिल सकता।
तुम्हारी थोड़ी सी खोज तो चाहिए। वही तो तुम्हारी प्यास को प्रकट करेगी। तुम्हारा थोड़ा प्रयत्न तो चाहिए। माना कि तुम नींद में हो, चल नहीं सकते, करवट तो बदल ही सकते हो। माना कि तुम नींद में हो, तुम ठीक-ठीक गुरु को पुकार नहीं सकते, लेकिन सपने में भी तो आदमी बुदबुदाता है, अनर्गल बोलता है। उस अनर्गल बोलने के पीछे भी आकांक्षा तो होगी ही बुलाने की। गहरी से गहरी नींद में भी अगर तुम गुरु को खोज रहे हो, यह जानते हुए भलीभांति कि तुम गुरु को खोज नहीं सकते क्योंकि तुम्हारे पास कोई कसौटी नहीं है, जिस पर तुम कस लोगे कि कौन सोना है, कौन सोना नहीं है। लेकिन तुम खोज रहे हो, आकांक्षा है, अभीप्सा है; तुम्हारी अभीप्सा के आधार पर ही गुरु का आगमन हो सकता है। इसलिए राह पर तुम्हारा होना जरूरी है।
संसार में करोड़ों लोग हैं, सभी को गुरु नहीं मिलता। उनकी आकांक्षा ही नहीं है। वे तो हैरान होते हैं। अगर तुम्हें गुरु मिल जाए, तो वे हैरान होते हैं कि तुम किस पागलपन में पड़े हो। भले-चंगे आदमी थे, सब ठीक-ठीक चल रहा था, यह क्या गड़बड़ में उलझ गए हो। वे तुम्हें बचाने की भी कोशिश करते हैं।
क्योंकि गुरु के मिलने का अर्थ है, तुम उनकी भीड़ के हिस्से न रहे। गुरु के मिलने का अर्थ है कि अब तुम उस राजमार्ग पर न चलोगे, जहां सारी दुनिया चल रही है। अब तुमने एक पगडंडी चुन ली है। तुम खतरनाक हो गए। तुम राह से उतर कर चल रहे हो। तुमने बीहड़ में प्रवेश किया, तुमने अनजान से प्रेम बना लिया, तुम अपरिचित के आकर्षण में पड़ गए। तुम दुस्साहस कर रहे हो।
भीड़ तुम्हें कहेगी, मत करो पागलपन! यहीं चलो, जहां सब चलते हैं। यहां रास्ता साफ-सुथरा है, सीमेंट से पटा है, आगे-पीछे का सब पता है, किनारे पर मील के पत्थर लगे हैं, नक्शा उपलब्ध है। कहां हम जा रहे हैं, इसका हमें ठीक-ठीक बोध है। और फिर सारे लोग साथ हैं, हम अकेले नहीं हैं। तुम अकेले उतर रहे हो। किसके पीछे जा रहे हो? क्या पक्का है कि वह तुम्हें पहुंचाएगा और भटका न देगा?
गुरु का हाथ पकड़ना इस संसार में सबसे बड़ा दुस्साहस है। इसलिए थोड़े से हिम्मतवर लोग ही कर पाते हैं। हिमालय पर चढ़ जाना इतना बड़ा दुस्साहस नहीं है। चांद पर पहुंच जाना इतना बड़ा दुस्साहस नहीं है। क्योंकि चांद पर पहुंचने के पहले सारी व्यवस्था कर ली गई होती है। खतरे का कम से कम उपाय है। लेकिन जब तुम गुरु के साथ चलना शुरू करते हो, तब तो वहां श्रद्धा के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है। सिर्फ भरोसा है। और भरोसा तो बहुत ही नाजुक चीज है। फिर भरोसा, भरोसा ही है। वैसा होगा ही, इसका कोई ठिकाना नहीं है।

तो जब भी कोई किसी गुरु को पा लेता है, तब सारा समाज उसे खींचने की कोशिश करता है। और तब समाज ने उपाय भी किया है; ऐसे खतरनाक लोगों को खतरे से बचाने के लिए समाज ने झूठे गुरु भी पैदा किए हैं। वे समाज का हिस्सा हैं। वे पगडंडी पर नहीं ले जाते, वे राजमार्ग पर ही चलाते हैं। ईसाई पादरी है, पुरोहित है; हिंदू मंदिर का पुजारी है, पंडित है, जैन साधु है, मुनि है, अब वे गुरु नहीं हैं। क्योंकि वे भी उसी मार्ग पर चलाते हैं, जिस मार्ग पर भीड़ चल रही है।
महावीर गुरु थे। जो महावीर के साथ चले, वे हिम्मतवर लोग रहे होंगे; लेकिन जैन मुनि गुरु नहीं है। वस्तुतः अगर तुम गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे कि जैन मुनि अपने अनुयायियों के पीछे चलता है; आगे नहीं चलता। तुम जाकर गौर से निरीक्षण करो--
एक जैन मुनि मुझे मिलने आना चाहते थे। उन्होंने खबर भेजी, लेकिन उन्होंने कहा, मैं बड़ी मुसीबत में हूं; अनुयायी आने नहीं देते। अब यह बड़े मजे की बात है। गुरु आना चाहता है, शिष्य आने नहीं देते; तब तो शिष्य गुरु है और गुरु शिष्य है। वे नहीं आ पाए क्योंकि अनुयायी खिलाफ हैं। वे कहते हैं, वहां जाने की जरूरत नहीं। गुरु मोहताज है, क्योंकि अगर वह जाए, तो अनुयायी पीछे से हट जाएंगे। वह उनके सहारे जी रहा है। वह समाज का हिस्सा है।
ध्यान रखना, गुरु समाज का हिस्सा कभी भी नहीं है। गुरु सदा ही विद्रोही है। वह परमात्मा का हिस्सा है, समाज का नहीं। और समाज परमात्मा- विरोधी है। अन्यथा सभी पहुंच जाते। बहुत थोड़े पहुंच पाते हैं। विरले पहुंच पाते हैं, कभी-कभी पहुंच पाते हैं। क्योंकि जाने के लिए अकेला होना जरूरी है।
तो पहले तो गुरु तुम्हें अपने साथ ले लेता है, एक पगडंडी पर ले चलता है, जो तुम्हारे लिए बिल्कुल अनजानी है; जिसका कोई नक्शा भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। कोई कुंजी, कोई गाइड भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। और गुरु भी कुछ कह नहीं सकता, क्योंकि वह बार-बार यही कहता है कि जो मैंने जाना है, वह तुम्हें भी जना दूंगा, लेकिन बता नहीं सकता हूं। क्योंकि वह शब्द में आता नहीं है। भरोसे पर तुम चलते हो। प्रेम का पतला सा धागा ही एकमात्र सहारा है।
और एक घड़ी ऐसी आती है जब गुरु तुम्हें बिल्कुल अकेला भी छोड़ देगा उस बीहड़ में। क्योंकि गुरु भी तो समाज ही है। जब तक दो हैं, तब तक थोड़ा सा समाज तो है ही। परमात्मा से मिलन तो बिल्कुल अकेले में होगा। तो पहले तो गुरु तुम्हें समाज से छीन लेगा, भीड़ से छीन लेगा, राजपथों से मुक्त कर देगा। और एक दिन तुम पाओगे कि वह भी विलीन हो गया है बीहड़ में तुम्हें छोड़ कर। वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। उसका भी हट जाना जरूरी है। तभी तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। अन्यथा गुरु बीच में खड़ा रहे, तो गुरु की पीठ ही तुम देखते रहोगे। गुरु के हटते ही परमात्मा के सन्मुख हो जाओगे। बड़े से बड़ा दुस्साहस है। लेकिन जो राह पर हैं, उन्हीं को गुरु मिल सकता है। राह का मतलब यह है
कि जिनके मन में बेचैनी है, खोज की आकांक्षा है, प्यास है, जो तड़फ रहे हैं, नहीं जानते कहां जाएं, लेकिन जाना चाहते हैं। नहीं जानते कैसे पैर उठाएं, लेकिन उठाना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति को ही तो सिखाया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को ही तो जगाया जा सकता है। क्योंकि अगर तुम किसी की आकांक्षा के विपरीत उसे जगाना चाहो, तो कैसे जगा पाओगे? अगर वह जगने को राजी ही न हो और नींद के मधुर सपनों में खोया हो और सपनों में रस ले रहा हो, तुम उसे कैसे जगाओगे? जगाने के लिए बाहर का हाथ चाहिए, लेकिन भीतर वाले का भी सहारा चाहिए। भीतर वाला भी साथ दे, बाधा न दे।
गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
तो गैब के दो अर्थ है, अनायास मिलता है गुरु, लेकिन केवल उन्हीं को मिलता है जो किसी तरह की खोज कर रहे थे। अंधी खोज भला, अनजानी! गलत जा रहे थे, कुछ भी कर रहे थे, जिससे उन्हें कुछ भी पता नहीं था कि क्या होगा, क्या नहीं होगा; लेकिन टटोलते थे। जब भी गुरु का हाथ मिला है किसी को, तो वह तभी

मिला है, जब वह टटोल रहा था अंधेरे में। टटोलते हाथ को ही गुरु का हाथ मिला है। जिसने टटोलना ही शुरू नहीं किया था उसे गुरु का हाथ कैसे मिल सकता है? ... पाया हम परसाद।
और दादू कहते हैं कि फिर गुरु ने जो दिया, वह प्रसाद है। वह कोई सौदा नहीं है।
प्रसाद के अर्थ को ठीक से समझ लें। जो तुम्हें दिया जाता है, तुम्हारी किसी योग्यता के कारण नहीं, देने वाले के पास इतना ज्यादा है, इसलिए देता है। तुम योग्य हो पाने के, इसलिए नहीं।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अगर तुम्हारी योग्यता से दिया जाए, तो वह प्रसाद नहीं है। तुमने उसे अर्जित किया। वह तुम्हारे श्रम का फल है। तुम उसको पाने के हकदार थे। अगर तुमने अपने ही श्रम से पाया है, तो वह प्रसाद नहीं है। तुम उसके हकदार हो गए थे। तुम्हें धन्यवाद भी देने की जरूरत नहीं है क्योंकि तुमने श्रम किया था, तुम्हें मिला; बात खत्म हो गई। कोई अनुग्रह का सवाल भी नहीं है।
प्रसाद का अर्थ है, जिसे पाने की तुम्हारी योग्यता तो न थी, आकांक्षा भला रही हो, श्रम तुमने कुछ भी न किया था क्योंकि तुम्हें पता ही न था कैसे करें। उपाय तुमने कुछ भी न किया था, यत्न तुमने कुछ भी न किया था, अभीप्सा गहरी थी, प्यास गहरी थी। बस, वही तुम्हारी योग्यता थी। गुरु देता है अपने आधिक्य से।
जीसस की बड़ी पुरानी कथा है; वह प्रसाद की कथा है। एक बहुत बड़े बगीचे के मालिक ने कुछ मजदूरों को बुलाने के लिए अपने मैनेजर को भेजा। सुबह थी, सूरज उगता था, वह कुछ मजदूरों को लेकर आया। लेकिन काम ज्यादा था और मालिक शाम तक काम पूरा कर लेना चाहता था। तो दोपहर उसने मैनेजर को फिर भेजा। फिर वह और मजदूरों को लाया, लेकिन फिर भी काम ज्यादा था और मजदूर फिर भी कम थे। उसने फिर मैनेजर को भेजा। जब तक वह मजदूरों को खोज कर लाया, तब तक सूरज ढलने के करीब ही हो गया था। दिन जा चुका था।
फिर उस मालिक ने सभी मजदूरों को इकट्ठा किया, जो सुबह आए थे, जो दोपहर
आए थे और जो अभी-अभी आकर खड़े हुए थे, जिन्होंने कुछ भी न किया था और सभी को समान वेतन दे दिया।
सुबह जो मजदूर आए थे, निश्चित नाराज हो गए, शिकायत से भर गए। उन्होंने कहाः यह तो हद अन्याय है। हम सुबह से आए हैं और दिन भर हमने हड्डी तोड़ कर श्रम किया है। खून पसीने की तरह बहाया है और हमें भी उतना ही मिल रहा है। फिर कुछ लोग दोपहर आए हैं, इन्हें आधा मिलना चाहिए--इनको भी उतना ही मिल रहा है। और अन्याय की तो सीमा टूट गई, जो लोग अभी-अभी आकर खड़े हुए हैं; जिन्होंने कुछ किया ही नहीं हैं, सिर्फ आए हैं और जाने का वक्त आ गया है, उनको भी उतना ही मिल रहा है।
उस मालिक ने कहाः तुम इसकी फिकर मत करो कि मैं किसको क्या दे रहा हूं। तुम इसकी फिकर करो कि तुम्हें जो मिल रहा है वह तुम्हारे मजदूरी के लिए पर्याप्त है या नहीं? तुमने जितना श्रम किया है, उतना तुम्हें मिल गया है? उन मजदूरों ने कहाः उतना हमें मिल गया है।
तो उसने कहाः फिर तुम फिकर छोड़ दो। इनको मैं इनके श्रम करने के कारण नहीं देता, मेरे पास बहुत ज्यादा है इसलिए देता हूं। मेरे पास इतना ज्यादा है कि मैं क्या करूं, इसलिए देता हूं। जो सांझ आए हैं, अभी-अभी आए हैं, उनको भी देता हूं। तुम्हें शिकायत का कोई कारण न होना चाहिए।
इसे थोड़ा समझें। प्रसाद तो उनको मिला, जो सांझ आए थे। जो सुबह आए थे, उन्हें प्रसाद नहीं मिला। उन्होंने तो श्रम किया, अर्जित किया।
भारत में दो संस्कृतियां हैं। एक संस्कृति का नाम है--जैन और बौद्धों
की जो संस्कृति है, उसका नाम है श्रमण संस्कृति। उसका जोर है, श्रम करो तो मिलेगा। तुम जितना करोगे, उतना मिलेगा। उनकी जीवन के प्रति दृष्टि गणितज्ञ की दृष्टि है।
फिर उनसे बिल्कुल भिन्न हिंदुओं की संस्कृति है; वह प्रसाद की संस्कृति है। किसी ने कभी उसे प्रसाद नाम दिया नहीं, लेकिन देना चाहिए। जैन और बौद्ध तो अपनी संस्कृति को "श्रमण" कहते हैं। ब्राह्मण की

संस्कृति को, हिंदू की संस्कृति को "प्रसाद" कहना चाहिए। क्योंकि उसका कहना यह है कि तुम कुछ भी कितनी ही योग्यता अर्जित कर लो, तुम परमात्मा को पाने के हकदार कभी भी नहीं हो सकते। वह इतना बड़ा है--तुम्हारी योग्यता सदा छोटी रहेगी। अगर योग्यता से ही उसे पाना है, तो पाने की बात ही छोड़ दो। फिर यह मिलना होने ही वाला नहीं है। वह तो मिलता प्रसाद से है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम कुछ मत करो। मिलेगा तो राह पर। तुम कुछ करो; लेकिन तुम्हारे करने से नहीं मिलता है। तुम्हारे करने से मिलने की संभावना बढ़ती है। जैसे सांझ आए मजदूर थे, कम से कम आए तो थे। किया कुछ भी न था। तुम राह पर पाए जाने चाहिए, खोजते हुए तुम मिलने चाहिए, परमात्मा प्रसाद की तरह बरस जाता है। और जिन्होंने भी उसे जाना है, उन सभी ने यह कहा है कि अब हम जब देखते हैं लौट कर पीछे, तो जो हमने किया था, वह तो नाकुछ था। क्या किया था? क्या करोगे? रोज सुबह घंटे भर आंख बंद, बैठ कर माला फेरी थी। इसको तुम परमात्मा को पाने का पर्याप्त आधार मानते हो? कि तुमने राम-राम जपा था रोज घंटे भर बैठ कर, उस राम-राम जपने को तुम मोक्ष को पाने के लिए पर्याप्त योग्यता मानते हो?
जिस दिन तुम पाओगे, उस दिन तुम यह भी पाओगे कि जो किया था, उससे तो इसका कोई संबंध नहीं मालूम होता। वह जो किया था, वह तो न किए के बराबर है। करने से तुम्हारी आकांक्षा तो पता चली थी, कोई योग्यता अर्जित न हुई थी। तुम चाहते थे कि परमात्मा मिले; यह प्यास तो पता चली थी, लेकिन तुमने उसे पाने के लिए कोई संपदा अर्जित कर ली है, ऐसा कुछ भी न हुआ था।
परमात्मा तुम्हारे प्रयत्न से नहीं मिलता यद्यपि तुम प्रयत्न न करो,
तो भी न मिलेगा। इस जटिलता को तुम ठीक से समझ लेना। तुम प्रयत्न करोगे तो ही मिलेगा, लेकिन तुम्हारे प्रयत्न से नहीं मिलता। क्योंकि तुम्हारा प्रयत्न कितना छोटा है! तुम एक चम्मच लेकर सागर को भरने चले हो। जब सागर तुम्हारे ऊपर बरसेगा, तब तुम क्या कहोगे कि चम्मच के कारण बरस रहा है? तब तुम फेंक दोगे चम्मच को। चम्मच से तुम्हारी केवल प्यास का पता चला था। तुमने अपना निवेदन भेज दिया था उसके चरणों में। उसे खबर मिल गई थी कि तुम राजी हो।
दादू कहते हैंः दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
गुरु भी जो देता है, वह प्रसाद है। उसके पास बहुत है। उसे परमात्मा मिल गया है। वह बांटना चाहता है। वस्तुतः वह बोझिल है। जैसे बादल पानी से भरे हों और बोझिल हैं। और चाहते हैं कि कोई भूमि मिल जाए, जहां बरस जाएं।
कोई अतृप्त, प्यासी भूमि मिल जाए, जो उन्हें स्वीकार कर ले। जैसे दीया जलता है, तो चारों तरफ रोशनी बिखरनी शुरू हो जाती है--बंटना शुरू हो गया। फूल सुगंधित होता है, कली खिलती है, हवाएं उसकी गंध को लेकर दूर दिगंत में निकल जाती हैं--बांटना शुरू हो गया।
जब भी तुम्हारे पास कुछ होता है, तो तुम बांटना चाहते हो। सिर्फ वे ही पकड़ते हैं और कंजूस होते हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है। इसे भी तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि यह बात थोड़ी पहेली सी मालूम पड़ेगी।
मैं कहता हूं, जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे ही केवल पकड़ते हैं और कंजूस होते हैं। और जिनके पास कुछ है, वे कभी कृपण नहीं होते और कभी नहीं पकड़ते। क्योंकि जिनके पास कुछ है, वे यह भी जानते हैं कि बांटने से बढ़ता है। जिनके पास कुछ नहीं है, वे डरते हैं क्योंकि बांटने से घटेगा।
गुरु तुम्हें देता है इसलिए नहीं कि तुमने साधना से, श्रम से योग्यता
पा ली है, नहीं, गुरु तुम्हें देता है क्योंकि तुम्हारी आंखों में आंसू हैं। गुरु तुम्हें देता है क्योंकि तुम्हारे हृदय में प्यास है। गुरु तुम्हें देता है क्योंकि तुम्हारी श्वास-श्वास में एक खोज है। बस, इतना काफी है। तुम पात्र हो क्योंकि तुम खाली हो। पात्रता के कारण तुम पात्र नहीं हो।
यह पात्र शब्द बड़ा अच्छा है। उसी से पात्रता शब्द बनता है। पात्रता
से हम अर्थ लेते हैं, योग्यता; लेकिन अगर ठीक से समझो तो पात्र का इतना ही मतलब होता है, जो खाली है, जो भरने को राजी है। कोई अगर भरे, तो वह बाधा न डालेगा। बस, पात्र का इतना ही अर्थ होता है। धर्म के जगत में इतनी ही

पात्रता है कि तुम खाली हृदय को लेकर खड़े हो जाओ; गुरु का प्रसाद तुम्हें भर देगा।
... पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध।
दादू कहते हैंः मेरे सिर पर हाथ रख दिया गुरु ने।
किस सिर पर हाथ रखा जा सकता है? जो सिर झुका हो। अन्यथा हाथ रखा ही नहीं जा सकता। सिर्फ झुके सिर पर हाथ रखा जा सकता है। सिर्फ झुका सिर ही गुरु के हाथ से मिल सकता है।
जैसे नदी की धार नीचे की तरफ बहती है, गहरी से गहरी खाई की तरफ बहती है
और अंततः सागर में गिर जाती है क्योंकि सागर सबसे बड़ी खाई है। पैसिफिक महासागर पांच मील गहरा खड्डा है। तो सारे जगत का पानी बहा जा रहा है सागरों की तरफ। पूरब ने एक पूरा विज्ञान खोजा है। शिष्य झुके, ताकि गुरु दे सके। अगर शिष्य झुकना नहीं जानता, तो गुरु तैयार भी हो देने को, तो भी देने का कोई उपाय नहीं।
मेरे पास कई बार लोग आते हैं; वे कहते हैं कि क्या संन्यस्त होना जरूरी है, तभी आप हमारी सहायता करेंगे?
मैं उनसे कहता हूं, मेरी सहायता तुम्हें सदा उपलब्ध है। लेकिन संन्यस्त होकर ही तुम उसे पा सकोगे। मेरे तरफ से उपलब्ध होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी तरफ से लेने की क्षमता भी तो होनी चाहिए। संन्यस्त होने का कोई और अर्थ नहीं है। दीक्षित होने का कोई और अर्थ नहीं है; इतना ही अर्थ है कि हम झुकते हैं। बस, इतना ही अर्थ है कि हम झुकने को राजी हैं। हमारी तरफ से कोई बाधा नहीं है। अगर आप बरसो, तो हमारा पात्र सामने रखा है। कठिन हो जाता है समझना उन्हें क्योंकि वे सोचते हैं, अगर मैं सहायता करने को तैयार हूं, तो फिर संन्यास, दीक्षा इस सबका क्या प्रयोजन है? क्यों न बिना संन्यस्त हुए, बिना दीक्षित हुए उनको सहायता मिल जाए? शायद उन्हें लगता है कि मैं थोड़ा पक्षपातपूर्ण हूं।
वे गलती में हैं। मैं उन्हें भी देना चाहता हूं, लेकिन वे लेने को राजी नहीं हैं। वह ऐसे ही हैं, जैसे पहाड़ की चोटी हो; बहती गंगा की धार से कहे कि क्या तू सागर को ही दिए चली जाएगी? हम भी खड़े हैं। आखिर हमारी तरफ क्यों नहीं चली आती? तो गंगा कहेगी, मैं, तो राजी हूं, लेकिन तुम इतने ऊंचे खड़े हो कि वहां तक आने का कोई उपाय नहीं है।
जलधार नीचे की तरफ जा रही है। गुरु से शिष्य की तरफ एक जीवंत धार बहती है। अगर तुम ठीक समझो, तो वही स्वर्ग की गंगा है। गुरु की तरफ से एक प्रसाद बहता है, लेकिन उसके लिए तुम्हें झुके हुए होना जरूरी है; तभी तुम उसे झेल पाओगे। अन्यथा वह बरसेगा भी और तुम खाली के खाली रह जाओगे। अगर तुम पहले से ही भरे हुए हो, तो तुम खाली रह जाओगे। अगर तुम खाली हो, तो भर जाओगे। इसीलिए तो धर्म पहेलियों जैसा लगता है। पहेलियां हैं, लेकिन सीधी-साफ हैं। जरा सी भी समझ हो, तो अड़चन नहीं है।
नदी बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो; झुको, अंजुली बनाओ हाथ की, तो तुम्हारी प्यास बुझ सकती है। लेकिन तुम अकड़े ही खड़े रहो, जैसे तुम्हारी रीढ़ को लकवा मार गया हो तो नदी बहती रहेगी तुम्हारे पास और तुम प्यासे खड़े रहोगे। हाथ भर की ही दूरी थी, जरा से झुकते कि सब पा लेते। लेकिन उतने झुकने को तुम राजी न हुए। और नदी के पास छलांग मार कर तुम्हारी अंजुली में आ जाने का कोई उपाय नहीं है। और आ भी जाए, अगर अंजली बंधी न हो, तो भी आने से कोई सार न होगा।
शिष्यत्व का अर्थ हैः झुकने की तैयारी। दीक्षा का अर्थ हैः अब मैं झुका ही रहूंगा। वह एक स्थायी भाव है। ऐसा नहीं है कि तुम कभी झुके और कभी नहीं झुके। शिष्यत्व का अर्थ है, अब मैं झुका ही रहूंगा; अब तुम्हारी मर्जी। जब चाहो बरसना, तुम मुझे गैर-झुका न पाओगे।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध।
और जब झुका हुआ सिर हो शिष्य का, तो बड़ी क्रांतिकारी घटना संभव हो जाती है।

मनुष्य के शरीर में सात चक्र हैं। साधारणतः तुम पहले ही चक्र से परिचित हो पाते हो, क्योंकि प्रकृति उसी चक्र के साथ अपना सारा काम चलाती है--वह है, काम-चक्र, मूलाधार। जहां से कामवासना उठती है, जहां से जीवन का प्रवाह चलता रहता है।
लेकिन वह सबसे नीचा चक्र है। उस चक्र में जीने का अर्थ है, जैसे कोई आदमी महल के होते हुए, बस महल के बाहर पोर्च में ही घर बना ले। पोर्च भी महल का हिस्सा है और सुंदर है। मेरे मन में कोई निंदा नहीं है किसी बात की। पोर्च में कुछ भी बुरा नहीं है। पोर्च बिल्कुल सुंदर है, उसकी जरूरत है। बाहर से आए तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। भीतर से गए तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। धूप होगी, वर्षा होगी, तो पोर्च बचाएगा; लेकिन पोर्च कोई रहने की जगह नहीं है कि वहीं रहने लगे।
एक यूनान में बहुत बड़ा विचारक हुआ, झेनो। उसकी विचार-पद्धति का नाम स्टोइक है। ग्रीक भाषा में पोर्च का नाम है, स्टोआ। वह पोर्च में ही रहता था झेनो, इसलिए उसके पूरे दर्शनशास्त्र का नाम स्टोइक हो गया स्टोआ से। पोर्च में रहने वाला झेनो वह कभी महल के भीतर नहीं गया। वह पोर्च में ही जीआ, पोर्च में मरा। और कोई पूछता कि तुम इस पोर्च में क्यों जी रहे हो? तो वह बताता था कि वह उसकी त्यागपूर्ण दृष्टि है।
लेकिन ऐसा त्याग मूढ़तापूर्ण है। ऐसा ही त्याग तुम भी कर रहे हो कि तुम कामवासना में ही जी रहे हो। वह जीवन का पोर्च है, इससे ज्यादा नहीं। महल बहुत बड़ा है। और उस महल में बड़े अनूठे कक्ष हैं और उसके अंतर्गृह में स्वयं परमात्मा विराजमान है। तुम पोर्च में बैठे रहो; तुम यूं ही व्यर्थ जीवन को गंवा दोगे।
सात चक्र हैं; पहला चक्र काम है और सातवां चक्र सहस्रार है। जब शिष्य
का सिर झुकता है गुरु के चरणों में, और केवल बाहर का ही सिर नहीं झुकता, भीतर का अहंकार भी झुक जाता है, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है कि बाहर सिर के साथ भीतर का अहंकार भी झुक जाता है। ध्यान रखना, क्योंकि बाहर का सिर झुकाना तो बहुत आसान है। कम से कम भारत में बहुत ही आसान है। लोग अभ्यस्त हैं, औपचारिक है। सिर झुकाने में उन्हें कुछ लगता ही नहीं। वह केवल परंपरागत है। लेकिन अगर तुम उनके अहंकार की तस्वीर ले सको, तो भारतीय को तुम झुकते हुए देखोगे, सिर तो झुका हुआ आएगा तस्वीर में, अहंकार खड़ा हुआ आएगा तस्वीर में। और यह भी हो सकता है कि सिर झुकाने से भी अहंकार मजबूत हो रहा हो। जीवन जटिल है। एक नई अकड़ पकड़ रही हो कि मैं तो विनम्र आदमी हूं, देखो कहीं भी सिर झुका देता हूं। देखो मेरी विनम्रता!
जब तुम्हारा सिर भी झुकता है और तुम्हारे भीतर का सिर भी झुक जाता है-- तुम्हारा अहंकार, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है, जब तुम पूरे ही झुके हुए होते हो, तो गुरु का हाथ अगर उस घड़ी में तुम्हारे सहस्रार पर पड़ जाए, तो उसकी जीवन-धारा तुममें प्रवाहित हो जाती है। और जो काम तुम अपने ही हाथ से जन्मों में न कर पाते, वह क्षण में घटित हो जाता है। वह प्रसाद हो जाता है। तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा गुरु की जीवन-ऊर्जा के साथ उर्ध्वगामी हो जाती है। तुम्हारा सातवां चक्र सक्रिय हो जाता है।
और यह जो चक्र सक्रिय हो जाए, तो दादू कहते हैंः देखा अगम अगाध।
इसलिए वे प्रसाद कहते हैं। अपने बस से यह नहीं हुआ है। अपनी तरफ से कुछ भी न किया था, सिर्फ झुक गए थे। यह भी कोई करना है। लेकिन गुरु का हाथ पड़ गया सिर पर और क्षण भर में एक क्रांति हो गई। गुरु की बहती ऊर्जा ने तुम्हारे जीवन के सारे छिन्न-भिन्न तार जोड़ दिए। खंडित वीणा अखंड हो गई। तो कल तक टूटी धार थी, संयुक्त हो गई। कल तक, क्षण भर पहले तक जिस भीतर के मंदिर का तुम्हें कोई पता न था, उसका कलश दिखाई पड़ने लगा।
इस जीवन को अगर तुमने कामवासना से देखा है, तो यह संसार है। इसी जीवन
को अगर तुमने सहस्रार से, समाधि से देखा है, तो यही अगम-अगाध है। संसार यही है, कुछ बदलता नहीं है; तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारे खड़े होने की जगह बदल जाती है।
और जिस दिन तुम समाधि के केंद्र से संसार को देखते हो, संसार बचता ही नहीं; परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। हर फूल-पत्ते में वही, हर कंकड़-पत्थर में

वही; आकाश, चांद-तारों में वही। लोगों में झांको और तुम उसी को पाते हो। हवा के झोंके को स्पर्श करो, उसी का स्पर्श होता है। आंख बंद करो, वही दिखाई पड़ता है। आंख खोलो, वही दिखाई पड़ता है। लेकिन यह जीवन-ऊर्जा जब समाधि के द्वार से देखती है--
गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध।।
दादू सत्गुरु यूं सहजै मिला लीया कंठि लगाई।
दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाई।।
एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करना। क्योंकि दादू जैसे लोग एक शब्द भी व्यर्थ उपयोग नहीं करते हैं। बोलना उनका रस नहीं है। एक-एक शब्द किसी भीतर के गहरे विज्ञान की तरफ इशारा करता है।
सत्गुरु यूं सहजै मिला...
सतगुरु से मिलने का एक ही उपाय है कि तुम सहज हो रहो। जितने तुम असहज होओगे जितने जटिल होओगे, जितने कठिन होओगे, उतना मिलन मुश्किल हो जाएगा। सतगुरु से तो तुम ऐसे मिलो, जैसे तुम एक छोटे बच्चे हो। पांडित्य को घर रख जाओ। जहां जूते उतारते हो, वहीं अपनी सारी खोपड़ी भी उतार दो। स्नान करके जाओ। शरीर का धूल-धवांस ही नहीं झाड़ दो, भीतर के विचार भी वहीं छोड़ जाओ। गुरु के पास तो ऐसे जाओ जैसे तुम एक छोटे बच्चे हो, जिसे कुछ भी पता नहीं; जिसके होने में कहीं भी कोई आड़ा-तिरछापन नहीं है; जो सीधा सरल है, प्राकृतिक है।
अब यह बड़ी उलझन की बात है। क्योंकि सारी सभ्यता, समाज, संस्कृति तुम्हें जटिल बना रही है। समाज तुमसे कहता है, भीतर तुम कुछ भी होओ, बाहर कुछ और बताओ। भीतर क्रोध है, कोई फिकर नहीं, सम्हाले रहो; बाहर मुस्कुराओ। आदमी को देख कर तुम्हें लगता है कि कहां से इस दुष्ट के दर्शन हो गए! मगर कहो उससे कि आपके मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई, बड़ा आनंद हुआ, बड़े दिनों में दर्शन हुए। कहो यही! मेहमान घर आता है, तबीयत होती है कि फांसी लगा लो; मगर स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा दो।
सारी जीवन-व्यवस्था झूठ, जटिलता, पाखंड पर खड़ी है। किसी को सरल होने
का उपाय नहीं।
लेकिन गुरु से ऐसे मिलना न होगा। गुरु के पास अगर तुम ये सब समझदारियां लेकर गए, तो तुम पास पहुंच ही न पाओगे। निकट पहुंच जाओगे, पास न पहुंच पाओगे। शरीर के पास हो जाओगे, गुरु के पास न हो पाओगे। गुरु के पास होने का तो एक ही उपाय है--सहजता। अगर तुम दूर हो गुरु से, तो उसका केवल एक ही कारण होगा कि तुम असहज हो, सहज हो जाओ, तत्क्षण तुम पास हो। हजारों मील का फासला हो भला, अगर तुम सहज हो, तुम गुरु के पास हो--और तुम गुरु के बिल्कुल पास बैठे हो, शरीर से शरीर लगा कर बैठे हो, लेकिन असहज हो, तो हजारों मील का फासला है।
सत्गुरु यूं सहजै मिला लीया कंठि लगाई।
अगर तुम सहज हो, तो गुरु तुम्हें कंठ लगा लेगा।
कंठ शब्द सोचने जैसा है। क्योंकि ये सब अलग-अलग चक्रों के नाम हैं।
कंठ पर पांचवां चक्र है। और जिसका कंठ का चक्र जाग गया हो, उसका गद्य भी पद्य हो जाता है। उसके बोलने में एक माधुर्य आ जाता है। उसके शब्दों में एक शून्य, उसके मौन में भी बड़ी मुखरता होती है। और उसकी मुखरता में मौन की छाया होती है। जिसके कंठ का पांचवां चक्र सजीव हो गया होता है... ।
जब ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है, तो एक-एक चक्र को पार करती है। पहला चक्र काम-चक्र है। दूसरा चक्र नाभि के नीचे है। दूसरे चक्र में जब ऊर्जा आती है, तो भय समाप्त हो जाता है, अभय उपलब्ध होता है। क्योंकि दूसरे चक्र से ही मृत्यु का संबंध है। जब दूसरे चक्र को तुम पार कर लिए, मृत्यु को पार कर लिए।
इसलिए जब भी तुम्हें भय लगता है तब तुमने सोचा होगा, समझा होगा कि तत्क्षण तुम्हारे पेट में कुछ गड़बड़ होनी शुरू हो जाती है। बहुत भयभीत अवस्था में तो आदमी का मल-मूत्र भी त्याग हो जाता है। वह इसीलिए हो जाता है

कि भय का चक्र इतना सक्रिय हो जाता है कि पेट को खाली करना जरूरी हो जाता है।
भयभीत आदमी के पेट में अल्सर हो जाते हैं। चिंतित आदमी के पेट में अल्सर हो जाते हैं। अल्सर का कुल इतना ही मतलब है कि भय का चक्र इतने जोर से घूम रहा है कि तुम्हारे शरीर को ही उसने पचाना शुरू कर दिया। उसने पेट की चमड़ी को पचाना शुरू कर दिया, इसलिए अल्सर पैदा होने शुरू हो गए।
जब ऊर्जा भय के चक्र से पार हो जाती है, तुम निर्भीक हो जाते हो, अभय हो जाते हो, मौत दिखाई नहीं पड़ती। सभी जगह अमृत प्रतीत होने लगता है।
फिर तीसरा चक्र नाभि के ऊपर है। उस तीसरे चक्र पर आते ही तुम्हारे जीवन में कुछ अनूठा संतुलन मालूम होने लगता है--एक बैलेंस; अति नहीं रह जाती। अन्यथा साधारणतः जीवन में अतियां है। या तो तुम एक अति पर जाते हो कि भोग लो, या त्याग कर लो। या तो बहुत भोजन कर लो, या उपवास कर लो। बस, ऐसे अतियों पर डोलते रहते हो। कभी ध्यान कर लिया बैठ कर चार घंटे, फिर चार-छह दिन के लिए नींद ले ली।
जैसे ही तुम तीसरे चक्र पर आते हो, अति विलीन हो जाती है। संतुलन पैदा होता है।
जब तुम चौथे चक्र पर आते हो, तो चौथा चक्र हृदय का चक्र है। तब तुम्हारे जीवन में पहली दफा प्रेम पैदा होता है। उसके पहले तुम प्रेम की बात करते हो, चर्चा चलाते हो। वह चर्चा और बातचीत ही है। उसके पहले तुम्हारा सब प्रेम कामवासना का ही छिपा हुआ रूप है। शब्द के आवरण तुम कुछ भी लपेटो, भीतर कामवासना नंगी खड़ी है। हृदय पर जब ऊर्जा आती है तभी तुम्हारे जीवन में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, काम विसर्जित हो जाता है।
फिर पांचवां चक्र है, कंठ पर। कंठ पर आते ही ऊर्जा सत्य को अभिव्यक्ति देने की क्षमता को उपलब्ध होती है। जरूरी नहीं है कि सुनने वाला समझ पाए। सुनने वाला भी तभी समझ पाएगा, जब उसका भी पांचवां चक्र सक्रिय हो जाए।
तो गुरु जब बोलता है शिष्य से, अगर शिष्य का भी पांचवां चक्र सक्रिय हो; वही है अर्थ--लीया कंठि लगाई--तभी शिष्य समझ पाएगा, जो बोला गया है वही। अन्यथा बोलेगा गुरु कुछ, शिष्य समझेगा कुछ। तुम समझोगे अपनी समझ के अनुसार।
अगर तुम्हारी ऊर्जा पहले ही चक्र पर है, तो गुरु कुछ कहेगा, तुम कुछ समझोगे। तुम्हारी सारी समझ में कामवासना होगी। अगर तुमने भय को पार नहीं किया है, तो तुम्हारी परमात्मा की तलाश भी भय पर ही आधारित होगी। तुम अगर प्रार्थना भी करने जाओगे तो तभी जाओगे, जब तुम्हारे प्राण भयभीत होंगे। अन्यथा तुम न जाओगे।
इसलिए लोग सुख में नहीं जाते, दुख में जाते हैं। सुख में कौन परमात्मा
की याद करता है? क्या लेना-देना परमात्मा से? जब दुखी होते हैं, तब जाते हैं; तब भय से कंपते हैं। मरते समय नास्तिक तक आस्तिक हो जाते हैं। जब आदमी सफल हो रहा होता है, जवान होता है, स्वस्थ होता है और सब तरफ से जिंदगी जीतती मालूम पड़ती है, तब आस्तिक भी नास्तिक हो जाता है। जब पैर कंपने लगते हैं, जीवन-ऊर्जा बिखरने लगती है, उतार आता है, ज्वार जा चुका और भाटे का क्षण आता है, तब नास्तिक भी आस्तिक होने लगते हैं। मरते वक्त वे भी ईश्वर की सोचने लगते हैं।
तो अगर तुम्हारी ऊर्जा पांचवें चक्र पर नहीं है, तो गुरु कुछ कहेगा, तुम समझोगे कुछ। अगर पांचवें चक्र पर है, तो गुरु कुछ भी न कहे, तो भी तुम वही समझोगे, जो गुरु कहना चाहता है। एक तार जुड़ जाता है। एक संवाद की संभावना शुरू होती है।
सत्य कहा नहीं जा सकता इसीलिए, क्योंकि सत्य को सुनने वाला मौजूद नहीं होता। सत्य को सुनने वाला मौजूद हो, सत्य निश्चित कहा जा सकता है। कहने तक की जरूरत नहीं पड़ती; बिना कहे भी कहा जा सकता है। गुरु चुप बैठा रहे और शिष्य चुप बैठा रहे, तो दोनों के कंठों में एक लेन-देन शुरू हो जाता है।
सत्गुरु यूं सहजै मिला लीया कंठि लगाई।

दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाई।।
और अनुकंपा है गुरु की कि फिर उसने दीया जला दिया। दीया है छठवां चक्र; जिसको शिव-नेत्र कहें, थर्ड-आई कहें, जो तुम्हारी दोनों आंखों की भौंहों के मध्य में है; वह दीया है। क्योंकि वहीं से रोशनी फिर भीतर भर जाती है।
गुरु समझाता है, गुरु जताता है, बताता है, इशारे करता है ताकि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा पांचवें से छठवें की तरफ यात्रा कर ले। अगर तुम सुनने में राजी हो, अगर तुम तत्पर हो, तल्लीन हो, तो जल्दी ही ऊर्जा दीया बन जाएगी। जिसका भी तीसरा नेत्र खुल गया उसके भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। और जिसके भीतर प्रकाश है, उसके बाहर भी अंधकार नहीं। वह जहां भी जाता है, अपने ही प्रकाश में चलता है। उसके लिए इस संसार में फिर कहीं कोई अंधकार नहीं है।
दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाई।
सत्गुरु मारे सबद सों निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवे और।।
और गुरु ने एक-एक शब्द के बाण से ऐसे निशाने लगाए--"सत्गुरु मारे सबद सों निरखि निरखि निज ठौर"--कि भीतर जो भीड़ थी विचारों की, वह एक-एक कर मर गई। एक-एक विचार निष्प्राण हो गया।
और एक ऐसी घड़ी आई सन्नाटे की कि जब भीतर देखा तो पता चला--"राम अकेला रहि गया, चीत न आवे और"--कोई और दिखाई ही नहीं पड़ता। सिर्फ राम को छोड़ कर सब गुरु ने मार डाला।
गुरु बोलता है, शब्द का उपयोग करता है। ऐसे ही, जैसे पैर में कांटा लग जाए, तो हम दूसरे कांटे से उसको निकालते हैं। कांटा एक लग गया, दूसरा कांटा खोज कर हम पहले कांटे को निकालते हैं। दूसरा कांटा भी पहले कांटे जैसा ही है। जब पहला कांटा निकल जाए, तो भूल कर भी दूसरे कांटे को घाव में मत रख लेना, यह सोच कर कि यह बड़ा अच्छा कांटा है। बड़ी सेवा की इसने मेरी, वक्त पर काम आया। नहीं, जब पहला कांटा फिंक गया, तो दूसरे को भी उसी के साथ फेंक देना।
गुरु के शब्द कांटों की तरह है--तुम्हारे भीतर कुछ कांटे हैं उन्हें खींच लेने के लिए। तीर है--तुम्हारे भीतर विचार है, उन्हें काट डालने के लिए। विचार विचार से कटेगा। तीर तीर से कटेगा; कांटा कांटे से निकलेगा। जहर को जहर से मारना पड़ता है।
सत्गुरु मारे सबद सों निरखि निरखि निज ठौर।
और अगर तुम घबड़ा गए; क्योंकि गुरु तुम्हारी धारणाओं को तोड़ेगा, तुम्हारी आस्थाओं को मिटाएगा, तुम्हारे परिकल्पित विचारों की हत्या कर देगा। अगर तुम भयभीत हो गए कि यह तो मेरा धर्म छीन ले रहा है; यह तो मेरे शास्त्र को मिटाए दे रहा है; यह तो मेरे न मालूम कितने-कितने समय से संजोए हुए सिद्धांतों को नष्ट किए डाल रहा है--और तुम भाग खड़े हुए, तो तुम चूक जाओगे।
शास्त्र भी छोड़ने होंगे, सिद्धांत भी छोड़ने होंगे। सिर्फ उसी को बचाना है, जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है। बाकी सब मिटा देना है। एक दफा उसकी पहचान आ जाए, फिर कोई भय नहीं है। लेकिन जब तक उसकी पहचान नहीं है, तब तक तुम्हारा राम न मालूम कितने सिद्धांतों, शास्त्रों की भीड़ में खो गया है। कितने शब्दों की बकवास तुम्हारे भीतर चलती रहती है!
अब तुम राम को खोजना चाहते हो और इतना बड़ा बाजार है तुम्हारा मन! राम
का कहीं पता नहीं चलता। एक-एक को काट डालना होगा। राम को काटने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह कटता ही नहीं। वह तुम्हारे भीतर जो अमृत, तुम्हारे भीतर जो शाश्वत, सनातन है, अनादि, अनंत है, वही राम है। गुरु सब गिरा देगा, अगर तुम राजी रहे। यह बड़े से बड़ा ऑपरेशन है, जो दुनिया में हो सकता है। कोई भी सर्जन इस ऑपरेशन को नहीं करता। ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे शरीर के सड़े-गले अंगों को काट देता है। गुरु तो तुम्हारे सड़े-गले मन को पूरा का पूरा काटता है। और तभी तुम्हारी आत्मा निखर पाती है। अगर तुम मरने

को राजी हो--क्योंकि पहले तुम्हें यह मरने जैसा ही लगेगा। इन विचारों को तो तुमने अपना प्राण समझा है।
अगर हिंदू है कोई और तुम हिंदू धर्म को कुछ कह दो, तो वह मरने-मारने को उतारू हो जाता है। अगर मुसलमान है कोई और तुम मुसलमान धर्म को कुछ कह दो, जीवन दांव पर लगा देगा। या तो तुम्हें मिटाएगा, या खुद मिट जाएगा।
आदमी शब्दों के लिए मरने को राजी है, मारने को राजी है। शब्दों का मूल्य उन्होंने जीवन से ज्यादा समझा है। कितने लाखों लोग मरे हैं चर्चों, मस्जिदों, मंदिरों के नाम पर! आश्चर्यजनक है कि शब्द का इतना मूल्य है कि तुम अपना जीवन गंवाने को तैयार हो। कि किसी ने गीता को गाली दे दी, कि किसी ने कुरान को बुरा कह दिया, बस तुम पागल हुए। तुम राम को मिटाने को राजी हो, लेकिन शब्दों को छोड़ने को नहीं।
तो गुरु जब एक-एक करके तुम्हारे सिद्धांतों को तोड़ने लगेगा और तुम्हारी धारणाओं को नष्ट करने लगेगा, तब तुम्हें ऐसा ही लगेगा कि ये तो तुम्हारे प्राण गए। यही वक्त है, जब हिम्मत और साहस की जरूरत है। यही समय है, जब श्रद्धा का उपाय है, उपयोग है। क्योंकि तब तुम छोड़ देते हो अपने को गुरु के हाथ में कि ठीक है।
जैसा कि तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। खतरनाक है छोड़ना, क्योंकि क्या पता, जब तुम क्लोरोफार्म से बेहोश पड़े हो, तब वह तुम्हारी गर्दन ही काट दे! लेकिन तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। सर्जरी बंद हो जाए बिना श्रद्धा के; क्योंकि क्या पता है कि सर्जन क्या करेगा। तुम तो चाहते थे अपेंडिक्स निकाले, वह कुछ और निकाल ले। नहीं, तुम छोड़ देते हो अपने को हाथ में उसके कि ठीक है। एक भरोसा है।
गुरु के हाथ में तो छोड़ना और भी बड़े भरोसे की बात है। क्योंकि वह शरीर
का ही मामला नहीं है, तुम्हारी चेतना का मामला है।
सत्गुरु मारै सबद सों निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रह गया, चीत न आवे और।।
सबद दूध घृत राम रस कोइ साध विलोवणहार।
दादू अमृत काढिलै गुरुमुखि गहै विचार।।
सबद दूध--गुरु जो बोलता है, वह तो दूध जैसा है। तुम उतने से ही तृप्त मत
हो जाना, जो वह बोलता है। क्योंकि तब तुम दूध ही पाओगे। अच्छा है, दूध मिले यह भी अच्छा है। लेकिन कुछ और भी हो सकता है, जो तुम चूक जाओगे।
सबद दूध घृत राम रस...
लेकिन अगर उस दूध को तुमने अपने भीतर मनन किया; अगर उस दूध को तुमने ध्यान बनाया, चिंतन बनाया; अगर उस दूध से तुम रमे और जीए--घृत राम रस; तो तुम उस घी को उपलब्ध कर लोगे, जो दूध में छिपा था। वह प्रकट हो जाएगा। यह घृत रामरस है।
... कोइ साध विलोवणहार।
दूध तो बहुत लोग ले जाते हैं। लेकिन कोई साधक ही कभी ठीक से जानता है
कि कैसे दूध को बिलोया जाए, कैसे दूध को मथा जाए, मंथन-मनन-ध्यान; कैसे दूध को घृत बना लिया जाए।
और दूध और घृत में बड़ी क्रांतिकारी अंतर हो जाते हैं। दूध आज ठीक है,
कल खराब हो जाएगा। घी वर्षों तक खराब नहीं होगा। कभी खराब नहीं होगा। जितना पुराना होगा, उतना मूल्यवान होता जाएगा। दूध आज ठीक है, कल फेंकने योग्य हो जाएगा। उसी दूध में कुछ छिपा है शाश्वत, सनातन--"घृत राम रस।" शब्द तो आज ताजे हैं, कल बासे हो जाएंगे। और अगर तुमने शब्दों को सम्हाल कर रखा, तो तुम पागल हो। तुम दूध को सम्हाल कर रख रहे हो। वह सड़ जाएगा, उससे घर में बदबू फैलेगी, वह किसी काम का न रह जाएगा। वह सिर्फ फेंकने के योग्य होगा।
जिन लोगों ने भी शास्त्रों को सम्हाल कर रख लिया है; उन्होंने दूध को सम्हाल के रख लिया है। सब शास्त्र सड़ गए। सभी शास्त्रों से दुर्गंध उठने लगती है। अगर साधक समझदार हो, तो शब्द को मथ लेगा, व्यर्थ को फेंक देगा।
छाछ बच रहेगी, उसे तो फेंक देगा, घी को सम्हाल लेगा।

हर शब्द में छिपा है गुरु के सत्य। लेकिन पूरे शब्द को बचाने की कोशिश
मत करना। शब्द का जो भाव है, शब्द का जो इशारा है--शब्द नहींः दो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है वह, दो पंक्तियों के बीच में जो शून्य है वह--वहां छिपा है राम-रस।
सबद दूध घृत राम रस कोइ साध विलोवणहार।
कभी-कभी कोई विरला साधक उसको मथ पाता है।
दादू अमृत काढिलै गुरुमुख गहै विचार।
वह जो गुरु कह रहा है, वह कोई विचार नहीं दे रहा है शब्दों के द्वारा।
शब्दों के द्वारा वह निर्विचार देने की कोशिश कर रहा है, शब्दों के द्वारा वह सिद्धांत नहीं दे रहा है, शब्दों के द्वारा वह सिद्धि देने की कोशिश कर रहा है। शब्दों के द्वारा वह मार्ग नहीं दे रहा है, शब्दों के द्वारा वह मंजिल देने की कोशिश कर रहा है। लेकिन कोई साधक अगर ठीक से मंथन करे, तो ही समझ पाएगा।
दादू अमृत काढिलै...
तो भाव को निकाल लो, शब्द की छाछ को छोड़ दो। शब्द तो खाली कारतूस है फिर, उसमें कोई सार नहीं है, उसे ढोने का कोई मतलब नहीं हैः चल चुकी कारतूस है फिर, उसमें से भाव निकाल लो।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप जो कहते हैं क्या हम उसे याद रखें?
उसे याद रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसे समझ लो, बात खत्म हो गई। उसे याद रखोगे--उसे याद रखने का मतलब ही यह हुआ कि समझे नहीं। याद रखना पड़ता है उन्हीं चीजों को, जिन्हें हम समझते नहीं। जिन्हें हम समझ लेते हैं, उन्हें क्या याद रखना पड़ता है? जिन्हें समझ लिया वे हमारे अंग हो गए, मांस-मज्जा हो गए, हमारे खून में डूब गए। हमारी हड्डियों में समा गए। जो तुम समझ लेते हो, उसे तुम कभी याद नहीं रखते। जो तुम नहीं समझ पाते हो, उसको तुम याद रखते हो। जिसको तुमने समझ लिया, वह पच गया। जिसको तुमने नहीं समझा, वह अनपचा तुम्हारे ऊपर बोझ बना रहता है।
याद रखने की कोई भी जरूरत नहीं है, भाव को समेट लो। अर्थ को ले लो, व्यर्थ को छोड़ दो। अर्थ बड़ा छोटा है। शब्द कितना ही बड़ा हो, अर्थ बड़ा छोटा है। पर अर्थ ही सार है, वह निचोड़ है। जैसे एक बड़ा गुलाब का वृक्ष--तो उसमें दस-पांच फूल लगते हैं, सारे वृक्ष की प्राण-ऊर्जा फूलों में आ जाती है। फिर फूल का कोई इत्र निकालता है, तो हजारों फूलों से चम्मच भर इत्र निकलता है। शब्द तो बहुत हैं; उसमें से निःशब्द को छांटते जाओ, वही इत्र है। और जिस दिन तुम्हें निःशब्द का इत्र मिल जाएगा--दादू अमृत काढिलै... उस दिन तुमने अमृत काढ़ लिया।... गुरुमुख गहै विचार। गहन ध्यान से अमृत की उपलब्धि होगी।
देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।।
देवै किनका दरद का...
गुरु अंततः तो आनंद देगा लेकिन शुरू में बड़ा दर्द देगा। जैसे घाव दे देगा हृदय में एक दर्द का, विरह का, परमात्मा को पाने की आकांक्षा का। एक संताप जगा देगा। तुम जलोगे, तड़फोगे, सो न सकोगे, सब चैन खो जाएगा। ऐसी घड़ी आएगी कि तुम पछताओगे कि कहां इस आदमी से मिलना हो गया।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, अच्छा था, हम भले थे, बाजार में, दुकान में डूबे थे। सब ठीक था। अब एक बेचैनी है। अब एक-एक पल जाता लगता है कि जीवन गया। एक-एक दिन जाता है, लगता है, अभी तक पहुंचे नहीं। अब एक दर्द दे दिया।
निश्चित, ठीक कहते हैं वे। क्योंकि जब तक उसका दर्द न हो, तब तक खोज गहन न होगी। जब तुम तड़फोगे ऐसे, जैसे मछली तड़फती है बाहर पानी के फेंक दी गई तट पर, उसको ही भक्तों ने विरह कहा है। उसको ही दादू कह रहे हैंः देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
लेकिन उस दर्द के ही द्वारा वह उस टूटे तार को जोड़ता है। अगर वह दर्द न हो, तो टूटा तार भी नहीं जोड़ा जा सकता। क्योंकि तुम राजी ही न होओगे। तुम मानोगे ही न कि कुछ टूटा है, कि कोई तार टूटा है। उस दर्द में ही, उस पीड़ा

में ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुम्हारा सागर खो गया है। तुम तट पर तड़फ रहे हो।
पहले तो तुम्हें जगाएगा, ताकि तुम तड़पो। जिस दिन तुम्हारी तड़प पूरी
हो जाएगी, उसी दिन--टूटा जोड़ै तार--उसी दिन तुम्हारी प्यास ही तो प्रार्थना बन जाती है। और तुम्हारा विरह ही तो योग बन जाता है। और तुम्हारी पुकार ही। जिसमें तुम्हारी सारी पीड़ा संग्रहीभूत होती है, तुम्हारे पहुंचने का द्वार बन जाती है। --टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को...
और तब परमात्मा की स्मृति सध जाती है। पहले तो दर्द, फिर तार का जुड़ना, फिर सुरति का सध जाना। सुरति का अर्थ होता हैः स्मृति; सुरति का अर्थ होता हैः उसकी याद।
जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी को याद करती है, ऐसी जब तुम्हारी याद हो जाती है, सब भूल जाता है, वही याद रहता है--तब इस सुरति में ही तो तार जुड़ जाता है। तुम रहते यहां हो, यहां के नहीं रह जाते। होते बाजार में हो, बाजार में नहीं होते। खिंचते रहते हो मंदिर की तरफ। बात करते हो किसी से, संवाद "उसी" से होता रहता है। सोते हो यहां, लेकिन कहीं और जागे रहते हो। भोजन करते हो, काम करते हो, जीवन की सब व्यवस्था जुटाते रहते हो, लेकिन भीतर एक धुन बजती रहती है अहर्निश उसके मिलन की।
सुरति का अर्थ हैः जिसकी याद तुम्हारी श्वास-श्वास बन जाए। सुरति का अर्थ हैः जिसकी याद न करनी पड़े, जिसकी याद होती रहे।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना। सुरति का अर्थ याद करना नहीं है; सुरति का अर्थ हैः याद में रम जाना।
एक फकीर औरत हुई, राबिया। उससे किसी दूसरे फकीर हसन ने पूछा कि राबिया, तू कितना समय परमात्मा की याद में बिताती है? उसने कहाः हसन, तू भी पागल है। परमात्मा की याद में कितना समय? याद तो मैं उसकी करती ही नहीं। याद से तो उसकी मैं छूटना चाहती हूं। चौबीस घंटे, सोते-जागते, श्वास-श्वास में याद बनी है। जल रही हूं। याद से छूटना है किसी तरह।
और एक ही उपाय है याद से छूटने का कि आदमी उसमें डूब जाए। परमात्मा जब
तक तुम न हो जाओ, तब तक फिर याद न छूटेगी।
एक तो उपाय है कि संसार में खोए रहो ताकि याद ही न आए। फिर बीच की जगह
है, जहां याद आएगी और तुम तड़फोगे, बेचैन होओगे, रोआं-रोआं तुम्हारा दर्द से भर जाएगा। और फिर एक तीसरी घड़ी है, जब तुम छलांग लेकर वापस सागर में उतर जाओगे। मछली अपने घर पहुंच गई, सागर ही हो गई।
परमात्मा ही जब तक तुम न हो जाओ, तब तक सुरति को--तब तक सुरति का उपयोग है। फिर कोई याद की जरूरत नहीं है। फिर कौन किसकी याद करता है? फिर तुम वही हो गए, जिसकी याद करते थे। फिर याद करने वाला ही न बचा। फिर याद किया जाने वाला भी न बचा। फिर एक ही बचा।
देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।।
और जो हमारी ऐसी सुरति को सधा दे, वही हमारा गुरु है, वही हमारा पीर है।
तो गुरु कौन है, इसकी परिभाषा कर रहे हैं वे। जो तुम्हारी याद को जगा
दे परमात्मा की तरफ, वही गुरु है। जो तुम्हें तड़पा दे, वही गुरु है--देवै दर्द; वही गुरु है। जो तुम्हारे मीठे सपनों को तोड़ दे, क्योंकि मीठे सपने बड़े जहरीले हैं, झूठे हैं। जितना समय गया उनमें, व्यर्थ ही गया। जितना जाएगा, वह भी व्यर्थ जाएगा। सपनों से चलते रहने से यात्रा नहीं होती। जो तुम्हें जगा दे, दर्द से भर दे, प्यास से भर दे, वही गुरु है।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।
सत्गुरु मिलै तो पाइए भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिए, साहिब का दीदार।।
सत्गुरु मिलै तो पाइए...
कोई और उपाय नहीं है। सदगुरु मिल जाए, तो ही पाना हो सकता है। और जो भी इससे अन्यथा कोशिश में लगे हों, वे कभी भी पा न सकेंगे। और अगर कभी किन्हीं

ने पा भी लिया हो, तो तुम यही समझना कि तुम्हें पता न हो लेकिन उनको सदगुरु कभी न कभी मिल गया होगा।
कृष्णमूर्ति निरंतर कहते हैं कि गुरु की कोई जरूरत नहीं। लेकिन जन्मों-जन्मों से न मालूम कितने गुरुओं ने साधा है। इस जन्म में भी एनीबीसेंट और लीडबीटर जैसे गुरु ने कृष्णमूर्ति को उठाया है और सुरति को साधा है। जो पहुंच गए हैं, उनमें से कई लोगों ने कई बार कहा है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं। उनका कहना ठीक है। पा लेने के बाद ऐसा लगता है कि जरूरत ही किसकी थी? यह तो हम पाए ही हुए थे।
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ी फैक्टरी, जहां सभी स्वचालित यंत्र थे, अचानक एक दिन बंद हो गई। बड़ी खोज-बीन की गई, आधा दिन बीत गया, दिन बीत गया, कुछ पता न चला, कहां गड़बड़ है। इंजीनियर थक गए। फिर विशेषज्ञ को विदेश से बुलाना पड़ा। सात दिन फैक्टरी बंद रही, तो लाखों का नुकसान हुआ। विशेषज्ञ आया, उसने अपने खीसे से एक छोटा सा स्क्रू-ड्राइवर निकाला, जाकर एक ढीले पेंच को कस दिया, फैक्टरी चल पड़ी।
मालिक ने उससे बिल पूछा, उसने दस हजार रुपये का बिल दिया। मालिक ने कहाः यह जरा ज्यादा है। एक छोटे से स्क्रू को कसने का दस हजार रुपया! यह तो हम ही कर लेते। यह तो कोई भी बच्चा कर देता।
तो उस विशेषज्ञ ने कहाः फिर कर ही लिया होता। अब मेरे कर दिए जाने के बाद तो बात बिल्कुल सरल है। यह तो बच्चा भी कर सकता है, कोई भी कर सकता है। और ये दस हजार जो तुमसे ले रहा हूं, उसमें एक रुपया स्क्रू कसने के हैं। नौ हजार नौ सौ निन्यानबे रुपये जानने के हैं कि स्क्रू कौन सा कसना? तो करोड़ों स्क्रू हैं। तुम बिल को दो हिस्सों से बांट लो। एक रुपया कसने के हैं, नौ हजार नौ सौ निन्यानबे रुपये जानने के कि कहां कसना है! कस देने के बाद तो सब सरल हो जाता है।
बहुतों को लगता है पहुंचने के बाद कि क्या जरूरत थी किसी के सहारे की? अपना ही खजाना था, अपने को ही पाना था। पाया ही हुआ था। कभी खोया न था; सिर्फ जरा याद भूल गई थी। याद भर लाने के लिए किसके चरणों में जाने की जरूरत थी?
निश्चित यह बात सच है। जान कर ऐसा ही पता चलता है, किसी के पास जाने की जरूरत न थी। लेकिन जो नहीं पहुंचे हैं, उन्हें यह मत कहना। क्योंकि अगर उनके दिमाग में यह फितूर सवार हो गया कि कहीं जाने की जरूरत नहीं, तो वे कभी भी न पहुंचेंगे। और उसके दिमाग में यह फितूर सवार हो जाना बहुत आसान है, क्योंकि यह अहंकार के बड़े पक्ष में है कि किसी के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। कोई गुरु नहीं है। अहंकार स्वयं ही गुरु बनना चाहता है, कहीं झुकना नहीं चाहता।
इसलिए कृष्णमूर्ति बात तो ठीक कहते हैं, लेकिन जिन्होंने सुना है उनको हानि हुई है, लाभ नहीं हुआ। वे चुप रहते और कुछ नहीं कहते, तो शायद ज्यादा लोगों को लाभ होता। और जो कह रहे हैं, वे बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं। उसमें रत्ती भर गलती नहीं है। सौ प्रतिशत सही है। कुछ भी जरूरत नहीं है किसी को बताने की। मगर अगर तुम अपने से ही पा सके होते, तो तुमने कभी का पा लिया होता। कितने जन्मों से तुम भटक रहे हो!
सारे धर्म एक बात कहते हैं कि प्रथम धर्म का जो आविष्कार है, वह परमात्मा ने ही किया होगा। जैसे हिंदू कहते हैं, वेद उसने ही रचे। मुसलमान कहते हैं कुरान उसने ही उतारी। ईसाई कहते हैं, बाइबिल उसके ही माध्यम, ईसा के माध्यम से आए उसके ही शब्द है। यहूदी कहते हैं, मोजे.ज को उसी ने सूत्र दिए हैं।
इन सारी कहानियों में एक बात बड़े अर्थ की है और वह यह; और मैं मानता हूं कि उसमें बड़ा रहस्य है। ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि वही पहला गुरु हो सकता है। जब सभी लोग सोए थे, तो वही जागा था। उसने एक को जगा दिया होगा, फिरशृंखला शुरू हो गई। अन्यथा आदमी अपनी तरफ से कैसे जागता? इसलिए वेद उसने बनाए कि नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है; लेकिन बात में सार है। पहला उदघोष, पहली उदभावना, पहला जागरण, पहला हाथ का इशारा सोए आदमी को उसने ही दिया होगा।

परमात्मा का अर्थ हैः जो जागा हुआ है, चैतन्य है, उसने ही पहले आदमी को जगाया होगा। फिर पहले ने दूसरे को, फिर दूसरे ने तीसरे को, फिर अनंतशृंखला है।
इसलिए भारत में हिंदुओं के सारे शास्त्र ऐसे ही शुरू होते हैं कि पहले ब्रह्मा ने उसको दिया ज्ञान, फिर उसने उस ऋषि को दिया, फिर उस ऋषि ने उस ऋषि को दिया, फिर ऐसा चलते-चलते-चलते कृष्ण भी वही कहते हैं।
इसका एक ही अर्थ है कि जागा हुआ ही सोए हुए को जगा सकता है। इसलिए पहली किरण जागरण की परमात्मा से ही उतरनी चाहिए। सीधे तुम जाग न सकोगे। जाग कर तुम पाओगे कोई अड़चन न थी, जाग सकते थे। लेकिन सीधे तुम जाग न सकोगे। सत्गुरु मिलै तो पाइए भक्ति मुक्ति भंडार।
और दादू कहते हैंः भक्ति पा ली, तो मुक्ति पा ली। भक्त के लिए, प्रेमी
के लिए मुक्ति की कोई आकांक्षा ही नहीं है। वह कहता है, प्रेम मिल गया परमात्मा का। बरस गया उसका मेघ ऊपर। हो गए उसके स्नेह से सिक्त--पा लिया सब--भक्ति मुक्ति भंडार। भक्त मोक्ष की आकांक्षा नहीं करता।
और उसमें थोड़ी बात सोचने जैसी है, क्योंकि मोक्ष की आकांक्षा में कहीं न कहीं अहंकार छिपा रह सकता है। "मैं मुक्त हो जाऊं", इसमें कहीं मैं बच सकता है। मैं सबसे मुक्त हो जाऊं, मैं बिल्कुल स्वतंत्र हो जाऊं, इसमें मैं का स्वर बच सकता है। भक्त कहता है, हमें कोई मुक्ति नहीं चाहिए। हमें तो भक्ति चाहिए। तेरा प्रेम चाहिए। तेरे चरण मिल जाएं, काफी है। तेरी आंख प्रेम से भर कर हमें देख ले, काफी है।
लेकिन यही तो मुक्ति है। जिसको उसके चरण मिल गए, वह मुक्त हो गया।
दादू सहजै देखिए, साहिब का दीदार।
दादू कहते हैंः कोई मुक्ति की जरूरत नहीं। बस, इतना काफी है कि तेरे दर्शन हो जाए। आंखें तुझे देख लें, बस! हृदय तुझे पहचान लें, बस! चरण तेरे नृत्य से भर जाएं, बस!
और मैं कहता हूं, इतना हो गया तो कुछ और होने को बचता नहीं। इस परम घड़ी में उत्सव की, जब उसका दीदार हो जाता है, जब तुम देख लेते हो सब जगह उसे छिपा हुआ; जब वह कहीं भी छिप नहीं पाता और तुम सब जगह उसे देखते हो; जब ऐसी कोई जगह नहीं रह जाती, जहां वह नहीं दिखाई पड़ता, तुम मुक्त हो गए, क्योंकि वही बचा।
तुम अपने भीतर भी उसी को देखते हो, बाहर भी उसी को देखते हो। मित्र में
भी वही, शत्रु में भी वही। जीवन में भी वही, मृत्यु भी वही। जब वही बचा तो किसको मुक्त होना है और किससे मुक्त होना है? सारे बंधन गिर गए। फिर तो बंधन भी मुक्ति है। फिर तो बंधन में भी मोक्ष है। अगर परमात्मा ही बांध रहा है, तो जल्दी भी क्या है छूटने की? अगर वही बंधन बना है, तो धन्यभाग! भक्त की यात्रा बड़ी अनूठी है। वह प्रेम की यात्रा है। और प्रेम ही मोक्ष है। जिसने प्रेम के अतिरिक्त मोक्ष मांगा, वह अहंकार की ही मांग कर रहा है। और जिसने प्रेम में ही मोक्ष को जाना, उसने ही मोक्ष को जाना है।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
दूसरा प्रवचन

जिज्ञासा-पूर्तिः एक

पहला प्रश्नः सदगुरु मिल गए। साधक को इसकी प्रत्यभिज्ञा, पहचान कैसे हो?

साधक हो, तो क्षण भर की देर नहीं लगती। साधक ही न हो, तो प्रत्यभिज्ञा
का कोई उपाय नहीं। प्यासा हो, तो पानी मिल गया--क्या इसे किसी और से पूछने जाना पड़ेगा? प्यास ही प्रत्यभिज्ञा बन जाएगी। कंठ की तृप्ति ही प्रमाण हो जाएगी।
लेकिन प्यास ही न हो, जल का सरोवर भरा रहे और तुम्हारे कंठ ने प्यास न जानी हो, तो जल की पहचान न हो सकेगी। पानी तो प्यास से पहचाना जाता है, शास्त्रों में लिखी परिभाषाओं से नहीं।
अगर साधक है कोई--साधक का अर्थ क्या है? साधक का अर्थ है कि खोजी है, आकांक्षी है, अभीप्सा से भरा है। साधक का अर्थ है कि प्यासा है सत्य के लिए।
सौ साधकों में निन्यानबे साधक होते नहीं, फिर भी साधन की दुनिया में उतर जाते हैं। इससे सारी उलझन खड़ी होती है।
तुम्हें प्यास न लगी हो और किसी दूसरे ने जिसने प्यास को जानी है, प्यास की पीड़ा जानी है और फिर जल के पीने की तृप्ति जानी है, तुमसे अपनी तृप्ति की बात कहीः बात-बात में तुम प्रभावित हो गए। तुम्हारे मन में भी लोभ जगा। तुमने भी सोचा कि ऐसा आनंद हमें भी मिले, ऐसी तृप्ति हमें भी मिले। तुम यह भूल ही गए कि बिना प्यास के तृप्ति का कोई आनंद संभव नहीं है। उस आदमी ने जो तृप्ति जानी है, वह प्यास की पीड़ा के कारण जानी है। जितनी गहरी होती है पीड़ा, उतनी ही गहरी होती है तृप्ति। जितनी छिछली होती है पीड़ा, उतनी ही छिछली होती है तृप्ति। और पीड़ा हो ही न, और तुम लोभ के कारण निकल गए पानी पीने, तो प्यास तो है ही नहीं। पहचानोगे कैसे कि पानी हैं?
शास्त्र की परिभाषाओं के अनुसार समझ लिया कि पानी होगा, तो हमेशा संदेह बना रहेगा। क्योंकि अपने भीतर तो कोई भी प्रमाण नहीं है। तुम्हारा कोई संसर्ग तो हुआ नहीं जल से। जलधार से तुम्हारे प्राण तो जुड़े नहीं। तुम तो दूर ही दूर बने रहे हो। और तुम पानी पी भी लो बिना प्यास के और ठीक असली पानी हो, तो भी तो आनंद उपलब्ध न होगा। उलटा भी हो सकता है। कि वमन की इच्छा हो जाए, उलटी हो जाए।
प्यास न हो, तो पानी पीना खतरनाक है। भूख न हो, तो भोजन कर लेना मंहगा
पड़ सकता है। सत्य को चाहा ही न हो, तो सदगुरु का मिलना खतरनाक हो सकता है। सौ में से निन्यानबे लोग तो लोभ के कारण उत्सुक हो जाते हैं। उपनिषद गीत गाते हैं। दादू, कबीर उस परम आनंद की चर्चा करते हैं। सदियों-सदियों में मीरा और नानक, चैतन्य नाचे हैं। उनका नाच तुम्हें छू जाता है। उनके गीत की भनक तुम्हारे कान में पड़ जाती है। उन्हें देख कर तुम्हारा हृदय लोलुप हो उठता है। तुम भी ऐसे होना चाहोगे।
बुद्ध के पास जाकर किसका मन नहीं हो उठता कि ऐसी शांति हमें भी मिले! लेकिन उतनी अशांति तुमने जानी है, जो बुद्ध ने जानी? वही अशांति तो तुम्हारी शांति का द्वार बनेगी। तुमने उस पीड़ा को झेला है, जो बुद्ध ने झेली? तुम उस मार्ग से गुजरे हो--कंटकाकीर्ण--जिससे बुद्ध गुजरे? तो मंजिल पर आकर जो वे नाच रहे हैं, वह उस मार्ग के सारे के सारे दुख अनुभव के कारण। तुम सीधे मंजिल पर पहुंच जाते हो; मार्ग का तुम्हें कोई पता नहीं। मंजिल भी मिल जाए, तो मिली हुई नहीं मालूम पड़ती। और संदेह तो बना ही रहेगा। इसलिए यह तो पूछो ही मत कि सदगुरु मिल गए, इसकी साधक को प्रत्यभिज्ञा कैसे हो, पहचान कैसे हो?
सदगुरु की फिकर छोड़ो। पहली फिकर यह कर लो कि साधक हो? पहले तो इसकी ही प्रत्यभिज्ञा कर लो कि साधक हो?

अगर साधक हो, तो जैसे ही गुरु मिलेगा, प्राण जुड़ जाएंगे; तार मिल जाएगा। कोई बताने की जरूरत न पड़ेगी। अंधेरा, अगर उजाला आ जाए, तो क्या कोई तुम्हें बताने आएगा, तब तुम पहचानोगे कि यह अंधेरा नहीं, उजाला है? अंधे की आंख खुल जाए, तो क्या अंधे को दूसरों को बताना पड़ेगा कि अब तेरी आंख खुल गई, अब तू देख सकता है देख। आंख खुल गई कि अंधा देखने लगता है। रोशनी आ गई कि पहचान ली जाती है, स्वतः प्रमाण है।
सदगुरु का मिलन भी स्वतः प्रमाण है। नहीं तो आखिर में तुम सवाल पूछोगे कि जब परमात्मा मिलेगा तो कैसे प्रत्यभिज्ञा होगी, कैसे पहचानेंगे कि यही परमात्मा है? कोई जरूरत ही नहीं है।
जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है, तब तुम पहचान लेते हो दर्द। और जब दर्द चला जाता है तब भी तुम पहचान लेते हो कि अब सब ठीक हो गया--स्वस्थ। दोनों तुम पहचान लेते हो। जब प्राणों में पीड़ा होती है, तब भी तुम पहचान लेते हो; जब प्राण तृप्त हो जाते हैं, तब भी पहचान लेते हो।
नहीं, कोई प्रत्यभिज्ञा का शास्त्र नहीं है। जरूरत ही नहीं है।
लेकिन भूल पहली जगह हो जाती है। लोभ के कारण बहुत लोग साधना में प्रविष्ट हो जाते हैं। और अगर लोभ के कारण प्रविष्ट न हों, तो भय के कारण प्रविष्ट हो जाते हैं। वह एक ही बात है। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई इसलिए परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है कि डरा हुआ है, भयभीत है। कोई इसलिए प्रार्थना कर रहा है कि लोभातुर है। पर दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। दोनों में कोई भी साधक नहीं है।
साधक का तो अर्थ ही यह है कि जीवन के अनुभव से जाना कि जीवन व्यर्थ है। जीवन से गुजर कर पहचाना कि कोई सार नहीं है। हाथ सिवाय राख लगी कुछ भी न लगा। सब जीवन के अनुभव देख लिए और खाली पाए; पानी के बबूले सिद्ध हुए। जब सारा जीवन राख हो जाता है, जो भी तुम चाह सकते थे, जो भी तुम मांग सकते थे, जो भी तुम्हारी वासना थी, सब व्यर्थ हो जाती है, सब इंद्रधनुष टूट जाते हैं, खंडहर रह जाता है जीवन का--उस अनुभूति के क्षण में खोज शुरू होती है कि फिर सत्य क्या है? यह जीवन तो सपना हो गया। न केवल सपना बल्कि दुख-सपना हो गया; अब सत्य क्या है?
जब तुम ऐसी उत्कंठा से भरते हो, तब गुरु को पहचानना न पड़ेगा। गुरु के पैरों की आवाज सुन कर तुम्हारे हृदय के घूंघर बज उठेंगे। गुरु की आंख में आंख पड़ते ही सदा के बंद द्वार खुल जाएंगे। गुरु का स्पर्श तुम्हें नचा देगा। उसका एक शब्द--और तुम्हारे भीतर ऐसी ओंकार की ध्वनि गूंजने लगेगी, जो तुमने कभी नहीं जानी थी। तुम एक नई पुलक, एक नये संगीत और नये जीवन से आपूरित हो उठोगे।
नहीं, कोई पहचानने की जरूरत न पड़ेगी। तुम पूछोगे नहीं। और सारी दुनिया भी कहती हो कि यह आदमी सतगुरु नहीं तो भी कोई तुम्हें फर्क नहीं पड़ेगा तुम्हारे हृदय ने जान लिया। और हृदय की पहचान ही एकमात्र पहचान है। इसलिए पहले तुम खोज कर लो कि साधक हो? वहीं भूल हो गई, तो फिर मैं तुम्हें सारा शास्त्र भी बता दूं कि इस-इस भांति पहचानना गुरु को, कुछ काम न आएगा।
क्योंकि जितने गुरु हैं उतने ही प्रकार के हैं। कोई परिभाषा काम नहीं
आ सकती। महावीर अपने ढंग के हैं, बुद्ध अपने ढंग के, कृष्ण अपने ढंग के, क्राइस्ट अपने ढंग के, मोहम्मद की बात ही और है। सब अनूठे हैं। अगर तुमने कोई परिभाषा बनाई तो वह किसी एक ही गुरु के आधार पर बनेगी। और वैसा गुरु दुबारा पैदा होने वाला नहीं है। इसलिए तुम्हारी परिभाषा में कभी कोई गुरु बैठेगा नहीं।
जो गुरु पैदा होंगे, वे तुम्हारी परिभाषा में न बैठेंगे। और जिसकी तुम परिभाषा लेकर चल रहे हो, वह दुबारा पैदा नहीं होता। कहीं दुबारा बुद्ध होते हैं! कहीं दुबारा महावीर होते हैं! नाटक करना एक बात है, दुबारा महावीर होना तो बहुत मुश्किल है। अभिनय और बात है। रामलीला की बात मत उठाओ, राम होना बहुत मुश्किल है।
अगर तुमने किसी की परिभाषा पकड़ ली, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे क्योंकि
उस परिभाषा को पूरा करने वाला दुबारा न आएगा। वह आ चुका और जा चुका। और जब

वह आया था, तब तुम पहचान न सके क्योंकि तब तुम कोई दूसरी पुरानी परिभाषा लिए बैठे थे।
महावीर जब मौजूद थे, तब तुम्हारे पास कृष्ण की परिभाषा थी। महावीर बिल्कुल बैठे न उस परिभाषा में। हिंदू-शास्त्रों ने महावीर का उल्लेख ही नहीं किया। इतना महिमावान पुरुष पैदा हुआ और इस देश का बड़े से बड़ा धर्म, इस देश की बहुसंख्या के शास्त्र उसका उल्लेख भी नहीं करते। क्या बात हो गई होगी? एक बार महावीर का नाम नहीं लेते। पक्ष की तो छोड़ दो, विपक्ष में भी कुछ नहीं कहते। प्रशंसा न करते, कम से कम निंदा तो करते!
नहीं, उतना भी ध्यान न दिया। परिभाषा में ही न बैठा यह आदमी। परमात्मा
की परिभाषा उनकी और थी। उन्होंने देखा था कृष्ण को मोरमुकुट बांधे, यह आदमी नग्न खड़ा था। इससे कहीं मेल नहीं बैठता था। उन्होंने कृष्ण को देखा था बांसुरी बजाते। इस आदमी की अगर कोई बांसुरी थी, तो इतनी अदृश्य थी कि किसी को दिखाई नहीं पड़ी। यह इस आदमी के पास कोई बांसुरी ही न थी, यह आदमी उनकी भाषा में कहीं आया नहीं। सब पुराने संकेतों, कसौटियों पर कसा नहीं जा सका। तब महावीर चूक गए।
महावीर को जिन थोड़े से लोगों ने समझा, जिनकी प्यास थी, जिन्होंने पहचाना, जो बिना परिभाषा के पहचानने को राजी थे, वे वे ही लोग थे, जिनकी प्यास थी। अब वे दूसरी परिभाषा बना गए। अब उनके अनुयायी उस परिभाषा को ढो रहे हैं। अब बहुत अड़चन है। अगर वे मुझे बैठे इस कुर्सी पर देख लें, अड़चन है। महावीर कुर्सी पर कभी बैठे नहीं। यह आदमी गलत है। कपड़ा पहने देख लें, मुश्किल। क्योंकि महावीर तो नग्न थे। दिगंबरत्व तो लक्षण है।
अभी तो मुझे वे ही लोग पहचान सकते हैं, जिनकी प्यास है। और खतरा उनके साथ भी यही रहेगा कि मेरे जाने के बाद वे कोई परिभाषा बना लेंगे, जो दूसरों को उलझाएगी क्योंकि फिर दुबारा कोई आता नहीं।
मेरी बात ठीक से समझ लो। जब तक तुम परिभाषा बनाते हो, आदमी चला जाता है। जब तुम्हारी परिभाषा बनकर तैयार हो जाती है, बिल्कुल सुनिश्चित हो जाती है, तब दुबारा वैसा आदमी पैदा नहीं होता। धर्म की सारी विडंबना यही है। इसलिए तुम कृपा करो, परिभाषाएं मत पूछो। प्यास पूछो। अपनी प्यास टटोलो।
अगर प्यास न हो, धर्म की बात ही छोड़ दो। अभी धर्म का क्षण नहीं आया।
अभी थोड़े और भटको। अभी थोड़ा और दुख पाओ। अभी दुख को तुम्हें मांजने दो।
अभी दुख तुम्हें और निखारेगा। अभी जल्दी मत करो। अभी बाजार में ही रहो।
अभी मंदिर की तरफ पीठ रखो। क्योंकि जब तक तुम ठीक से पीड़ा से न भर जाओ, लाख बार मंदिर आओ, आना न हो पाएगा। हर बार खाली हाथ आओगे, खाली हाथ लौट जाओगे।
मंदिर तो उसी दिन आओगे, जिस दिन बाजार की तरफ पीठ ही हो जाए। तुम जान
ही लो कि सब व्यर्थ है। उस दिन तुम बाजार में बैठे-बैठे पाओगे, मंदिर ने तुम्हें घेर लिया। उस दिन तुम्हें गुरु खोजने न जाना पड़ेगा, वह तुम्हारे द्वार पर आकर दस्तक देगा। अपनी प्यास को परख लो।
मगर बड़ा मजा है, लोग प्यास का सवाल ही नहीं उठाते; पूछते हैं, सदगुरु
की परीक्षा क्या? तुम अपनी परीक्षा कर लो। तुम तक तुम्हारी परीक्षा काफी है; उससे आगे मत जाओ। तुम्हें प्रयोजन भी क्या है सदगुरु से? तुम अपनी प्यास को पहचान लो। अगर प्यास है, तो तुम जल की खोज कर लोगे--करनी ही पड़ेगी। मरुस्थल में भी आदमी जल खोज लेता है, प्यास होनी चाहिए।
और प्यास न हो, तो सरोवर के किनारे बैठा रहता है। जल दिखाई ही नहीं पड़ता। जल के होने से थोड़े ही जल दिखाई पड़ता है! भीतर की प्यास होने से दिखाई पड़ता है।
कभी उपवास करके बाजार गए? उस दिन फिर कपड़े की दुकानें नहीं दिखाई पड़तीं, सोने-चांदी की दुकानें नहीं दिखाई पड़तीं, सिर्फ रेस्तरां, होटल! उपवास करके बाजार में जाओ, सब तरफ से भोजन की गंध आती मालूम पड़ती है, जो पहले कभी नहीं मालूम पड़ी थी। सब तरफ भोजन ही बनता हुआ दिखाई पड़ता है। वह पहले भी बन रहा था, लेकिन तब तुम भूखे न थे।
भूखे को भोजन दिखाई पड़ता है।
प्यासे को पानी दिखाई पड़ता है।

साधक को सदगुरु दिखाई पड़ जाता है।

दूसरा प्रश्नः मोक्ष के पश्चात कभी जन्म नहीं होता, इसकी क्या गारंटी है?

कोई गारंटी नहीं है। तुम किसी बैंक में आ गए!
इसको मैं कहता हूं, लोभ से भरा हुआ मन। ऐसा मन साधक नहीं हो सकता। गारंटी की बात क्या है? कौन किसको गारंटी देगा? और वह भी मोक्ष के बाद जन्म नहीं होता, इसकी गारंटी? अगर मैं लिख कर भी दे दूं, तो भी किस काम पड़ेगी? फिर तुम मुझे कहां खोजोगे? तुम मेरी लिखी चिट्ठी कहां ले जाओगे?
मोक्ष के बाद दुबारा जन्म नहीं होता इसकी गारंटी चाहिए--क्यों? क्योंकि यदि करोड़ों वर्षों के बाद नई सृष्टि में जन्म लेना होता है, तो इस मोक्ष का फायदा ही क्या?
इसको मैं कहता हूं, लाभ और लोभ की दृष्टि।
साधना का जन्म ही शुरू से गलत हो गया। यह बच्चा मरा ही पैदा हुआ। अब तुम इसको कितना ही सजाओ, संवारो, कितने ही बहुमूल्य वस्त्रों में रखो, दुर्गंध ही आएगी। यह बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ। यह तो गर्भपात हो गया। साधक पैदा ही नहीं हो पाया। तुम दुकानदार ही रहे, बाजार में ही रहे। मंदिर तो बाजार में न आ पाया, तुम बाजार को मंदिर में ले आए। तुम गारंटी पूछते हो; कोई गारंटी नहीं है।
और साधक गारंटी पूछता ही नहीं। साधक असल में कल की बात ही नहीं उठाता। साधक कहता है, आज काफी है। यह क्षण पर्याप्त है। इस क्षण में अगर मैं मुक्त हूं, तो...
इस बात को थोड़ा समझने की कोशिश करो। अगर इस क्षण में मैं मुक्त हूं, तो दूसरा क्षण पैदा कहां से होगा? इसी क्षण से पैदा होगा। क्षण में से क्षण लगते हैं। जैसे गुलाब पर गुलाब का फूल लगता है, ऐसे मुक्त क्षण में मुक्ति का फूल लगता है। गुलाम क्षण में गुलामी का फूल लगता है। तुम अगर आज गुलाम हो, तो कल भी गुलाम रहोगे। आज का दिन तुम्हारी गुलामी को और मजबूत कर जाएगा। कल तुम और ज्यादा गुलाम हो जाओगे, परसों और ज्यादा गुलाम हो जाओगे। अगर आज तुम मुक्त हो, तो कल आएगा कहां से? कल घड़ी में से थोड़े ही आता है! कल तो तुम्हारे जीवन में से ही आता है। तुम्हारा कल, तुम्हारा कल हैः मेरा कल मेरा कल होगा। उतने ही समय हैं, जितने लोग हैं। समय कोई एक थोड़े ही है। मेरे समय में और तुम्हारे समय में क्या नाता है, क्या संबंध है? तुम्हारा समय तुम्हारे भीतर से निकल रहा है।
जो आदमी सुबह क्रोध से भरा था, उसकी दोपहर में क्रोध की छाया होगी। जो आदमी सुबह प्रार्थना किया है, पूजा किया है, अहोभाव से भरा था, उसकी दोपहर पर अहोभाव की भनक, धुन, सुगंध होगी। तुम्हारा क्षण तुम्हारे ही भीतर से उग रहा है। क्षण ऐसे लगता है तुममें जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। कल की बात ही क्या करनी है? अगर आज का क्षण मेरा मुक्त है, तो वहीं छिपी है गारंटी! क्योंकि कल का क्षण आएगा कहां से? इसी क्षण से निकलेगा--और भी मुक्त होगा। क्योंकि इतना समय मुक्ति के लिए और भी मिल चुका होगा। फिर परसों उस क्षण से निकलेगा।
इसलिए हम कहते हैं, मोक्ष से कोई वापस नहीं आता। क्योंकि मोक्ष बड़ा होता जाता है, बढ़ता जाता है; वापस कैसे लौटोगे? वापस तो वही लौटता है, जिसकी गुलामी बढ़ती जाती है।
ऐसा हुआ, यूनान में एक बहुत अदभुत फकीर हुआ डायोजनीज। उसने सब त्याग
कर दिया था, लेकिन ऐसे वह एक बड़े रईस और कुलीन घराने से आया था। सब छोड़ दिया था, लेकिन कभी अपना काम अपने हाथ से तो किया न था, तो एक गुलाम बचा रखा था। एक नौकर, जो उसकी देखभाल कर देता, सेवा-टहल कर देता। ऐसे वह संन्यासी हो गया था सब छोड़ कर; सिर्फ एक गुलाम बचा लिया था। पुरानी आदत थी, अपना काम कभी किया न था। बिस्तर कौन लगाता, भोजन कौन बनाता? तो एक नौकर रख छोड़ा था।
एक दिन वह नौकर भाग गया। आखिर नौकर को रख छोड़ना आसान मामला नहीं है।
जब उस नौकर ने देखा कि अब यह डायोजनीज बिल्कुल फकीर हो गया है, तो वह यह

उसको रोक भी कैसे सकेगा? इसके पास कुछ भी रोकने को भी नहीं बचा है। तुम अपने नौकर को रोक पाते हो क्योंकि वहां पुलिस है, कानून है, अदालत है। वे सब रक्षा कर रहे हैं। नहीं तो नौकर भाग जाए, तुम क्या करोगे? अब यह आदमी अकेला जंगल में था, नौकर भाग गया।
दूसरे फकीर जो जंगल में साधना में रत थे, उन्होंने कहा कि पीछा करो।
यह बात ठीक नहीं है। इस नौकर को दंड देना उचित है।
लेकिन डायोजनीज ने कहा कि मैं सोचता हूं कि अगर नौकर मेरे बिना जी सकता है और मैं उसके बिना नहीं जी सकता, कौन मालिक है, तो कौन नौकर है, यह जरा संदिग्ध हो जाता है। दास मेरे बिना जी सकता है, उसे मेरी कोई जरूरत नहीं और मैं दास के बिना नहीं जी सकता? तो मैं दासानुदास हो गया। नहीं, अब यह भूल मैं न करूंगा। अच्छा हुआ कि वह भाग गया। अब वह आए भी, तो उसे हाथ जोड़ लूंगा।
यह आदमी मुक्ति की तरफ एक कदम रख रहा है। इसका कल भी तो इसी से निकलेगा।
तब उसके पास सिर्फ एक भिक्षापात्र बचा। एक दिन उसने देखा एक कुत्ते
को पानी पीते झरने पर, तो उसने सोचा यह कुत्ता तो मुझसे ज्यादा मुक्त है। यह भिक्षापात्र तो मुझे ढोना पड़ता है और अगर कुत्ता बिना भिक्षापात्र के रह लेता है, तो मैं आदमी होकर न रह सकूं? कुत्ते से गई बीती दशा हो गई। उसने भिक्षापात्र वहीं छोड़ दिया। वह हाथ से ही पानी पीने लगा। वह हाथ में ही भिक्षा लेने लगा। मुक्ति से दूसरा क्षण निकल आया। दृष्टि!
सिकंदर जब भारत आ रहा था, तो इस फकीर को मिला था। तो उस फकीर ने सिकंदर
को कहा थाः तू व्यर्थ परेशान मत हो। तू किसलिए दुनिया जीतना चाहता है? सिकंदर ने कहाः ताकि मैं आनंद से विश्राम कर सकूं। डायोजनीज हंसने लगा जोर से। वह पहाड़, नदी उसकी हंसी से गूंज उठी होगी। सिकंदर थोड़ा हतप्रभ हुआ। उसने कहाः मैं समझा नहीं; इसमें हंसने की क्या बात है?
डायोजनीज ने कहा कि हंसने की बात है। मुझे देखो, बिना दुनिया को जीते मैं आराम कर रहा हूं, तो तुम दुनिया को जीत कर आराम करोगे यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर आराम ही करना है, तो अभी क्या बिगड़ा है? यह नदी काफी बड़ी है और रेत का घाट बहुत बड़ा है। इस में मेरे लिए भी जगह है, तुम्हारे लिए भी जगह है। सारी दुनिया भी आ जाए, तो विश्राम कर सकती है। तुम लेट जाओ। सुबह कितनी सुंदर है! कहां जाते हो?
डायोजनीज लेटा था नग्न, सुबह धूप ले रहा था। कहते हैं, सिकंदर ईर्ष्या
से भर गया था डायोजनीज की स्वतंत्रता को देख कर। सिकंदर ईर्ष्या से भर जाए, सोचने जैसा है। और सिकंदर ने कहा था, अगर परमात्मा से दुबारा मुझे जन्म लेने का मौका मिला तो मैं कहूंगा इस बार मुझे सिकंदर मत बना, डायोजनीज बना दे। लेकिन अभी तो जाना होगा। अभी तो यात्रा अधूरी है, संसार जीतने को पड़ा है। लेकिन तुम्हारी बात याद रखूंगा। डायोजनीज, तुम्हें भूलूंगा नहीं। तुम्हारे लिए कुछ करना हो, तो मुझे कहो। तुम जो कहोगे करवा दूंगा। मैं खुश हूं।
डायोजनीज ने कहाः ज्यादा से ज्यादा तुम इतना कर सकते हो कि थोड़ा धूप छोड़ कर खड़े हो जाओ। और तो... और न कुछ चाहिए, न कोई जरूरत है। सुबह सर्द है और मैं धूप का मजा ले रहा हूं। तुम नाहक बीच में खड़े हो।
और इतना तुमसे कहे देता हूं कि कोई भी संसार को लौट कर कभी विश्राम नहीं कर पाया। जिसने भी विश्राम किया है, उसने इसी क्षण शुरू किया है। क्योंकि हर क्षण इस क्षण से पैदा होता है।
तुम कहते हो, कल करेंगे। आज तुम कुछ तो करोगे? तुम जो करोगे, उससे तुम्हारा कल पैदा होगा। तुम कहते हो, आज तो दुकान कर लेने दो, फिर कल पूजा कर लेंगे। लेकिन कल आएगा कहां से? आज की दुकानदारी से ही आएगा। फिर पूजा कैसे पैदा होगी? उससे दुकानदारी ही पैदा होगी। एक दिन और बीत गया निद्रा में, निद्रा और मजबूत हो गई।
तुम यह पूछो ही मत कि मोक्ष के बाद आना होता है? मोक्ष का अर्थ ही यह
है कि जिसमें लौटने का उपाय नहीं रह जाता। मोक्ष का अर्थ क्या है, तुम समझे

ही नहीं; इसलिए इस तरह का सवाल उठता है। मोक्ष का अर्थ हैः वह व्यक्ति जिसकी अब कोई वासना न रही। लौटता है आदमी वासना के कारण।
थोड़ा समझोः एक बच्चा स्कूल में आता है। और वह स्कूल के प्राचार्य को पूछता है कि अगर पास हो जाऊंगा, तो मुझे दुबारा तो स्कूल नहीं आना पड़ेगा? तो प्राचार्य कहेगा कि अगर तुम उत्तीर्ण हो गए तो तुम आना भी चाहो, हम तुम्हें भीतर न घुसने देंगे। क्योंकि इस स्कूल का उपयोग ही इतना है कि तुम उत्तीर्ण हो गए, बात खत्म हो गई। अगर उत्तीर्ण हुए लोग यहां आने लगें, तो छोटे बच्चों का क्या होगा? वे कहां जाएंगे?
ऐसे ही भीड़-भड़क्का बहुत है। उत्तीर्ण आदमी को तो आने का कोई सवाल नहीं रहा। लेकिन जो असफल हुआ है, उसे वापस लौटना पड़ता है। संसार एक प्रशिक्षण है परमात्मा को पाने का। जिसने पा लिया, बात खत्म हो गई प्रशिक्षण पूरा हो गया। लौटने का सवाल ही नहीं उठता।
तुम्हारे मन में उठता है, क्योंकि तुम्हारे वह जो कृपण और लोभी मन है,
वह हर चीज को पहले से मजबूत और पक्का कर लेना चाहता है; तब कदम उठाओगे तुम। जब तक कि तुम्हें कोई गारंटी न मिल जाए, तब तक तुम ध्यान न करोगे। तुम्हारी इस गारंटी की आकांक्षा ने ही दुनिया में बहुत उपद्रव खड़ा किया है। तब न मालूम कितने तरह के चालाक लोग तुम्हें गारंटी देने के लिए तैयार हो गए हैं। तुम जो मांगते हो, उसको कोई न कोई तो पूर्ति करने के लिए तैयार हो जाएगा।
मैं सूरत में था, तो एक सज्जन ने मुझे आकर कहा कि उनका धर्मगुरु दऊदी बोहरा लोगों को चिट्ठी लिख कर देता है भगवान के नाम कि इस आदमी ने एक लाख रुपया दान किया है, यह बड़ा अच्छा आदमी है, इसकी साज-सम्हाल रखना, ढंग से स्वागत वगैरह करवाना। कुछ लिख दी चिट्ठी भगवान के नाम और उस चिट्ठी को वह आदमी जब मरता है, तो उसकी छाती पर रख कर और कब्र में रख दिया जाता है।
तुम गारंटी मांगते हो, देने वाले मिल जाते हैं। मगर कैसी मूढ़ता है! वह आदमी भी यहीं पड़ा रह जाता है, वह चिट्ठी भी यहीं पड़ी रह जाती है। लेकिन लौट कर इस धर्मगुरु से अदालत में लड़ने का भी तो कोई उपाय नहीं है। कोई कभी लौटता नहीं। कोई कभी शिकायत नहीं करता कि चिट्ठी काम नहीं आई। यह चिट्ठी बेकार है। न कोई कभी लौट सकता है, न कोई मुकदमा हो सकता है। यह चालाकी और शोषण जारी रहता है।
तुम जब तक मांगोगे, देने वाले मिल जाएंगे। दोष उनका नहीं है, दोष तुम्हारा है।
और तुम पूछते हो, फायदा क्या है अगर फिर लौटना पड़ा? तुम जब भोजन करते
हो तब तुम यह नहीं पूछते कि कल फिर भोजन करना पड़ेगा, फायदा क्या है? तुम जब पानी पीते हो तब तुम नहीं पूछते कि फिर पानी पीना पड़ेगा, फायदा क्या है? तुम जब श्वास भीतर लेते हो तब तुम नहीं कहते, क्या फायदा? फिर बाहर निकालनी पड़े, फिर भीतर करनी पड़े, फायदा क्या?
जीवन में फायदे की बात ही पूछना नासमझी की है। जीवन कोई धंधा थोड़े ही है! फायदे का दृष्टिकोण ही भूल-भरा है। उससे ही तो तुम भटक रहे हो। जहां जाना चाहिए वहां नहीं पहुंच पाते क्योंकि वहां जाने में कोई फायदा नहीं दिखाई पड़ता। और जहां फायदा दिखाई पड़ता है, वह तुम्हारी नियति नहीं। मैंने सुना है कि एक मारवाड़ी सेठ स्टेशन आया। उसने टिकट दफ्तर में खड़े होकर पूछा कि मुझे रामपुर जाना है, टिकट दे दो। उस टिकट बाबू ने कहा कि रामपुर तीन है। एक मध्य प्रदेश में, एक उत्तर प्रदेश में, एक बिहार में है, कौन से रामपुर जाना है? सेठ ने कहाः इसमें भी कोई पूछने की बात है? जहां की टिकट सबसे कम हो!
फायदे का दृष्टिकोण--कहां जाना है, इससे कुछ लेना-देना ही नहीं। तो यह पहुंचेगा तो रामपुर, लेकिन उस रामपुर पहुंच जाएगा, जहां जाना ही नहीं था। फायदे को पूछ कर गए तो तुम जीवन को चूक जाओगे।
क्योंकि यह जो अस्तित्व है, यह खेल है, यह लीला है। यहां फायदे का सवाल नहीं है। यह आनंद उत्सव है। यहां कोई साध्य नहीं है। यहां होने में ही आनंद है। अगर तुमने पूछा कि क्यों श्वास लें, तो आत्महत्या करनी पड़ेगी।

क्योंकि कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, क्यों श्वास ले। क्यों पानी पीएं, फायदा क्या है? क्योंकि फिर पीना पड़ेगा। फिर फिर पीना पड़ेगा--मत पीओ! असली सवाल फायदे का है ही नहीं। असली सवाल तो जीवन के आनंद को अनुभव करने का है। जब कंठ में प्यास होती है और तुम पानी पीते हो, तो एक तृप्ति उतरती है। जब तुम भूखे होते हो और भूख निश्चित जलती है, तुम्हारी जठराग्नि उठती है, तब तुम भोजन करते हो, तब एक गहन तृप्ति होती है। जब तुम भीतर नई श्वास ले जाते हो, तो नया प्राण तुम्हारे जीवन में दौड़ता है। जब तुम ध्यान करते हो, तो एक नई समाधि तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है।
ऐसा नहीं है कि कल नहीं करनी पड़ेगी, तभी तुम आज करोगे। तब तो तुम कभी
भी न करोगे। जीवन का प्रत्येक पल उसकी समग्रता में जीने के लिए है। यहां लक्ष्य तो कुछ भी नहीं है। यह संसार कहीं जा नहीं रहा है। यह संसार वहां है ही, जहां इसे पहुंचना है। इसलिए केवल वे ही लोग सत्य को उपलब्ध हो पाते हैं, जिनके जीवन में साधन ही साध्य हो जाता है। इस सूत्र को तुम जितनी गहराई में उतार सको उतार लो।
केवल वे पहुंच जाते हैं परमात्मा तक, केवल वे ही मुक्त हो पाते हैं, जिनके जीवन में साधन ही साध्य हो जाता है।
इसका मतलब? इसका मतलब कि मंजिल की वे बात ही नहीं करते। वे कहते हैं, राह पर चलना इतना सुखद है, कौन फिकर करता मंजिल की! वे इसकी बात ही नहीं करते कि कल क्या मिलेगा; वे कहते हैं, आज इतना मिला है, कल की बात ही क्यों उठानी? आज इतना आपूर मिला है कि नाच लें, अनुगृहीत हो लें।
ऐसे व्यक्ति को कल और ज्यादा मिलता है। उसके द्वार बड़े होते जाते हैं। एक दिन सारा आकाश उसके हृदय में समा जाता है। एक दिन अनंत उसकी सीमा में उतर आता है। एक दिन उसकी बूंद में पूरा सागर छलांग ले लेता है।
तुम दुकानदार की नजर से परमात्मा की तरफ मत आना। अच्छा है, तुम दुकानदार ही रहो। अच्छे दुकानदारों की वैसे भी जरूरत है। बुरे साधक होने की बजाए अच्छा दुकानदार होना बेहतर है। लेकिन जब साधक होने आओ, तो समझ कर आओ।
साधक की दुनिया का गणित ही उलटा है। वहां साधक इसलिए कुछ नहीं करता कि इससे मिलेगा। वहां साधक इसलिए कुछ करता है, करने में ही मिलता है। करना और मिलना एक साथ, एक ही क्षण में समा जाते हैं। मंजिल और मार्ग एक साथ। मार्ग ही मंजिल हो जाता है।
तुमने प्रार्थना की--तुम दो तरह से कर सकते हो। एक तो दुकानदार की प्रार्थना है कि वह कहता है प्रार्थना कर रहा हूं, नारियल चढ़ाया है, फूल-पत्ती लाया हूं खरीद कर, मंहगाई का जमाना है, ख्याल रखना। कहीं ऐसा न हो कि धोखा दे जाओ। मुकदमा जिता देना। लड़के को पास करा देना। पत्नी बीमार पड़ी है, ठीक कर देना।
पांच आने का सड़ा नारियल ले आए हैं, परमात्मा पर बड़ी कृपा कर रहे हैं! मंदिरों में कोई अच्छा नारियल चढ़ाता ही नहीं। मंदिरों के पास नारियल की विशेष दुकान होती है। उसमें सड़े नारियल ही बिकते हैं। और ऐसे नारियल जो लाखों बार चढ़ाए जा चुके हैं, वे फिर वापस आ जाते हैं। इसलिए दुनिया में नारियलों के दाम बढ़ते जाते हैं लेकिन मंदिर के पास की दुकान पर दाम वही रहते हैं। कोई जरूरत ही नहीं दाम बढ़ाने की। क्योंकि वे नारियल कोई खा नहीं सकता। कोई काम के नहीं हैं, किसी मतलब के नहीं हैं। वे सिर्फ चढ़ाने योग्य हैं। परमात्मा को तुम चढ़ाते तब हो, जब वह किसी काम का नहीं होता। वे चढ़ते हैं बार-बार, सुबह फिर बिक जाते हैं दुकान पर। फिर चढ़ जाते हैं, फिर दुकान पर आ जाते हैं।
तुम एक सड़ा नारियल चढ़ा देते हो। तुमने बड़ी परमात्मा पर कृपा की। अब तुम कल घर में बैठ कर रास्ता देखोगे कि परिणाम क्या होता है? तुम समझे ही नहीं प्रार्थना का अर्थ।
जहां तक मांग है, वहां तक प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना चढ़ाना मात्र है, मांगना नहीं है। प्रार्थना में फल की आकांक्षा नहीं है। अगर फल की आकांक्षा है, तब वह व्यवसाय है, प्रार्थना नहीं। तुम गए, यह तुम्हारी खुशी थी। यह तुम्हारा आनंद था कि तुमने चढ़ाया। तुम परमात्मा को थोड़ी भेंट करके

आए, इससे तुम यह मत समझना कि परमात्मा तुम्हारे प्रति अनुगृहीत हुआ। उसने तुम्हें इतना दिया है, उसमें से तुम एक कण जाकर वापस लौटा आए और तुम सोचते हो परमात्मा अनुगृहीत हो। तुमने चढ़ाया, यह तुम्हारे अनुग्रह की स्वीकृति होनी चाहिए कि मैं धन्यभागी हूं कि तूने मुझे इतना दिया। थोड़ा सा चढ़ा जाता हूं, ज्यादा मेरी सामर्थ्य नहीं है।
वास्तविक प्रार्थना करने वाला हमेशा अनुभव करेगा कि जितना मुझे चढ़ाना था उतना मैं चढ़ा न पाया। जो मुझे देना था, वह मैं दे न पाया। जो मुझे बांटना था, वह मैं बांट न सका। वह हमेशा इस पीड़ा से भरा रहेगा कि मिला मुझे बहुत, दे मैं कुछ भी न पाया। झूठा प्रार्थी समझेगा कि मैंने एक नारियल चढ़ाया, अब इसका फल होना चाहिए। अगर फल न हो, तो परमात्मा का होना या न होना तुम्हारे सड़े नारियल पर निर्भर है। अगर फल न हुआ, तो तुम कहोगे परमात्मा नहीं है। क्योंकि सड़ा नारियल काम न आया। अगर फल हुआ तो--
एक आदमी मेरे पास आया। उसने कहाः मैं नास्तिक था, लेकिन अब मैं आस्तिक
हो गया हूं।
मैंने कहाः इतनी आसानी से कोई नास्तिक से आस्तिक नहीं होता। तू पूरी कहानी बता। जरूर कोई गड़बड़ हो गई। क्योंकि मुश्किल से कभी हजारों साल में कोई नास्तिक आस्तिक होता है। नास्तिक से आस्तिक होना तो बस, मोक्ष पा लेना है। आस्तिक हैं कहां? हजारों साल में कभी किसी आस्तिक के दर्शन होते हैं। तब पृथ्वी पर स्वर्ग उतरता है। तू आस्तिक हो गया? जरूर कहीं कुछ भूल हो गई है। क्या मामला है?
उसने कहा कि मेरे लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी, तो मैं जाकर अल्टीमेटम दे आया। अल्टीमेटम! परमात्मा को! कि अगर पंद्रह दिन के भीतर नौकरी न मिली तो समझ ले कि फिर तुझे बिल्कुल नहीं मानूंगा। बस यह आखिरी हिसाब है। अगर मिल गई नौकरी, सदा तेरी भक्ति करूंगा।
और नौकरी मिल गई इसलिए वह आदमी आस्तिक हो गया। मैंने उससे कहा कि अब दुबारा अल्टीमेटम मत देना, नहीं तो नास्तिक हो जाएगा। संयोगवशात यह नौकरी मिल गई है, तेरे अल्टीमेटम के भय के कारण नहीं कि भगवान को तू डरा आया था, तो वे भयभीत होकर कंप गए कि नहीं देंगे नौकरी, तो तू मानेगा नहीं। ऐसा दीन-हीन भगवान! क्या कोई राजनीतिक नेता है कि तुम्हारी वोट पर निर्भर है? दो कौड़ी का ऐसा भगवान जो तुम्हारी अल्टीमेटम से डर जाए। अब तू दुबारा मत देना, तो आस्तिकता तेरी बनी रहेगी। क्योंकि इतनी झीनी चादर है तेरी आस्तिकता की, जरा सी खरोंच में कट जाएगी और नास्तिक बाहर आ जाएगा।
मगर वह न माना, क्योंकि लोभी कैसे मान सकता है? सफल हो गया था। तब पत्नी बीमार हुई, उसने फिर जाकर वही किया। क्योंकि एक दफा कारगर हो गई बात। और पत्नी मर गई, वह ठीक न हुई। कोई दो-तीन साल बाद यह घटना घटी। वह मेरे पास आया। उसने कहाः आपने ठीक कहा था; मैं महा नास्तिक हो गया हूं। मैंने कहाः तुझे जो होना हो, होता रह; लेकिन यह तेरे मन का ही खेल है। न
तू आस्तिक हुआ कभी, न तू कभी नास्तिक हुआ। तेरी नास्तिकता आस्तिकता सब सौदा है। यह तेरी कोई जीवन-दृष्टि नहीं है, तेरा कोई दर्शन नहीं है, तेरी कोई अनुभूति नहीं है। तू नाहक ही आस्तिक हो रहा है, नास्तिक हो रहा है। तू अकेले ही खेल खेल रहा है। इसमें परमात्मा भागीदार नहीं है। अब तू नास्तिक ही रहना। अब दुबारा भूल मत करना। नहीं तो फिर आस्तिक हो जाएगा और ऐसे ही-- सुबह होती, शाम होती, ऐसे ही उम्र तमाम होती--और तू कभी कुछ भी न हो पाएगा। लोभ और लाभ की दृष्टि का परमात्मा से कभी संबंध नहीं जुड़ता। वहां तुम जाना मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में, लेकिन प्रार्थना ही तुम्हारा अहोभाव हो। प्रार्थना अपने आप में अंत हो। तुम इसलिए प्रार्थना करना कि प्रार्थना करना ऐसा महासुख है। उसके पीछे जरा सी भी रेखा मांग की न हो, तभी तुम्हें स्वाद लगेगा। तभी तुम्हें पहली दफा पता चलेगा, प्रार्थना क्या है। तभी तुम्हें पहली दफा पता चलेगा, ध्यान क्या है। मेरे पास लोग आते हैं, निरंतर वे कहते हैं कि आप ध्यान समझाते हैं, फायदा क्या, लाभ क्या, इससे क्या मिलेगा?
उनसे मैं कहता हूं, मिलेगा तो कुछ भी नहीं; बहुत कुछ खो जाएगा। तुम्हारी चिंता, तुम्हारी बेचैनी, तनाव, तुम्हारी दौड़, महत्वाकांक्षा,

ईर्ष्या, यह सब खो जाएगा और इसके साथ तुम्हारी सारी दुनिया का फैलाव। क्योंकि इसी पर तुम्हारा सारा तंबू तना है--इन्हीं खंभों पर। वह सब गिर जाएगा। मटिया मेट हो जाओगे, अगर ध्यान किया।
ध्यान करने के लिए जुआरी चाहिए, दुकानदार नहीं। वहां दांव पर लगा दिया सब; मांगना क्या है? और यह मैं तुमसे कहता हूं, जो नहीं मांगता, उसे मिलता है, जो मांगता है, वह चूक जाता है। यह उलटा गणित है। यहां जो मांगेगा, वह खाली हाथ लौट जाएगा। यहां जो बिना मांगे आएगा, उसका प्राण-प्राण, रोआं- रोआं भर जाएगा।

तीसरा प्रश्नः क्या कारण है कि सदगुरु के शिष्य तो थोड़े होते हैं लेकिन असदगुरु के इर्द-गिर्द अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है?

यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसा होना ही चाहिए। क्योंकि सदगुरु को कितने लोग पहचान सकेंगे? वही--जिनकी प्यास है; जिनके लिए जीवन व्यर्थ हो गया; जिनके लिए जीवन संताप और स्वप्न हो गया।
असदगुरु के पास भीड़ इकट्ठी होगी। क्योंकि असदगुरु भीड़ की आकांक्षाएं तृप्त कर रहा है। ताबीज बांध रहा है, राख निकाल रहा है, जादू कर रहा है। मूढ़ बड़ी संख्या में वहां इकट्ठे हो जाएंगे। वही वे चाहते हैं। उनकी आकांक्षाएं जो तृप्त कर रहा है, वहां वे इकट्ठे होंगे।
सदगुरु तो छीन लेगा। सदगुरु तो तुम्हें मिटाएगा। तो जो दादू ने कहा है, वह निशाना लगा-लगा कर तीर छोड़ेगा। वह तुम्हें मिटाएगा, वह तुम्हें मार ही डालेगा। क्योंकि तुम मिटोगे, तभी तुम्हारी राख पर परमात्मा का आविर्भाव है। तुम रोग हो। वह तुम्हें सहारा न देगा, वह तुम्हें गिराएगा। वह तुम्हें जड़ों से खोद डालेगा।
तो सदगुरु के पास तो वही आएगा जो मरने को तैयार है। सदगुरु यानी मृत्यु; मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु--महामृत्यु। क्योंकि मृत्यु के बाद तो तुम फिर पैदा हो जाओगे। लेकिन अगर सदगुरु की मृत्यु में तुम डूब गए, तो फिर तुम्हारा लौटना नहीं। फिर दुबारा तुम पैदा न हो सकोगे।
इसलिए बहुत थोड़े से हिम्मतवर लोग वहां इकट्ठे होंगे। सबका वहां काम
भी नहीं है। बच्चों की वहां जरूरत भी नहीं है। अभी जो खिलौनों से खेल रहे हैं, उनका वहां क्या प्रयोजन?
लोग खिलौनों से ही खेलते रहते हैं जिंदगी भर। बचपन में छोटी सी कार से खेलते हैं, चाबी भर कर चलाते हैं, फिर बड़े हो जाते हैं, तो बड़ी कार पर खेल जारी रहता है। बचपन में छोटे गुड्डे-गुड्डियों की शादी करते हैं, बड़े हो जाते हैं तो रामलीला करते हैं, राम-सीता की बारात निकालते हैं, खेल जारी है। छोटे बच्चे होते हैं, कंकड़ पत्थर इकट्ठे करते हैं। बड़े हो जाते हैं, हीरे-जवाहरात इकट्ठे करते हैं--कंकड़-पत्थर ही हैं आखिरी हिसाब में। खेल जारी रहता है। छोटे बच्चे सिगरेट के डब्बे, माचिस के डब्बे, टिकटें इकट्ठी करते रहते हैं। बड़े हो गए, नोट इकट्ठे करते रहते हैं--मामला एक ही है। सारा खेल खिलौनों का है।
सदगुरु के पास तो केवल वही आ सकता है जो प्रौढ़ हो गया, जिसने सारे खिलौने फेंक दिए और जिसने कहा, बहुत हो चुकी नासमझी। अब जागने का क्षण आ गया। निश्चित, जागने में खतरा है। क्योंकि तुम्हारे सब सपने टूट जाएंगे। सपनों में एक सुरक्षा है। तुम्हारे सपने--उनमें मधुर सपने भी हैं। माना कि दुखद सपने भी हैं, लेकिन वे सब संयुक्त हैं। अगर दुखद सपने तोड़ने हों, तो सुखद सपने भी टूट जाएंगे। अगर जागना है, तो दुख, सुख दोनों से जागना होगा। तुम भी चाहते हो जागना, लेकिन चाहते हो कि सुखद सपना तो बरकरार रहे, सिर्फ दुख टूट जाए। तुम भी चाहते हो जागना, लेकिन बस, दुख छूटे, सुख न छूट जाए। तो तुम असदगुरु के पास इकट्ठे हो जाओगे। वहां भीड़ लगेगी।
लेकिन सदगुरु के पास तो सुख भी छूटेगा, दुख भी छूटेगा; तभी तो शांति का जन्म होता है। जब सारे द्वंद्व मिट जाते हैं, तभी तो निर्द्वंद्व आकाश-- तभी तो उस असीम के साथ संबंध जुड़ता है। तभी तो जैसा दादू कहते हैं, तार जुड़ते हैं उसके पहले तो तार नहीं जुड़ते।

स्वभावतः जहां तुम्हारी बीमारी ठीक करने के लिए कोई आश्वासन दिया जा रहा हो, मुकदमे जिताने का कोई भरोसा दिया जा रहा हो, धन पाने की कोई महत्वाकांक्षा को पूरा करने की बात कही जा रही हो, वहां भीड़ इकट्ठी होगी। साधारण से लोगों से लेकर जिनको तुम असाधारण कहते हो, वे भी ऐसे लोगों के आस-पास इकट्ठे होंगे। आशीर्वाद चाहिए तुम्हारी मूर्खताओं के लिए।
और जिंदगी का नियम ऐसा है कि अगर तुम भी आंख बंद करके एक झाड़ के नीचे बैठे जाओ; और जो भी आए उसको आशीर्वाद देते जाओ, तो भी पचास प्रतिशत तो आशीर्वाद पूरे होने की वाले हैं। इसलिए तुम्हें कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। तुम एक गधे को भी बिठाल दो सजा कर और वह भी बस हाथ उठा कर आशीर्वाद देता जाए बिना देखे, कौन आ रहा है, इससे कोई लेना-देना नहीं है।
जितने मरीज आएंगे, उनमें से सीधे गणित में कम से कम पचास प्रतिशत तो ठीक होने वाले हैं, ज्यादा भी ठीक हो जाएंगे। क्योंकि सभी बीमारियां मार तो नहीं डालती हैं। डाक्टर भी इलाज थोड़े ही करता हैं, सिर्फ सहारा देता है। कहावत है पश्चिम में कि अगर सर्दी-जुकाम हो जाए तो बिना दवा के सात दिन में ठीक हो जाता है और दवा लो तो एक सप्ताह में। दवा और न दवा का कोई बड़ा सवाल नहीं है। बीमारी तो सब ठीक हो जाती है। सभी बीमारियों में आदमी मर थोड़े ही जाता है! समय की बात है। बैठे रहो।
मुकदमे भी आखिर दो लोग लड़ेंगे मुकदमा, तो एक तो जीतेगा। और अक्सर ऐसा होता है कि एक ही असदगुरु के पास दोनों चले आते हैं--हारने वाला, जीतने वाला; एक तो जीतेगा ही। और यह खेल जारी रहता है। जो पचास प्रतिशत सफल हो जाते हैं, तुम्हारे आशीर्वाद से, वे दुबारा लौट आते हैं फूलमालाएं लेकर, और प्रचार कर आते हैं और पचास नासमझों को साथ ले आते हैं।
जो हार गए, वे किसी दूसरे गुरु की तलाश करते हैं। वे फिर तुम्हारे पास नहीं आते। वे भी कहीं न कहीं ठहर जाएंगे। कहीं न कहीं, कभी न कभी तो जीतेंगे। वहीं ठहर जाएंगे। इसमें गुरु का कुछ लेना-देना नहीं है। यह सब खेल तुम्हारी नासमझी से चलता है।
लेकिन सदगुरु के पास तुम्हारा कोई खेल नहीं चल सकता। भीड़, वहां इकट्ठी नहीं हो सकती। वहां तो खेल तोड़ने का ही आयोजन है।
इसलिए बहुत थोड़े से चुने हुए लोग, छंटे हुए लोग, जो सच में ही राजी हैं छलांग लेने को, जो उस घड़ी में आ गए हैं जहां कुछ रूपांतरण आवश्यक हो गया है, अब जिनकी आकांक्षा बाहर की नहीं है, अब जो क्रांति भीतर चाहते हैं, वे थोड़े से लोग ही वहां पहुंच सकते हैं।
और उन थोड़े से लोगों को भी बड़ी हिम्मत रहे, तो ही वहां टिक सकते हैं। अन्यथा वे भी भाग खड़े होंगे। क्योंकि सदगुरु तुम्हें कोई सहारा नहीं देता टिकने का। वह तुम्हारे अहंकार की कोई तृप्ति नहीं करता। जिस अहंकार को मिटाना ही है, उसको किसी तरह का सहारा देना उचित नहीं है। तुम वहां अगर टिके, तो अपनी हिम्मत से ही टिकोगे। वह तो तुम्हारे पैरों के नीचे की जमीन खींचता चला जाता है।
तो थोड़े से दुस्साहसियों का काम है। पर वैसे ही दुस्साहसी जीवन के परम सत्य को उपलब्ध भी होते हैं। वह दुस्साहस करने योग्य है।

चौथा प्रश्नः मैं ध्यान से भयभीत हूं। कृपया समझाएं कि इसके क्या कारण हो सकते हैं। और इस भय से कैसे छुटकारा हो?

ध्यान से भय तो स्वाभाविक है--होगा ही।
क्योंकि ध्यान का मतलब हैः खोना, विलीन होना। ध्यान का अर्थ हैः मिटना। तुम्हारी सारी परिचित भूमि विलीन हो जाएगी। तुम अपरिचित लोक में संचरण करोगे। तुम्हारे विचारों का जगत पीछे छूट जाएगा, जो तुम्हारा घर रहा सदियों से, जन्मों से। तुम अचानक बेघरबार हो जाओगे। विचारों की छाया हट जाएगी, छप्पर टूट जाएगा। तुम शून्य में उतरोगे, निर्विचार में डूबोगे-- खतरा है।
सागर में उतरने जैसा है छोटी सी डोंगी लेकर। दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता और यह किनारा छोड़ना पड़ रहा है। भय तो लगेगा ही। उत्ताल तरंगें हैं,

हाथ में कोई नक्शा भी नहीं है। दूसरी तरफ पहुंचा है कोई, इसका पक्का भरोसा भी नहीं, क्योंकि लौट कर कोई आता नहीं।
ध्यान बड़ी गहन यात्रा है। इसलिए भय तो लगेगा। भय स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन भय से उठना जरूरी है, अन्यथा यात्रा शुरू न होगी। क्या करें, जिससे भय छूट जाए?
पहली बात, जो तुमने कभी नहीं की है, वह भय को स्वीकार कर लेना। क्योंकि जितना तुम अस्वीकार करोगे, उतने ही तुम भयभीत होने लगोगे। भय को स्वीकार कर लेना है कि स्वाभाविक है। मिटने जा रहे हैं, भय तो लगेगा। बड़े से बड़े युद्ध-क्षेत्र में जा रहे हैं, भय तो लगेगा। स्वेच्छा से मृत्यु में उतर रहे हैं। अपने हाथ से सीढ़ियां लगा रहे हैं, भय तो लगेगा।
स्वाभाविक है, स्वीकार कर लेना है। कंपते हुए पैर से जाना है। कंपते हुए पैर से जाएंगे। अगर तुमने स्वीकार कर लिया तो तुम पाओगे कि जैसे-जैसे तुम स्वीकार करने लगोगे, वैसे-वैसे भय तिरोहित होने लगेगा। अगर तुमने अस्वीकार किया और तुम उससे लड़ने लगे और उसको दबाने लगे, तो तुम ज्यादा से ज्यादा भय को अपनी छाती में भीतर दबा सकते हो। लेकिन जो भीतर दबा है, वह तुम्हें हमेशा कंपाएगा। और जब भी ध्यान समाधि के करीब पहुंचने लगेगा, जब भी ऐसा लगेगा कि अब मिटे, वह भय उभर कर खड़ा हो जाएगा। फूट पड़ेगा, विस्फोट हो जाएगा। वह तुम्हें भर देगा।
रोज यह घटता है। मेरे पास लोग आते हैं रोज, जो ध्यान ठीक से कर रहे हैं। एक न एक दिन वह घड़ी आती है, जहां उनको भय पकड़ता है। उन्होंने भय को दबा लिया। सुनी नहीं मेरी।
उसे स्वीकार कर लो, दबाओ मत। कंपो, कंपना है तो। किससे छिपाना है? परमात्मा के सामने खड़े हो जाना है नग्न, जैसे हो। अगर भयभीत हो, तो भयभीत। छिपाना किससे है? छिपाओगे कैसे? उससे छिपेगा भी कैसे?
तुम जैसे हो, अपने को वैसा ही प्रकट कर दो। कहो कि मैं भयभीत हूं। कहो
कि मैं कंप रहा हूं। कहो कि मैं डर रहा हूं, लेकिन फिर भी आता हूं। बावजूद भय के आता हूं। भय रहेगा साथ-साथ, तो भी आता हूं। डरूंगा, कंपूंगा, पैर कंपेंगे, ठीक पैर न पड़ेंगे, लेकिन आता हूं। इससे आना बंद नहीं करूंगा और भय को दबाऊंगा भी नहीं।
ये दो बातें समझ लेने जैसी हैं। जो लोग भय को नहीं दबाते, वे जाना बंद
कर देते हैं। जो लोग जाना चाहते हैं, वे भय को दबा लेते हैं। दोनों चूक जाते हैं। तुम जाना भी और भयभीत होकर जाना। जब भय है, तो क्या कर सकते हो? धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जैसे-जैसे तुमने स्वीकार किया, वैसे-वैसे भय शांत होने लगा।
स्वीकार एक अदभुत कला है। कुछ चीजें स्वीकार करने से विलीन हो जाती हैं। कुछ चीजें अस्वीकार करने से बढ़ती हैं, मिटती नहीं। तुम स्वीकार करके देखो।
तुम अस्वीकार क्यों करना चाहते हो भय को? क्योंकि लगता है कि तुम और भयभीत! तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। तुम्हारी प्रतिमा जो तुमने ही बनाई है, खंडित होती लगती है। तुम बड़े बहादुर! कि अपने नाम के पीछे तुमने सिंह लगा रखा है कि तुम लायन क्लब के सदस्य हो--शेर बच्चा! पागल हो। एक प्रतिमा बना रखी है, उस प्रतिमा को तुम बचाने की कोशिश कर रहे हो। जब तुम ध्यान के जगत में उतरोगे, तो तुम्हारा शेर कंपेगा। तुम्हारा सिंह एकदम रोने लगेगा, घबड़ाने लगेगा। तब तुम चाहोगे कि क्या करें?
दो ही उपाय हैं साधारणतः। या तो लौट जाओ वापस दुनिया में, यह झंझट ही छोड़ो। तो वहां कम से कम तुम सिंह की तरह माने जाते हो। दबदबा है, दादा हो, लोग डरते हैं, कंपते हैं। तुम कभी कंपे? लोगों को कंपा देते हो। लौट जाओ वहीं। और या फिर दूसरा उपाय है कि दबा लो, बांध लो मुट्ठियां, सिकोड़ लो हृदय को, भींच लो दांत और दबा लो भय को। मत कंपने दो शरीर को।
ये दो साधारण उपाय हैं; दोनों गलत हैं। लौट गए, तो तुम अपरिसीम संपत्ति से वंचित हो गए। घर के करीब आते-आते भटक गए। द्वार करीब था, खुलने के ही करीब था और तुमने मुंह मोड़ लिया।

आना पड़ेगा वापस। कोई भी मंदिर के बाहर रह नहीं सकता सदा के लिए। क्योंकि बाहर तुम कितने ही भटको, कभी शांत नहीं हो सकते। धर्म अंतिम शरण है। वहां आना ही होगा। वहीं समर्पण है। वहीं शरण है। कितने ही भागो और कितने ही बचो, एक न एक दिन वापस लौट आना पड़ेगा। तब वही सवाल खड़ा होगा।
बेहतर है, आज ही निपट लो। कल पर क्या टालना!
और दूसरा अगर तुमने उपाय किया कि दबा लिया, तो तुम पाओगे कि जैसे ही ध्यान की गहराई आएगी, वैसे ही तुम्हारा दमन किया हुआ विस्फोट होगा। क्योंकि ध्यान की गहराई में आदमी शिथिल हो जाता है, रिलैक्स हो जाता है। जब तुम शिथिल होओगे, तो जो तुम दबाने के लिए उपाय कर रह थे, वे भी शिथिल हो जाएंगे। उनके शिथिल होते ही जो तुमने दबाया है वह हुंकार के साथ उठेगा। वह तुम्हारे सारे भवन को नष्ट कर देगा। तुम फिर वापस अपने को बाजार में पाओगे। और पहले से भी दयनीय दशा में पाओगे। क्योंकि अब सिंह होने का ख्याल भी नहीं पकड़ सकोगे। अब तो कंप गए, अब तो डर गए।
सूफियों की एक पुरानी कथा है कि एक फकीर सत्य की खोज में था। उसने अपने गुरु से पूछा कि सत्य कहां मिलेगा? उसके गुरु ने कहाः सत्य? सत्य वहां मिलेगा जहां दुनिया का अंत होता है।
तो उस दिन से वह फकीर दुनिया का अंत खोजने निकल गया। कहानी बड़ी मधुर है। वर्षों चलने के बाद, भटकने के बाद, आखिर उस जगह पहुंच गया जहां आखिरी गांव समाप्त हो जाता था। और उसने गांव के लोगों से पूछा कि दुनिया का अंत कितनी दूर है? उन्होंने कहाः ज्यादा दूर नहीं है। बस यह आखिरी गांव है। थोड़ी ही दूर जाकर वह पत्थर लगा है, जिस पर लिखा है, यहां दुनिया समाप्त होती है। मगर उधर जाओ मत।
वह फकीर हंसा। उसने कहाः हम उसी की तो खोज में निकले हैं। लोगों ने कहाः वहां बहुत भयभीत हो जाओगे। जहां दुनिया अंत होती है, उस गड्ढ को तुम देख न सकोगे। मगर फकीर तो उसी की खोज में था, सारा जीवन गंवा दिया था। उसने कहाः हम तो उसी की खोज में हैं। और गुरु ने कहा है, जब तक दुनिया के अंत को न पा लोगे, तब तक सत्य न मिलेगा। तो जाना ही पड़ेगा।
कहते हैं, फकीर गया। गांव के लोगों की उसने सुनी नहीं। वह उस जगह पहुंच गया जहां आखिरी तख्ती लगी थी कि यहां दुनिया समाप्त होती है। उसने एक आंख भर कर उस जगह को देखा, शून्य था वहां। कोई तलहटी न थी उस खड्ड में। आगे कुछ था ही नहीं।
तुम उसकी घबड़ाहट समझ सकते हो। वह जो लौट कर भागा, तो जो यात्रा उसने आगे जन्म में पूरी की थी, वह कहते हैं कि दिनों में पूरी हो गई। वह जो भागा, तो रुका ही नहीं। वह जाकर गुरु के चरणों में ही गिरा। तब भी वह कंप रहा था। तब भी वह बोल नहीं सक रहा था। बामुश्किल उसको पूछा कि मामला क्या है? हुआ क्या? वह गूंगे जैसा हो गया था। सिर्फ इशारा करता था पीछे की तरफ। क्योंकि जो देखा था, वह बहुत घबड़ाने वाला था।
गुरु ने कहाः नासमझ! मैं समझता हूं। लगता है, तू दुनिया के अंत पर पहुंच गया। तख्ती मिली थी, जिस पर लिखा था कि यहां दुनिया का अंत है? उसने कहा कि बिल्कुल ठीक! मिली थी। उस तरफ तूने तख्ती के देखा कि क्या लिखा था? उसने कहा कि उस तरफ? उस तरफ खाली शून्य था। मैं तो देख कर एक आंख और जो भागा हूं, तो रुका ही नहीं कहीं। पानी के लिए नहीं, भूख के लिए नहीं। उस तरफ तो मैंने नहीं देखा।
उसने कहाः बस, वही तो भूल हो गई। अगर तू उस तरफ तख्ती के देख लेता, तो
इस तरफ लिखा है, यहां दुनिया का अंत होता है; उस तरफ लिखा है, यहां परमात्मा का प्रारंभ होता है।
एक सीमा पूरी होती है, दूसरी सीमा शुरू होती है। परमात्मा निराकार है। शून्य में उसी निराकार के करीब तुम पहुंचोगे।
यह कहानी बड़ी अच्छी है, बड़ी कीमती है।
ऐसा दुनिया में कहीं है नहीं। निकल मत जाना खोजने, जहां तख्ती लगी हो।
यह भीतर की बात है। जहां दुनिया समाप्त होती है, इसका मतलब, जहां तुम्हारा राग-रंग समाप्त होता है, जहां दुनिया समाप्त होती है, इसका मतलब, जहां जीवन का खेल--खिलौने समाप्त होते हैं, आखिरी पड़ाव आ जाता है। देख लिया सब, जान

लिया सब, हो गया दो कौड़ी का, कुछ सार न पाया। सब बुदबुदे टूट गए, फूट गए, सब रंग बेरंग हो गए।
दुनिया के अंत होने का अर्थ है, जहां वासना समाप्त हो गई। वासना ही दुनिया है। महत्वाकांक्षा का विस्तार ही संसार है। लेकिन वहां आते ही घबड़ाहट होगी। क्योंकि वहां फिर शून्य साक्षात खड़ा हो जाता है। जहां महत्वाकांक्षा मिटती है, वहां शून्य रह जाता है।
उस शून्य को बुद्धपुरुष कहते हैंः निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य। लेकिन दूसरी तरफ भी देखने की हिम्मत चाहिए। नहीं तो जो भागोगे, तो लौट नहीं पाओगे फिर। दूसरी तरफ वहीं परमात्मा शुरू होता है, जहां दुनिया समाप्त होती है। इसका मतलब, जहां महत्वाकांक्षा समाप्त होती है, वहीं ध्यान शुरू होता है। जहां वासना की दौड़ छूटती है, वहीं ध्यान का विश्राम शुरू होता है। और वह ध्यान का विश्राम तो शून्य में विश्राम है।
सूफी फकीर उसको फना कहते हैं--मिट जाना, बिल्कुल मिट जाना, न हो जाना।
उस न होने में ही सब हो जाना है।
भय तो स्वाभाविक है। तुम क्या करोगे? तुम भय को दबाना मत और भय के कारण लौटना भी मत। भय को स्वीकार कर लेना, भय पर सवारी करना। भय को ही अपना साथी बना लेना कि ठीक है, तू भी आ; पर हम जा रहे हैं। तू कंपाएगा, हम कंपेंगे। तू डराएगा, हम डरेंगे; लेकिन रुकेंगे नहीं।

मैं कल रात एक यूनानी विचारक निकोस कजानजाकिस की एक किताब पढ़ता था। कजानजाकिस एक उपन्यासकार था, पर बहुत कीमती। और कभी-कभी उपन्यासकार उन ऊंचाइयों को छू लेते हैं जिनको तुम्हारी साधारण धर्मगुरु समझ भी नहीं सकते। कभी-कभी कलाकार उन गहराइयों को अनुभव कर लेता है जिनको तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में बैठे हुए पंडित, मुल्ला पकड़ भी नहीं सकते।
कजानजाकिस ने अपनी इस किताब में लिखा है कि मैंने तीन तरह के लोग देखे
और तीन तरह की प्रार्थनाएं करते देखे। पहले तरह के लोग हैं, वे कहते हैं, परमात्मा! हम धनुष हैं, तू हमारी प्रत्यंचा पर तीर को चढ़ा। कहीं ऐसा न हो कि तू तीर को चढ़ाए ही न, प्रत्यंचा को खींचे ही न और हम जंग खाकर ऐसे ही समाप्त हो जाएं।
दूसरे हैं, दूसरे तरह के लोग और दूसरी तरह के प्रार्थना करने वाले लोग; वे कहते हैं, तू प्रत्यंचा पर तीर को चढ़ा, हम तेरे धनुष हैं परमात्मा; लेकिन जरा ख्याल से चढ़ाना। कहीं ज्यादा मत खींच देना, कहीं ऐसा न हो कि प्रत्यंचा टूट ही जाए।
और तीसरी तरह के लोग हैं और तीसरी तरह की प्रार्थना करने वाले; वे कहते हैं, हे परमात्मा! हम तेरे धनुष हैं, तू अपने तीरों को हमारी प्रत्यंचाओं पर चढ़ा और फिकर मत करना, कम-ज्यादा का हिसाब मत रखना, तेरे हाथ में टूट भी गए तो इससे बड़ा कुछ और होना नहीं है।
यह जो तीसरी तरह का व्यक्ति है, यही उपलब्ध कर पाएगा।
पहली तरह का व्यक्ति कहता है, कहीं हम ऐसे ही न चले जाएं। उसकी नजर अपने पर ही लगी है अभी। अभी यह दौड़ भी, यह प्रार्थना भी अहंकार की है। हमें सफल बना; कहीं हम असफल ही न चले जाएं। कहीं ऐसा न हो कि जंग खा जाएं। बिना किसी सफलता के स्वर्ग को जाने, बिना किसी सफलता के सौरभ को उपलब्ध हुए, कहीं हम मिट ही न जाएं। ऐसे ही न खो जाएं। हमें तू सफल बना, चढ़ा अपने तीरों को हमारी प्रत्यंचा पर।
लेकिन न तो परमात्मा से संबंध है प्रार्थना का, न साहस है प्रार्थना का। डर है कि कहीं जंग न खा जाएं। और डर है कि कहीं असफल न मर जाएं। लोभ की आकांक्षा है, लोभ की प्रार्थना है। भय की प्रार्थना है।
दूसरी तरह के लोग हैं, ज्यादा चालाक हैं, होशियार हैं। परमात्मा के साथ भी सौदा करना चाहते हैं। वहां भी अपना गणित लेकर आते हैं। वहां भी हिसाब-किताब रखते हैं। दुकानदार हैं। परमात्मा से कहते हैं कि चढ़ा तू अपने तीरों को लेकिन ध्यान रखना, कहीं ज्यादा मत खींच देना कि प्रत्यंचा टूट जाए।

ऐसे व्यक्ति भी परमात्मा के निकट नहीं पहुंच सकते। ऐसे व्यक्ति भी परमात्मा को भी पूरी स्वतंत्रता नहीं दे रहे हैं। उसको भी नियंत्रण में रख रहे हैं। उसको भी बांध कर चलना चाहते हैं। परमात्मा को अपने हिसाब से चलाना चाहते हैं, परमात्मा के हिसाब से स्वयं नहीं चलना चाहते। और जब तक तुम परमात्मा के साथ चलने को राजी नहीं हो, तब तक तुम उसे उपलब्ध न कर सकोगे। जब तक तुम चाहते हो वह तुम्हारे पीछे चले, तब तक तुम्हारा संबंध ही न जुड़ पाएगा।
तीसरी तरह के लोग हैं, तुम तीसरी तरह के लोग बनना। प्यारी है उनकी प्रार्थना और बड़ी महत्वपूर्ण कि हम तेरे धनुष हैं। हम तेरे साधन हैं, उपकरण हैं। तू अपने तीरों को चढ़ा। हमारे लक्ष्यों को भेदने को नहीं, तेरे ही लक्ष्यों को भेदने के लिए। हम तो केवल धनुष हैं। तू अपने तीरों को चढ़ा और अपने लक्ष्यों को भेद और इसकी फिकर ही मत करना कि हम बचें कि टूटें। तेरे हाथ में टूट ही गए तो इससे बड़ा और क्या होना हो सकता है!
ये समर्पित हैं। इनकी प्रार्थना में न तो भय है, न लोभ है। इनकी प्रार्थना मैं तो सिर्फ एक प्रार्थना है और वह प्रार्थना यह है कि तू हमें अपना उपकरण बना ले। उस उपकरण बनने में हम मिट जाएं, तो हमारा सौभाग्य है। भयभीत हो, स्वाभाविक है। हृदय कंपता है, कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है।
भय के बावजूद जाना है। भय के साथ जाना है। निर्भय तो तुम हो भी न सकोगे, जब तक कि ध्यान न घट जाए। क्योंकि ध्यान के बाद ही तुम्हें अनुभव होता है अमृत का। मृत्यु विलीन हो जाती है, तभी तो अभय उपलब्ध होता है।
इसलिए तुम पहले से ही यह मत सोचना कि पहले हम अभय को उपलब्ध हों, तब ध्यान कर सकेंगे। तो तुम कभी ध्यान ही न कर पाओगे। क्योंकि अभय तो ध्यान की उत्पत्ति है। वह तो ध्यान में ही लगा हुआ फूल है। वह तो ध्यान की ही सुगंध है।
इसलिए जैसे हो--नग्न, भयभीत, कंपते हुए, अंधकार से भरे, रुग्ण, पूजा में चढ़ाने के योग्य भी नहीं, जानते हुए कि अपनी कोई पात्रता नहीं है, फिर भी तुम जाना। अगर यह सब जानते हुए तुम गए और विनम्रता से गए और परमात्मा के उपकरण बनने की आकांक्षा से गए, तो तुम्हारी पात्रता तुम्हें मिल गई।
यही पात्रता है। तुम खाली हो, यही तुम्हारी पात्रता है।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा कि जगत और जीवन अतिशय रहस्य से भरा है। और उसका.जर्रा-.जर्रा चमत्कारपूर्ण है। उस रहस्य और चमत्कार के प्रति हमारी आंखें क्यों और कैसे अंधी हो रही हैं? और क्या उस रहस्य-बोध को फिर से उपलब्ध हुआ जा सकता है?

आंखें अंधी हो रही हैं अति-विचार से। रहस्य को समझने के लिए विचार का थिर हो जाना जरूरी है, क्योंकि उसी संधि में से रहस्य दिखाई पड़ता है। आंखें तो तुम्हारी खुली हैं, लेकिन विचार से भरी हैं। उसी कारण खुली आंख भी देख नहीं पा रही है।
देखते हो फूल को, जानते हो गुलाब का फूल है, बहुत बार देखा है, हजार-हजार स्मृतियां हैं गुलाब के फूल की; न मालूम कितनी कविताएं पढ़ी हैं गुलाब के फूल के संबंध में; चित्र और पेंटिंग्स देखी हैं; सब तुम्हारे मन में भरी हैं। जब तुम गुलाब के फूल के करीब जाते हो तब तुम्हारी सारी जानकारी बीच में पर्दे की तरह खड़ी हो जाती है। पर्त दर पर्त तुमने जो जो जाना है, वह बीच में आ जाता है। तुम्हारा जानना ही तुम्हारा अंधापन हो जाता है।
छांटो जानने को थोड़ी देर। थोड़ी देर गुलाब के पास ऐसे हो जाओ जैसे तुम अज्ञानी हो; जैसे न तुमने कभी गुलाब के फूल कभी देखे हैं, न उनके संबंध में कभी कुछ सुना है, न कोई चित्र देखे हैं, न कोई गीत गाए हैं। इस गुलाब को ही अपना गीत गाने दो। तुम्हारे गीतों को बंद करो। इस गुलाब को, जो मौजूद है, इसको ही प्रकट होने दो। तुम्हारे अतीत में देखें गए चित्रों को छोड़ो। वे जा चुके। दर्पण पर जमी धूल से ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं है। आकृतियां हैं सपनों की।

यह वास्तविक है। वास्तविक को तुम छिपा रहे हो अवास्तविक से। अतीत को हटाओ, ताकि थोड़ी सी झलक इस गुलाब की, जो इस क्षण खिला है और फिर कभी दुबारा तुम इसे न मिल सकोगे। इसे जरा देखो, बैठो इसके पास। इस गुलाब को गुनगुनाने दो गीत। इस गुलाब को नाचने दो हवाओं में। इस गुलाब को मौका दो कि अपनी सुगंध को तुम्हारी नासापुटों तक भेज सके। छुओ इसे, इसकी कोमलता को स्पर्श करो। इसकी पंखुड़ियों पर जमी हुई ओस की बूंदों को देखो, सब मोती फीके हैं। यह जो गुलाब इस क्षण खिला है, इस क्षण का गुलाब--इसे तुम अपनी आत्मा पर फैलने दो। तुम थोड़ी देर मौन और शांत इसके पास बैठ जाओ। और तुम पाओगे, अचानक आंखें खुल गईं। एक रहस्य से तुम भरे जा रहे हो। यह छोटा सा गुलाब एक स्रोत है। इससे अनंत प्रकाश और अनंत सुगंध और अनंत रहस्य की ऊर्जा प्रकट हो रही है। तुम उसमें डूबो, तुम रससिक्त हो जाओ। जानकारी अलग करो, जीना शुरू करो। बैठे हो नदी के तट पर, इस नदी को होने दो। छोड़ो उन नदियों को, जिन घाटों
पर तुम कभी थे। मीठी स्मृतियां, कड़वी, स्मृतियां, जाने दो उन्हें। उनसे अब कुछ लेना-देना न रहा। अब सिवाय तुम्हारी स्मृति में, उनका कोई मूल्य नहीं है, उनकी कोई सत्ता नहीं है। और छोड़ो उन भविष्य की कल्पनाओं को भी उन नदियों के तटों पर जिन पर तुम कभी रहोगे।
इस नदी को थोड़ी देर अवसर दो, तुम्हारे संग-साथ हो ले। तुम इसके संग-साथ
हो लो। थोड़ी देर इसके साथ चलो, थोड़ी देर इसके साथ बहो, थोड़ी देर इसमें डुबकी लो। थोड़ी देर इसके साथ एक हो जाओ--और रहस्य का द्वार खुल जाएगा।
सब तरफ रहस्य मौजूद है। तुम्हारी आंखें भी खुली हैं। किसने कहा कि तुम अंधे हो? और किसने कहा कि तुम्हारी आंखें बंद हैं? सिर्फ धुंधली है, धुएं से भरी हैं। और धुआं कुछ नहीं, तुम्हारी अतीत की पर्तें है, विचारों की पर्तें हैं। उनको थोड़ा हटा कर देखो। ऐसे देखो, जैसे छोटा बच्चा देखता है। उसके पास कोई जानकारी नहीं होती। अज्ञान से देखता है।
अगर रहस्य को चाहते हो, अज्ञान से देखो। पांडित्य को हटाओ, उतारो, वही तुम्हारा दुश्मन है। पाप के कारण तुम परमात्मा से अलग नहीं हो, पांडित्य के कारण तुम अलग हो। मेरे देखे पांडित्य एक मात्र पाप है। पापी भी पहुंच सकता है, पंडित कभी पहुंचते हुए नहीं सुने गए। तुम्हारी गीता तुम्हारा कुरान, तुम्हारी बाइबिल--हटाओ आंखों से। परमात्मा मौजूद है; तुम उसे क्यों नहीं देखते? तुम अपना वेद-पाठ किए जा रहे हो। द्वार पर परमात्मा खड़ा दस्तक दे रहा है, तुम अपनी पूजा किए चले जा रहे हो।
तुम थोड़े खाली हो जाओ, बस! अज्ञान, नहीं कुछ जानता हूं, ऐसी भाव-दशा ज्ञान की तरफ पहला कदम है। जानता हूं, ऐसी भाव-दशा--तुम सख्त हो गए। तुम्हारी तरलता खो गई। तुम जाम हो गए, जम गए। तुम बर्फ की तरह जम गए, पत्थर हो गए। अब तुममें बहाव न रहा।
प्रतिपल मौका मिल रहा है तुम्हें। सुबह उठे हो, आंखें नहीं खोली हैं अभी, पक्षियों ने गीत गाए हैं, रास्ते पर धीमे-धीमे लोग चलने लगे हैं, दूधवाले ने आवाज दी है, सुनो। जैसे पहली बार सुन रहे हो। रात भर के बाद मन ताजा है। थोड़ा सुनो, थोड़े पड़े रहो आंख बंद किए ही। थोड़ा सुनो, थोड़े कानों को इस रहस्य का अनुभव करने दो। आंख खोलो, अपने ही घर को ऐसे देखो जैसे कि अजनबी हो। सभी घर अजनबी हैं। सभी घर सराएं हैं। आज हो, कल नहीं रहोगे। कल कोई और घर था आज कोई और घर है। कल कोई और मालिक था, कल और मालिक होगा; आंख खोलो।
अपने ही बच्चे को ऐसा देखो, जैसे अतिथि है। और बच्चे अतिथि हैं, मेहमान हैं। कौन जानता है, आज बच्चा है, कल न हो। फिर रोओगे, छाती पीटोगे, तड़पोगे कि एक बार और आंख भर कर देख लिया होता। लेकिन आंख भर कर देखने का मौका ही नहीं मिला। मौके हजार थे, तुम चूकते ही चले गए। अपनी ही पत्नी को ऐसे देखो, जैसे आज ही उसे लिवा लाए हो, आज ही विवाह कर लाए हो, आज ही भांवर पड़ी है।
चीजों को नये सिरे से देखना शुरू करो, बासी मत होने दो। उधार आंखों से
मत देखो, ताजी आंखों से देखो। कल की आंखों से मत देखो, आज की आंखों से देखो। रोज झाड़ते जाओ धूल को, दर्पण को धूल से मत भरने दो। और तुम्हारे जीवन में

रहस्य का आविर्भाव होने लगेगा। सब तरफ तुम पाओगे रहस्य। सब तरफ तुम पाओगे उसी की धुन बज रही है।
कोई भी चीज तो तुमने जानी नहीं है। आदमी परमात्मा को जानने की बात करता है, राह पर पड़े हुए पत्थर को भी नहीं जानता। पत्थर भी रहस्य है। और जिस दिन पत्थर रहस्य हो गया, उसी दिन पत्थर भी परमात्मा हो गया। उस दिन उसके सिवाय तुम कुछ भी न पाओगे। पक्षी की गुनगुनाहट में उसी की धुन सुनाई पड़ेगी। हवाओं की थिरकन में, वृक्षों से गुजरते हवा के झोंके में उसी की आवाज, सरसराहट मालूम पड़ेगी। किसी की आंख में झांकोगे और उसी का झरना दिखाई पड़ेगा। किसी का हाथ छुओगे और वही तुम्हारे हाथ में आ जाएगा।
लेकिन इसके लिए एक गहरी क्रांति जरूरी है। उस क्रांति को ही मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान का अर्थ है, मन को झाड़ना, मन को स्नान देना; जैसे तुम रोज स्नान कर लेते हो, शरीर गंदा नहीं हो पाता, मन गंदा हो जाता है--क्योंकि मन का स्नान तुम भूल ही गए हो।
ध्यान मन का स्नान है, जितनी बार धो सको।
हिंदू व्यवस्था थी कि सुबह उठ कर ध्यान कर लो, ताकि दिन भर के लिए मन ताजा हो जाए। रात सोते वक्त ध्यान कर लो, ताकि दिन भर की धूल फिर झड़ जाए। मुसलमान तो पांच बार प्रार्थना करते रहे हैं, ताकि दिन में बार-बार धूल जमने ही न पाए। जब भी जरा सी धूल जमे, फिर प्रार्थना कर लो, फिर नमाज में उतर जाओ। फिर जरा धो डालो, साफ कर लो, दर्पण साफ रहे। उस दर्पण में ही तो तुम किसी दिन परमात्मा को पकड़ोगे।
बस, इतनी ही कला है। ध्यान कला है रहस्य का द्वार खोलने की। ध्यान में
ही घूंघट उठ जाता है। घूंघट परमात्मा के चेहरे पर नहीं है, तुम्हारे मन पर है। तुम्हारी धूल हट गई, परमात्मा सदा से सामने मौजूद था।
आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
तीसरा प्रवचन

राम-नाम निज औषधि

संत शिरोमणि दादू की कुछ साखियां इस प्रकार हैंः

मेरा संसा को नहीं, जीवन मरन का राम।
सुपनैं ही जनि वीसरैं--मुख हिरदै हरि नाम।।
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहं भला, जहं पसु-पंखी खाइ।।
राम-नाम निज औषधि, काटै कोटि विकार।
विषम व्याधि जे ऊबरै, काया-कंचन सार।।
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमरियां ही सुख होइ।।
नांव लिया तब जानिए, जे तन-मन रहे समाइ।
आदि, अंत, मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ।।

ओशो, कृपापूर्वक हमें इनका अभिप्राय समझाएं।

जीवन को जीने के दो ढंग हैं। एक ढंग है संदेह का; और एक ढंग है श्रद्धा का। दोनों बड़ी विपरीत यात्राएं हैं। दोनों के परिणाम बड़े भिन्न हैं।
और अक्सर ऐसा होता है कि लोग जीते तो हैं संदेह का जीवन और आकांक्षा करते हैं श्रद्धा के फलों की। तब असफलता के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगेगा। बीज तो बोए हों संदेह के, और फल चाहे हों श्रद्धा के, यह न तो कभी हुआ है और न कभी हो सकेगा।
संदेह का अर्थ हैः डांवाडोल चित्त। संदेह का अर्थ हैः कंपती हुई मनोदशा। संदेह का अर्थ हैः जो भी कर रहे हैं, उस करने में भरोसा नहीं है कि कुछ होगा। संदेह का अर्थ हैः एक हाथ से कर रहे हैं, दूसरे हाथ से मिटा रहे हैं। संदेह का अर्थ है, एक कदम उत्तर चलते हैं, एक कदम दक्षिण चलते हैं, टूटे हैं, खंडित हैं, विभाजित हैं। संदेह तो महारोग है, उससे कभी कोई कहीं पहुंचा नहीं। उससे चलने वाला चलता तो बहुत है, मार्ग तो बहुत तय करता है, मंजिल कभी नहीं आती है।
श्रद्धा का अर्थ हैः थिर हुआ चित्त। श्रद्धा का अर्थ हैः एक-स्वर हुआ चित्त। श्रद्धा का अर्थ हैः एक ही धुन बजती है, द्वैत नहीं है। जिस यात्रा पर निकले हैं, पूरे ही निकल गए हैं, पीछे किसी को छोड़ नहीं दिया है। एक अंग नहीं गया है यात्रा पर, समग्रता से चले गए हैं।
और बड़े मजे की बात है कि जैसे संदेह वाला आदमी चलता बहुत है। पर पहुंचता नहीं; श्रद्धा वाला आदमी चलता ही नहीं और पहुंच जाता है।
अगर पहली बात तुम्हें समझ में आ गई हो कि संदेह वाला आदमी चलता बहुत है, पहुंचता नहीं; तो दूसरी बात की भी हलकी झलक मिल सकती है। श्रद्धा वाला चलता ही नहीं, पहुंच जाता है। बैठे-बैठे पहुंच जाता है। कुछ करता नहीं, और पहुंच जाता है। संदेह वाला बहुत उपक्रम करता है। श्रद्धा वाला सिर्फ श्रद्धा करता है, उतना काफी है। उससे बड़ा कोई उपक्रम नहीं है। उससे बड़ा कोई उपाय नहीं है।
पर जो संदेह में ही जीए हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होती है कि श्रद्धा से कोई पहुंचेगा कैसे, और बैठे-बैठे पहुंच जाएगा!
मैं विद्यार्थी था जिस विश्वविद्यालय में, रोज सुबह घूमने जाता था। राह के किनारे एक पुलिया पर अक्सर बैठ जाता था। घंटों बैठा रहता था। एक प्रोफेसर भी घूमने आते थे। धीरे-धीरे उनसे परिचय हुआ। वे अक्सर मुझे वहां बैठा देखते थे। एक दिन कहने लगे, ऐसे बैठे-बैठे कुछ भी न होगा। अपना जीवन गंवा दोगे। कुछ करो। क्योंकि सांझ आता हूं, तब तुम यहां बैठे मिलते हो। सुबह आता हूं, तब तुम यहां बैठे मिलते हो। आता हूं, चला जाता हूं, तुम यहां

बैठे ही रहते हो। कर क्या रहे हो बैठे-बैठे? मुझे तुम्हारे लिए चिंता होने लगी है।
चिंता होने योग्य बात थी, क्योंकि विश्वविद्यालय तो मुझे सिर्फ बहाना था, वहां मेरा कोई रस न था। वह तो बहाना था दूसरों को दिखाने के लिए कि कुछ कर रहा हूं, खाली नहीं बैठा हूं--अन्यथा परिवार के लोग परेशान होते, मित्र-प्रियजन पीड़ित होते--कुछ कर रहा हूं। वहां कुछ भी न कर रहा था। मैंने उनसे कहाः कभी दोपहर भी आओ, तब भी तुम मुझे यहां बैठा हुआ पाओगे। कभी आधी रात भी आओ, तब भी तुम मुझे यहां बैठा हुआ पाओगे। ज्यादातर बैठता ही हूं।
वे नाराज हुए और कहाः इस तरह जीवन गंवा दोगे, ऐसे बैठे-बैठे कुछ न मिलेगा। मैंने उनसे पूछाः आप तो नहीं बैठे रहे, कुछ मिल गया? आप तो काफी दौड़े-धूपे हैं। अगर मिल गया हो, तो मुझे बता दें। और अगर न मिला हो, तो मुझ से बैठना सीख लें। उस दिन से उन्होंने उस रास्ते पर आना बंद कर दिया। मुझे देख लेते, तो दूर से ही लौट जाते। धीरे-धीरे बात आई-गई हो गई। मैं भूल ही गया।
कोई तीन महीने बाद--एक दिन देखा कि वे आ रहे हैं, फिर लौटे भी नहीं। मैं चकित हुआ। फिर वे पास आए, और कहने लगे, बाबा, क्षमा करो। क्यों मेरे पीछे पड़े हो? दिन में कई बार तुम्हारी याद आती है। और कल रात तो हद्द हो गई; रात भर सोने न दिया--सपने में भी! बैठे हो; और मुझसे कह रहे हो, बैठो तुम भी। मुझसे भूल हो गई, जो मैंने कहा, और यही निवेदन करने आया हूं कि मैंने कुछ पाया नहीं चल कर। और अगर नहीं बैठ पा रहा हूं, तो सिर्फ इस कारण कि चलने की आदत हो गई है। लेकिन कौन जाने, शायद तुम पा लो। मैं अपने शब्द वापस लेता हूं।
श्रद्धा तो बैठने का एक ढंग है। संदेह चलने की एक प्रक्रिया है। संदेह दौड़ है, श्रद्धा विराम है। संदेह पाने की आकांक्षा है। श्रद्धा "पा लिया" ऐसा भाव है।
इसे तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि अगर यही बीज न हुआ मूल में, तो जिस वृक्ष की हम कल्पना कर रहे हैं, वह कभी भी प्रगटेगा नहीं। श्रद्धा तो पा लिया--ऐसा भाव है; पहुंच गए--ऐसी प्रतीति है; आ गया मंदिर, कहीं जाने को नहीं और--ऐसी चित्त-दशा है।
संदेह सदा कहता हैः और आगे, और आगे। संदेह तो मील का पत्थर है, जिस पर तीर लगा हैः और आगे, और आगे। श्रद्धा तो ऐसी भाव-दशा है--यहीं; अभी और यहीं। संदेह वाले व्यक्ति को, श्रद्धा वाला व्यक्ति अंधा दिखाई पड़ता है। श्रद्धा वाले व्यक्ति को, संदेह वाले व्यक्ति पर दया आती है कि नाहक व्यर्थ ही दौड़े चले जा रहे हैं। कहीं पहुंचेगा नहीं, गिरेगा; और बुरी तरह गिरेगा। श्रद्धा वाला आदमी भी कब्र में उतरता है, लेकिन उसके उतरने में एक शान होती है। कब्र में भी जाता है, तो शाही ढंग से जाता है। उसकी समाधि साधारण समाधि नहीं होती। उसकी समाधि परमात्मा से मिलन का द्वार होती है। संदेह वाला भी गिरता है; बुरी तरह गिरता है; कब्र में ही गिरता है; मुंह में धूल भर जाती है। चीखता है, चिल्लाता है, बचना चाहता है। जिंदगी भर चला है, और कब्र रोके देती है--कब्र दुश्मन मालूम होती है। मृत्यु से भय लगता है।
श्रद्धा वाला तो जीवन भर बैठा है। बाहर बैठा था कि कब्र में बैठा है, कोई फर्क नहीं पड़ता है। मृत्यु मित्र मालूम होती है। और जिसने जान लिया कि मृत्यु मित्र है, उसने सब जान लिया। उसने जीवन के सब खजाने पा लिए। और जो मृत्यु से डरता रहा और भागता रहा, उसने सब गंवा दिया। जीवन में जो भी पाने योग्य था, उस सबसे वह वंचित रह जाएगा।
श्रद्धा वाले व्यक्ति को दया आती है; क्योंकि लगता है, संदेह वाला व्यर्थ ही भागता है। पसीने-पसीने, लथ-पथ, सदा थका हुआ मालूम पड़ता है--और ऐसे ही गिरेगा। कोई मंजिल हाथ न आएगी। क्योंकि मंजिल तो वहीं थी, जहां तुम थे। जितने दौड़ोगे, उतने ही दूर निकल जाओगे।
क्योंकि मंजिल तो तुम हो। कुछ और पाना थोड़े ही है! जो तुम्हें मिला ही हुआ है, उसे भर जानना है। कहीं पहुंचना थोड़े ही है। तुम वहां हो ही सदा से। थोड़ी आंख भर खोलनी है। थोड़ा स्मरण करना है। थोड़ी सुरति आ जाएं, थोड़ा होश आ

जाए, तो तुम अचानक हंसोगे कि मैं जा कहां रहा था! मैं खोज किसे रहा था! खोजने वाला ही तो वह है, जिसे हम खोज रहे थे। सम्राटों का सम्राट भीतर है! श्रद्धा विश्राम बना देती है। क्योंकि जब चित्त में कोई विरोध ही न रहा, कोई विषमता न रही, सब थिर हो गया, तो गति शून्य हो जाती है। उस गति- शून्य दशा का नाम समाधि है।
ये श्रद्धा के सूत्र हैं। एक-एक शब्द को ठीक से समझना।
मेरा संसा को नहीं, जीवन मरन का राम।।
सुपनैं ही जन वीसरैं, मुख हिरदै हरि नाम।।
दादू कहते हैंः मेरा संशय जा चुका। मेरा अब कोई संशय नहीं। अब मैंने श्रद्धा पा ली।
श्रद्धा उपलब्ध ही है। श्रद्धा उपाय नहीं है, उपलब्धि है। तुमने लोगों को कहते सुना होगा कि श्रद्धा से परमात्मा पाया जाता है। गलत कहते हैं। श्रद्धा परमात्मा है। श्रद्धा कोई उपकरण थोड़े ही है कि इससे परमात्मा को पाया जाता है! यह कोई विधि थोड़े ही है! यह कोई तकनीक थोड़े ही है! इसलिए ऐसी घड़ी कभी नहीं आती, जब श्रद्धा छूट जाए; क्योंकि तकनीक होता तो छूट जाता। जब पा लिया, तो तकनीक व्यर्थ हो जाता है। विधि तो छूट जाएगी। मार्ग तो छूट जाएगा, जब मंजिल मिलेगी। श्रद्धा कभी नहीं छूटती। श्रद्धा परमात्मा को पाने का उपाय नहीं है; श्रद्धा परमात्मा है। वह विधि नहीं है, वही लक्ष्य है।
मेरा संसा को नहीं, ...
दादू कहते हैंः अब कोई संशय न बचा, कोई संदेह मन में न रहा। श्रद्धा उपलब्ध हो गई।
संदेह का अर्थ होता हैः हमेशा डरे हुए जीते हो। प्रेम करते हो, लेकिन संदेह है; प्रेम नहीं हो पाता। मित्रता बनाते हो, लेकिन संदेह है; मित्रता नहीं हो पाती। पैर बढ़ाते हो, लेकिन संदेह है, पूरी ताकत से बढ़ नहीं पाती। सब तरफ संदेह है, तो तुम आधे-आधे जीते हो। और तुम्हारा अधूरा जीवन, तुम्हारा यह कुनकुनापन ही तुम्हें उबलने नहीं देता और जीवन की गरिमा प्रकट नहीं हो पाती। श्रद्धा तुम्हें सौ डिगरी पर उबाल देगी, जहां से जल भाप हो जाता है। संदेह तो तुम्हें कुनकुनाए रखेगा; तुम्हें सदा बीच में ही अटकाए रखेगा। तुम कुछ भी करोगे, तुम्हारे कृत्य कभी तुम्हारे पूरे प्राणों से आच्छादित न होगा।
और वही तो तृप्त होने का ढंग है कि तुम्हारा कृत्य तुम्हारे पूरे प्राण से आच्छादित हो जाए। तुम जो करो, उसे करने में तुम पीछे न रहो, डूब जाओ पूरे, एक हो जाओ। नाचो, तो नाच बचे, नाचने वाला न बचे। देखो, तो आंख हो जाओ, और सब खो जाए। सुनो, तो कान हो जाओ, कुछ और न बचे।
जिस दिन तुम्हारा कृत्य समग्र होता है, टोटल होता है, उसी दिन तो जीवन में आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है। तालमेल बैठ जाता है। अभी बस, तालमेल टूटा हुआ है, वर्षा तो हो रही है आनंद की; तुम्हारा पात्र उलटा रखा है। वर्षा होती रहती है, और तुम रोते-चिल्लाते रहते हो।
संदेह उलटा पात्र है। तुम कंपते रहते हो। ऐसे ही समझो कि कोई आदमी कंपते हुए हाथों से तीर चलाए, तो कितना ही लक्ष्य निकट हो, क्या फर्क पड़ता है? कंपते हाथ तीर को न चला सकेंगे। कंपते हाथ तीर को भी कंपा देंगे। कहीं देखेगा, कहीं सोचेगा, कहीं तीर लगेगा।
पाना चाहते हो सुख; मिलता है दुख। जीवन भर हाथ साधते हो कि सुख पर तीर
लग जाए, लगता नहीं; चूक-चूक जाता है। हाथ ही कंप रहे हैं। हृदय ही कंप रहा है, तुम एक कंपन हो, तो तुम्हारा तीर चूक जाएगा। जब तक संशय है मन में, तब तक तुम चूकते ही रहोगे। संशय की अवस्था रुग्ण अवस्था है।
मेरे गांव में मेरे घर के सामने एक सुनार रहता है। वह संशय का प्रतीक है। वह अकेला ही है, संपन्न भी है; लेकिन संशय उसका प्राण लिए ले रहा है। ताला लगाता है, हिला कर देखता है। दस कदम जाएगा, फिर लौट आएगा, दस कदम जाने में संदेह फिर पकड़ लेता है कि पता नहीं ताला लगाया, हिलाया, नहीं हिलाया! पूरे गांव के बच्चे उसे मुसीबत में डाले रहते थे। वह पहुंच गया है फर्लांग भर, बाजार सब्जी लेने जा रहा है, फिर कोई मिल जाएगा, कहेगा--"सोनी

जी, ताला खुला पड़ा है।" फिर कोई उपाय नहीं है कि वह न वापस लौट आए। और ऐसा भी नहीं है कि--ऐसा हजार दफे मजाक हो चुकी है, और हजार दफा गलत पाया, ताला तो लगा हुआ ही है। लेकिन पता नहीं, नौ सौ निन्यानबे दफा लोगों ने झूठ कहा हो और अब यह लड़का ठीक ही कह रहा हो। वह फिर लौट गया है; वह फिर घर जाकर ताला हिला रहा है। नदी पर स्नान कर रहा है और फिर किसी ने कह दिया--सोनी जी ताला! यह भी नहीं कहा कि खुला है कि लगा है; सिर्फ ताला! उसका सारा स्नान भ्रष्ट हुआ, वह भागा अपनी पोटली उठा कर घर की तरफ।
संशय से बंधा हुआ चित्त खूंटी से बंधा हुआ है। थोड़ी बहुत रस्सी है, उस रस्सी में बंधा हुआ जानवर जैसे खूंटी के आस-पास घूमता रहता है, ऐसा संशय से भरा हुआ व्यक्ति भी, बस, रुग्णता के आस-पास ही घूमता रहता है, रोग से बंधा है।
श्रद्धा मुक्ति है।
और तुम्हारे चित्त में संदेह तब तक रहेंगे जब तक कि तुम अपने को बहुत समझदार समझ रहे हो। जितना समझदार आदमी है, उतना ही ज्यादा संदेह से भरा होगा। वह सुनार बहुत बुद्धिमान है, विचारशील है। जितना बुद्धिमान आदमी अपने को सोचता है बुद्धिमान, उतना ज्यादा संदेह करता है; उतना हर बात पर सोचता है, विचार करता है। धीरे-धीरे विचार करना, एक जीवन की बंधी हुई जकड़ हो जाती है। एक कारागृह हो जाता है। वह विचार ही करता रहता है।
सुना है मैंने कि इमेनुएल कांट को एक लड़की ने विवाह के लिए निमंत्रण दिया था। इमेनुएल कांट जर्मनी का बड़ा विचारक, दार्शनिक हुआ। उसने कहाः सोचूंगा।
एक तो स्त्रियां साधारणतः किसी को विवाह का निमंत्रण नहीं देतीं। कोई तीन वर्ष तक वह लड़की प्रतीक्षा करती रही कि यह अपनी तरफ से कुछ पहल ले; लेकिन संदेह वाला आदमी अपनी तरफ से पहल नहीं लेता। जब तक झंझट से बचे रहे, तब तक ठीक। इमेनुएल कांट ने अपनी तरफ से पहल न ली, जब लड़की ने मजबूरी में पहल भी ली, तो उसने कहाः मैं सोचूंगा; क्योंकि समझदार आदमी बिना सोचे कुछ भी नहीं करता। वह बिना सोचे प्रेम भी नहीं करता।
उसने काफी सोचा-विचारा। विश्वविद्यालय में जहां वह प्रोफेसर था, वहां के पुस्तकालय को छान डाला। सारे पक्ष और विपक्ष में जितने भी बिंदु हो सकते थे, सब लिख डाले कि विवाह करो तो क्या लाभ है, न करो तो क्या लाभ है। करो तो हानि कितनी है, न करो तो हानि कितनी है, सब लिख डाला; बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
जैसे-जैसे खोजता गया, वैसे-वैसे जाल बड़ा होता गया। कहते हैं, उसने कोई तीन सौ पचास पक्ष में, और तीन सौ पचास विपक्ष में तर्क लिख लिए। स्वभावतः काफी समय निकल गया। जब तर्क बराबर ही हो गए दोनों तरफ; तीन सौ पचास इस तरफ और तीन सौ पचास उस तरफ। और तर्क की यह खूबी है कि अगर तुम खोजते ही जाओ तो हमेशा पाओगे, वे बराबर हो जाते हैं। क्योंकि हर तर्क दुधारी तलवार है, वह दोनों तरफ काटता है।
जो लोग तर्क के द्वारा निष्कर्ष ले लेते हैं, वे ठीक तर्कनिष्ठ नहीं हैं इसलिए। उनको तर्क की पूरी कला नहीं आती, नहीं तो तर्क तो कभी भी कोई निष्कर्ष लेने ही नहीं देगा। जो आदमी ठीक-ठीक तार्किक है, वह निष्कर्ष नहीं ले सकता; क्योंकि हर तर्क दोनों तरफ काटता है, बराबर काटता है। तो ऐसी तो कोई घड़ी आती नहीं जिस तरफ, एक तरफ तर्क ज्यादा हो, दूसरी तरफ तर्क कम हो; वह बराबर ही होता है; क्योंकि हर तर्क दोनों तरफ काटता है। ठीक तार्किक व्यक्ति निष्कर्ष ले ही नहीं सकता।
इमेनुएल कांट बड़े से बड़े तार्किकों में एक था। देखा कि सब खोज व्यर्थ गई, दोनों तरफ बराबर तर्क हो गए हैं, अब कैसे निर्णय लेना! बात वहीं की वहीं खड़ी है। तीन सौ पचास तर्क खोजने में जो समय गया, वह व्यर्थ गया। निर्णय अब उसी को लेना है। तर्क से कुछ सहारा न मिला। तो वह गया, लड़की के द्वार खटखटाए; लेकिन पता चला कि लड़की की तो शादी हो चुकी है। उसको तो तीन बच्चे भी हो चुके हैं। तो वर्षों पहले की बात थी, यह तो वह भूल ही गया इस तर्क की उधेड़बुन में। इमेनुएल कांट अविवाहित ही रहा; अविवाहित ही मरा। क्योंकि तर्क ने निर्णय ही न लेने दिया।

संदिग्ध व्यक्ति निर्णय ले ही नहीं सकता। और अगर संदिग्ध व्यक्ति भी निर्णय लेता है, तो उसका एक ही अर्थ है कि उसने संदेह पूरा न किया। कहीं न कहीं संदेह की यात्रा में उसने थोड़ी बहुत श्रद्धा कर ली। जहां श्रद्धा की, वहीं निष्कर्ष आ गया। श्रद्धा ही निष्कर्ष है; और कोई निष्कर्ष है ही नहीं।
अगर तुमने कभी भी कोई निष्कर्ष लिया है तो तुम गौर करना कि वह संदेह
के कारण नहीं लिया है, संदेह से थक कर लिया है। तर्क के जाल से, ऊहापोह से बेचैन होकर लिया है। ऐसी जगह पहुंच गए कि खुद ही थक गए और कहा कि ठीक है, अब ले ही लो। अब कुछ तो करना ही पड़ेगा, इसलिए कुछ करो।
यह तो पहले ही क्षण में हो सकता था, यह इतना समय खोने की कोई जरूरत न थी। यह इतना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गया।
श्रद्धा निष्कर्ष है। श्रद्धावान व्यक्ति प्रतिपल निष्कर्ष में जीता है। उसके जीवन में एक निष्पत्ति है। वह कभी अधूरा नहीं है। वह सदा पूरा है। इसलिए वह जो भी करता है परिपूर्ण मन से करता है। और जो भी परिपूर्ण मन से किया जाता है, उससे ही आनंद उपलब्ध होने लगता है।
तुमने अगर भोजन भी परिपूर्ण मन से किया है, तुम ब्रह्म का स्वाद पाओगे। अगर तुम सुबह घूमने भी परिपूर्ण मन से निकल गए हो, तो तुम चारों तरफ ब्रह्म को ही हवाओं में तिरते, और आकाश में उतरते देखोगे। अगर तुमने पूरे मन से गुलाब के फूल को देख लिया है, तो उसमें ही तुम्हें परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे। असली राज है, पूरे मन से होना। श्रद्धा का उतना ही अर्थ है। मेरा संसा को नहीं, ...
अब मेरा कोई संशय नहीं। दादू कहते हैंः "जीवन मरन का राम।" और जब संशय
ही न रहा, तो अब जीवन हो, तो भी राम का, मरण हो तो भी राम का।
जब तक संशय है, तब तुम जीवन तो राम का कहोगे, मरण राम का नहीं कह सकते।
तब तक तुम कहोगे कि सौ वर्ष जिलाओ, हजार वर्ष जिलाओ, मारो मत। घर में तुम्हारा बेटा पैदा होगा तो तुम बैंड-बाजे बजाओगे, परमात्मा को धन्यवाद दोगे, फूल-उपहार चढ़ाओगे। और बेटे की मृत्यु हो जाएगी, तो तुम परमात्मा को धन्यवाद न दे सकोगे।
तो तुम्हारा मन पूरा नहीं है। अगर पूरा ही मन था, तो जैसे जन्म उसने दिया था, मृत्यु भी उसी ने दी। जब जन्म में भी उसी का हाथ था, तो मृत्यु में भी उसी का हाथ है। जब उसका हाथ है, तो सब ठीक है। फिर शिकायत कहां?
शिकायत तो इसलिए पैदा होती है कि तुम्हारा चुनाव है। वस्तुतः शिकायत इसलिए पैदा होती है कि तुम परमात्मा से ऊपर अपने को रखे हुए हो। तुम्हारे मन के अनुकूल करता है, तो ठीक; तुम्हारे मन के प्रतिकूल करता है, तो गलत। यह तो भक्त का लक्षण नहीं। यह तो श्रद्धा की बात ही नहीं। श्रद्धा का
तो इतना ही अर्थ है कि तू जो करता है, ठीक करता है। अब मेरी कोई चाह भी नहीं है कि तू यही कर। तेरी मर्जी, मेरी मर्जी है! तूने जन्म दिया, हम प्रफुल्लित हुए। तूने वापस उठा लिया, हम फिर आनंदित हैं। तेरा ही सब कुछ है--जन्म भी, मरण भी।
... जीवन मरन का राम।
दादू कहते हैंः अब जीवन भी उसी का है, मृत्यु भी उसी की है। अब हम बीच
से हट गए।
इस बात को ठीक से समझ लें। संदेह वाला आदमी बीच से कभी नहीं हटता। वह कहता है, हम निर्णय लेंगे। श्रद्धावान बीच से हट जाता है। वह कहता है कि हमारी क्या जरूरत; तू कर ही रहा है। तू सदा ठीक ही कर रहा है। और हमारे सोचने-विचारने से कुछ बदलता भी तो नहीं। तुम्हारे सोचने-विचारने से रत्ती भर भी तो कोई परिवर्तन नहीं होता। जो होता है, होता है, जो होना है, हो रहा है। श्रद्धालु कहता है, तब सब ठीक। मेरे बीच में खड़े होने की जरूरत ही क्या है? वह बीच से हट जाता है।
इस बीच से हट जाने का नाम ही विनम्रता है, निर-अहंकारिता है। संदेह वाला व्यक्ति अहंकार से कभी नहीं छूट सकता। संदेह से अहंकार पुष्ट होता है; श्रद्धा से मर जाता है। इसलिए सभी धर्म श्रद्धा पर जोर देते हैं; क्योंकि श्रद्धा के बिना कोई निर-अहंकारी नहीं हो सकता। संदेह का इतना ही

अर्थ है कि मैं सोचूंगा, विचारूंगा, मैं निर्णय लूंगा। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है कि तू ही सोच-विचार रहा है, तू ही निर्णय ले रहा है। मैं बीच में व्यर्थ क्यों आऊं।
मैंने सुना है, एक सम्राट एक रथ से गुजरता था। जंगल से आता था शिकार करके। राह पर उसने एक भिखारी को देखा, जो अपनी पोटली को सिर पर रखे हुए चल रहा था। उसे दया आ गई। बूढ़ा भिखारी था। राजपथ पर मिला होता, तो शायद सम्राट देखता भी नहीं। इस एकांत जंगल में--उस बूढ़े के थके-मांदे पैर, जीर्ण-जर्जर देह, उस पर पोटली का भार--उसे दया आ गई।
रथ रोका, भिखारी को ऊपर रथ पर ले लिया। कहा कि कहां तुझे जाना है, हम राह में छोड़ देंगे। भिखारी बैठ गया। सम्राट हैरान हुआ। पोटली वह अब भी सिर पर रखे हुए है। उसने कहाः मेरे भाई, तू पागल तो नहीं है? पोटली अब क्यों सिर पर रखे है? अब तो नीचे रख सकता है। राह पर चलते समय पोटली सिर पर थी, समझ में आती है। पर अब रथ पर बैठ कर किसलिए पोटली सिर पर रखे हैं?"
उस गरीब आदमी ने कहाः अन्नदाता, आपकी इतनी ही कृपा क्या कम है कि मुझे
रथ पर बैठा लिया! अब पोटली का भार और रथ पर रखूं, क्या यह योग्य होगा? लेकिन तुम सिर पर रखे रहो, तो भी भार तो रथ पर ही पड़ रहा है।
ठीक ऐसी ही दशा है संदेह और श्रद्धा की। तुम सोचते हो--सोच तो वही रहा है। तुम करते हो--कर भी वही रहा है। तुम नाहक ही बीच में निर्मित हो जाते हो। तुम यह जो पोटली सिर पर ढो रहे हो अहंकार की, और दबे जा रहे हो, और अशांत, और परेशान! और रथ उसका चल ही रहा है, तुम कृपा करो। रथ पर ही पोटली भी रख दो, जिस पर तुम बैठे हो। तुम निश्चिंत होकर बैठ जाओ। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है।
श्रद्धा इस जगत में परम बोध है। संदेह अज्ञान है। वह बूढ़ा आदमी मूढ़ था। थोड़ी भी समझ हो, तो पोटली तुम नीचे रख दोगे। सब चल ही रहा है। तुम नहीं थे, चांद-तारे चल रहे थे, कोई अड़चन न थी। फूल खिलते थे, पक्षी गीत गाते थे, लोग पैदा होते थे--सब चल रहा था। तुम कल नहीं रहोगे, तब भी सब चलता रहेगा। तुम क्षण भर को हो यहां। तुम क्यों व्यर्थ अपने को अपने सिर पर रखे हुए हो? उतार दो पोटली।
जीवन-मरण दोनों उसी के हैं। सुख भी उसी का, दुख भी उसी का। बीमारी भी उसी की, स्वास्थ्य भी उसी का। अगर तुम बीच से बिल्कुल हट जाओ, तो बड़ी से बड़ी क्रांति घटित होती है। एक मात्र क्रांति--जो हो सकती है जगत में, वह घटित होती है। तुम्हारे बीच से हटते ही, जिस दिन तुम कहते हो, सब तेरा; उसी दिन दुख मिट जाता है, उसी दिन मृत्यु मिट जाती है। क्योंकि दुख अस्वीकार में है, मृत्यु अस्वीकार में है, तुम मरना नहीं चाहते और मरना पड़ता है, इसलिए मृत्यु है। तुम राजी हो, फिर कैसी मृत्यु! फिर कौन तुम्हें मारेगा? तुम अपने हाथ से राजी हो, चल कर जाने को राजी हो, फिर तुम्हें कौन मारेगा? मृत्यु हार गई तुमसे।
अगर दुख आया, और तुम दुख में भी प्रफुल्लित हो, और धन्यवाद दे रहे हो-- दुख हार गया। अब दुख तुम्हें दुखी न कर सकेगा। दुख दुखी करता है; क्योंकि तुम्हारी चाह छिपी है भीतर कि दुख न हो, सुख हो। और बड़ी हैरानी की बात यह है कि ऐसी चित्त-दशा में जब तुम चाहते हो दुख न हो, और सुख हो; तुम जब दुख होता है तब तो दुखी होते ही हो; क्योंकि जो तुमने नहीं चाहा था, वह हो रहा है। और जब सुख होता है; तब भी तुम सुखी नहीं हो पाते; क्योंकि भय बना रहता है कि जल्दी ही दुख आएगा। ज्यादा देर न लगेगी, दुख आ ही रहा होगा। कहीं सुख छिन न जाए!
जब तुम सुखी होते हो; तब तुम दुखी होते हो, कहीं सुख छिन न जाए। और जब तुम सुखी होते हो तब भी सुखी नहीं हो पाते क्योंकि मन कहता है कि और ज्यादा सुख हो सकता था। यह भी कोई सुख है? कल्पना प्रगाढ़ होती है। जो मिलता है वह सदा छोटा मालूम पड़ता है; वासना विराट होती है। जो मिलता है वह सदा क्षुद्र मालूम होती है, तब तुम दुखी होते हो।
और जब दुख आता है तब तुम दुखी होते हो। तुम्हारा सारा जीवन ही दुख हो जाता है। इस चित्त-दशा को ही हमने नरक कहा है। नरक कोई भौगोलिक जगह नहीं

है। उसे नक्शे में मत खोजना। वह तुममें छिपा है। वह तुम्हारे जीवन को देखने के ढंग का नाम है।
और फिर कुछ लोग है जो सदा स्वर्ग में रहते हैं। उनके हाथ में चाबी श्रद्धा की लग गई है। सुख आता है तो वे धन्यवाद देते हैं कि हमारी कोई पात्रता न थी, इतना तूने सुख दिया। और दुख आता है तो भी वे धन्यवाद देते हैं कि जरूर तेरा कोई राज होगा। तू निखारना चाहता होगा, तू परीक्षा लेता होगा, तू गलत को काटता होगा। दुख तूने दिया है, तो जरूर दुख के पीछे कोई राज होगा। तेरी कोई अनुकंपा ही छिपी होगी। हम नहीं पहचान पाते; हमारी भूल है। ऐसा व्यक्ति दुख में भी सुख पाता है और सुख में तो सुख पाता ही है। उसकी चित्त-दशा स्वर्ग की हो जाती है।
मेरा संसा को नहीं, जीवन मरण का राम।।
सुपनैं ही जन वीसरैं, मुख हिरदै हरिनाम।।
कहते हैं दादूः अब सपने में भी उसका नाम नहीं बिसरता।
जब संशय न रहे, तो सपना मिट जाता है।
इसे क्या तुमने कभी थोड़ा निरीक्षण किया है कि जब तुम्हारे चित्त में बहुत संदेह होते हैं, तब रात बहुत सपने आते हैं। और जब तुम्हारे चित्त में बड़ी शांति, श्रद्धा की भाव-दशा होती है, सपने कम हो जाते हैं। जब परिपूर्ण श्रद्धा होती है, सपने बिल्कुल खो जाते हैं; क्योंकि सपना भी तुम्हारी वासना की ही प्रक्रिया है।
सपना है क्या? सपना क्यों पैदा होता है? सपना पैदा होता है तुम्हारी अधूरी वासना से। जो तुम चाहते थे, वह नहीं मिला, तो उसे तुम सपने में पाने की कोशिश करते हो। तुमने चाहा था कि तुम सम्राट हो जाओ, लेकिन नहीं हो पाए। सम्राट भी नहीं हो पाते सम्राट। वे भी भिखारी बने रह जाते हैं। तुमने चाहा था सम्राट होना, नहीं हो पाए। रात सपने में हो जाते हो। सोने का महल बना लेते हो। सिंहासन पर बैठ जाते हो।
मन तुम्हें समझाने की कोशिश कर रहा है; तुम्हें सांत्वना दे रहा है।
मन कह रहा है मत घबड़ाओ; न सही दिन में, रात में तो हो ही सकते हो। तुम अगर दिन में भूखे रहे, उपवास किया, तो रात राजमहल में तुम्हें निमंत्रण मिल जाता है सपने में। जो तुम दिन में चूक गए हो, उसे रात सपना पूरा कर देता है। सपना परिपूरक है। अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। सपना तुम्हें थोड़ी सी राहत दे देता है, थोड़ी ढाढ़स बंधा देता है। सपना कहता है, घबड़ाओ मत। और फर्क क्या है?
आधा दिन जागते हो, आधी रात सोते हो। समझ लो कि एक आदमी साठ साल जिंदा रहा, तो बीस साल सोएगा। अगर बीस साल यह आदमी सोकर सपना देखता रहे, और दूसरा आदमी बीस साल जाग कर सपना देखता रहे कि वह सम्राट है, क्या फर्क है? सपना कहता है, क्यों परेशान हो रहे हो? जो तुम नहीं कर पाए, वह हम यूं ही कर देते हैं। जो वासना से नहीं हो पाया, वह हम कल्पना से कर देते हैं। कल्पना, वासना की सहचरी है।
जैसे ही व्यक्ति संदेह से मुक्त हो जाता है, जो मिला है, उससे अनुगृहीत हो जाता है। जो मिला है वह इतना है कि उससे ज्यादा की कोई मांग ही नहीं उठती। सपना खो जाता है। सपने की कोई जरूरत न रही। वासनाग्रस्त व्यक्ति ज्यादा सपने देखता है। निर्वासना से भरा हुआ व्यक्ति कोई सपने नहीं देखता।
तुम्हारे सपने, तुम्हारे मन की खबर देते हैं। मनोविज्ञान तो तुम्हारे सपनों के आधार पर ही तुम्हारे व्यक्तित्व का पता लगाता है। एक आदमी हो सकता है ब्रह्मचारी है, लेकिन उसके सपने में वह स्त्रियों को देखता है। उससे असली खबर मिलती है। उसके ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य नहीं है। असली बात तो रात है। सपना बता देता है कि भीतर असली में क्या चल रहा है। ब्रह्मचर्य ऊपर-ऊपर है, भीतर वासना चल रही है। और एक आदमी दीन-दरिद्र है। अपने को त्याग में रख कर जीता है, सब छोड़ दिया है, लेकिन रात सपनों में महल देखता है--कुछ छूटा नहीं।
सपने तुम्हारे संबंध में ज्यादा असलियत की खबर देते हैं, कैसी विडंबना है। तुम्हारा जीवन ऐसा झूठ हो गया है कि सपनों से पता लगाना पड़ता

है कि सच क्या है। मनोवैज्ञानिक पहले तुम्हारे सपने पूछता है कि अपने सपने बताओ। क्योंकि तुम जो जाग कर कहोगे, उस पर तो भरोसा किया नहीं जा सकता। तुम्हारा धोखा आखिरी सीमा पर पहुंच गया है। तुम कहोगे कुछ, होओगे कुछ, और तुम्हें खुद भी पता नहीं चलता कि जो तुम कह रहे हो, वह कहां तक सच है, कहां तक झूठ है।
ऐसे संदेह की दशा में तुम दूसरों पर ही थोड़े ही संदेह करते हो; अपने पर
भी संदेह करते हो। संदेह धीरे-धीरे आत्मसंशय बन जाता है। तुम्हें अपने पर भी भरोसा नहीं रहा है।
दादू कहते हैंः अब तो सपने में भी उसका विस्मरण नहीं होता। इसका अगर ठीक अर्थ समझो, तो यह हुआ, अब सपने आते ही नहीं, उसका स्मरण ही होता है, क्योंकि उसका स्मरण होता रहे, तो सपना कैसे आएगा? स्मरण का तो अर्थ है कि नींद पूरी नींद नहीं है अब। कोई हिस्सा जागा हुआ है, जो स्मरण कर रहा है। दीया जल रहा है भीतर। ज्योति जल रही है। अंधेरा नहीं है; अन्यथा स्मरण कौन करेगा? चैतन्य की ज्योति भीतर जगमगा रही है। अंधेरे में सपने आते हैं, जैसे अंधेरे में चोर-डाकू आते हैं, सांप-बिच्छू आते हैं। जब दीया जलता है घर में, तो चोर-डाकू भी दूर से निकल जाते हैं कि घर का मालिक जागा हुआ है। जब ज्योति स्मरण की जलती है भीतर, तो सपना कैसे संभव है?
सुपनैं ही जनि वीसरैं--मुख हिरदै हरि नाम।
मुख में भी हरि का नाम चलता रहता है, हृदय में भी हरि का नाम चलता रहता है।
इसको ठीक से समझ लेना। इसका यह मतलब नहीं है कि दादू हरि-हरि-हरि ऐसा जपते रहते हैं। इसे ठीक से समझ लेना; क्योंकि इससे भ्रांति होने का डर है कि तुम जपने लगो हरि-हरि-हरि-हरि... । उससे तुम पागल हो जाओगे। उससे कोई पहुंचता नहीं। स्मरण का अर्थ शब्द का स्मरण नहीं है; स्मरण का अर्थ भाव है।
जैसे मां खाना बनाती है, उसका छोटा बच्चा कमरे में घूम रहा है। वह खाना बनाती है, लेकिन स्मरण बच्चे की तरफ लगा रहता है कि कहीं वह कमरे में बाहर तो नहीं निकल गया। ऐसा कोई नाम नहीं लेती रहती उसका कि हरि-हरि-हरि... । क्योंकि अगर नाम लेती रहे, तो बच्चे का पता ही न चलेगा कि बच्चा कहां निकल गया।
न; वह नाम नहीं लेती, लेकिन स्मरण की एक धारा बहती रहती है। एक सूक्ष्म अंतर-संबंध बना रहता है। बार-बार लौट कर देख लेती है, फिर काम में लग जाती है। लेकिन काम में लगी भी रहती है, और भीतर, एक सतत सुरति बनी रहती है कि बच्चा कहीं बाहर तो नहीं गया! कुछ सामान तो नहीं गिरा लेगा अपने ऊपर! हाथ-पैर तो नहीं तोड़ लेगा! ऐसा कोई शब्दों में सोचती नहीं, बस इसका भान बना रहता है। इस भान का नाम स्मरण है।
तो मुख में और हृदय में एक ही भाव बना रहता है--परमात्मा है; मैं नहीं हूं। लेकिन बहुत से लोगों ने गलत समझ ली है बात। हरेकृष्ण, हरेराम वाले लोग हैं, वे सड़कों पर चीखते-चिल्लाते फिरते हैं--हरेकृष्ण, हरेराम। वह चीखना-चिल्लाना है, उससे कुछ सार नहीं है। सार तो तब है, जब तुम बैठो, उठो, चलो, सोओ, जागो, उसका भान न भूले। एक सतत अहर्निश धार तुम्हारे भीतर उसके स्मरण की चलती रहे। उसकी भाव-धारा बनी रहे। तुम उसे भूलो न।
जैसे तुम कभी किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तो तुम सब काम करते हो, लेकिन भीतर हृदय की धड़कन में प्रेमी का स्मरण बना रहता है। तुम उसे नहीं भूल पाते। उसकी याद बनी रहती है। एक मीठी सी पीड़ा हृदय के आस-पास घनीभूत हो जाती है। एक कांटा चुभता रहता है। उस कांटे में चुभन भी है और मिठास भी है। वह चुभन भी सौभाग्य है क्योंकि वह उन्हीं के जीवन में उतरती है, जो धन्यभागी हैं, जिन्होंने श्रद्धा को पाया है, अन्यथा नहीं उतरती।
इस संसार में तुम्हारे कुछ अनुभव ऐसे हैं, जिनसे तुम्हें थोड़ी सी समझ
आ सकती है। जैसे कभी तुम किसी के प्रेम में पड़े हो तो, या तुम्हें अगर कभी ख्याल हो किसी गहरी चिंता में तुम उलझ गए हो तो।
विद्यार्थी, स्कूल में परीक्षा के दिन आ जाते हैं तब रात-दिन एक ही स्मरण से भरा रहता है। रात सोता भी है, सपने भी देखता है, तो सपने भी

परीक्षा देने के देखता है। एक याद बनी रहती है। मगर ये सब उपमाएं ठीक नहीं हैं। ये तो सिर्फ तुम्हें इशारे देने को हैं क्योंकि परमात्मा की याद इन सबसे बड़ी भिन्न है। श्रद्धा होगी तो उसकी प्रतीति होगी।
सुपनैं ही जनि वीसरैं--मुख हिरदै हरि नाम।
एक धुन बजती रहती है अखंड। श्वास-श्वास में वही डोलता रहता है।
मैंने सुना है कि एक मुसलमान फकीर हुआ--बड़े से बड़े सूफियों में एक-- जलालुद्दीन रूमी। वह अल्लाह-अल्लाह का स्मरण करता रहता था। एक दिन गुजर रहा था रास्ते से; जहां से गुजर रहा था, वहां सुनारों की दुकानें थीं। लोग सोने-चांदी के पत्तर पीट रहे थे।
कुछ हुआ! जलालुद्दीन खड़ा हो गया। उसे लोहार-सुनार, जो हथौड़ियों से पीट रहे थे सोने-लोहे के पत्तरों को, उनमें अल्लाह की आवाज सुनाई पड़ने लगी। वह नाचने लगा। वह घंटों नाचता रहा। पूरा गांव इकट्ठा हो गया। ऐसी महिमा उस गांव में कभी देखी नहीं गई थी। जलालुद्दीन प्रकाश का एक पुंज मालूम होने लगा। वह नाचता ही रहा, नाचता ही रहा। लोहारों के, सुनारों के हथौड़े बंद हो गए; क्योंकि भीड़ बहुत बढ़ गई। वे भी इकट्ठे हो गए देखने। वह जो चोट पड़ती थी, जिससे अल्लाह का स्मरण आया था, वह भी बंद हो गई, लेकिन स्मरण जारी रहा, और वह नाचता रहा।
उस रात, उस संध्या दरवेश-नृत्य का जन्म हुआ।
और जब बाद में, उसके शिष्य उससे पूछते कि तुमने इसे कैसे खोजा, तो वह कहता, यह कहना मुश्किल है, परमात्मा ने ही मुझे खोजा। मैं तो बाजार किसी दूसरे काम से जा रहा था। अचानक उसकी आवाज मुझको सुनाई पड़ी।
लेकिन यह आवाज किसी और को सुनाई नहीं पड़ी थी। उसके मन में एक धागा था।
एक सेतु था। निरंतर अल्लाह का स्मरण कर रहा था। उस चोट से, उसका मन तैयार था, उस तैयार मन में... अन्यथा कहीं सुनारों या लोहारों की हथौड़ियों से कहीं किसी को परमात्मा का बोध हुआ है!
कहते हैं नानक को--वे नौकर थे एक सूबेदार के, और उसके सिपाहियों को अनाज देने का काम करते थे--एक दिन अनाज दे रहे थे, तौल रहे थे अनाज, एक दो तीन--तौल कर डालते गए। ग्यारह, बारह, फिर तेरह, तो पंजाबी में तो तेरह "तेरा" ही पुकारा जाता है।
"तेरा" कहते ही परमात्मा की स्मृति बंध गई। फिर तो वह तौलते गए और "तेरा" कहते गए। फिर चौदह नहीं आया। गांव भर में खबर पहुंच गई। मालिक भी भागा हुआ आया, रोका कि क्या पागल हो गए हो। लेकिन इस आदमी को रोकना मुश्किल था। इस आदमी में कोई महाशक्ति का अवतरण हुआ था। फिर मालिक ने भी कहा कि बांटने दो; क्योंकि यह नानक नहीं हैं, कुछ और आविर्भूत हुआ है। बस, उस दिन से नानक खो गए, "तेरा" ही बचा।
नानक से कोई पूछता कि कैसे पाया, तो वे कहते, अनाज तौलते हुए पाया। "तेरा" पर अटक गया। "तेरा" कहते कहते कहते रूपांतरण हो गया; तेरा शब्द से एक छलांग लग गई।
भाव में धारा बंधी हो, तो बहाना कोई भी मिल सकता है। भीतर भाव चल रहा हो, तो पक्षियों के गीत जगा सकते हैं। और भीतर भाव न चल रहा हो, तो कृष्ण की बांसुरी भी सुनाई न पड़ेगी।
सुपनैं ही जनि वीसरैं--मुख हिरदै हरि नाम।
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरना तहं भला, जहं पसु-पंखी खाइ।।
हरि भजि साफल जीवना, ...
दादू कहते हैंः हरि को भज कर ही जीवन की सफलता जानी।
सफल शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। अंग्रेजी में शब्द है "सक्सेस", वह वैसा अर्थपूर्ण नहीं है। और भाषाओं में शब्द हैं, लेकिन "सफल" शब्द का कोई मुकाबला नहीं। सफल का अर्थ होता हैः फल का लग जाना। उसका अर्थ सिर्फ सक्सेस नहीं है; क्योंकि यह भी हो सकता है कि एक आदमी सक्सेस हो जाए, सफल हो जाए, और फल न लगे। एक और शब्द है संस्कृत में, वह है, "सुफल।" यह भी हो सकता है कि फल लग जाए, लेकिन वह सुफल न हो। सफल का अर्थ हैः जब तुम अपने फल पर आ गए। फल आखिरी घटना है वृक्ष में। बीज से शुरू होती है यात्रा। अंकुर टूटता

है, वृक्ष बनता है, फूल आते हैं, फिर फल आते हैं। फिर फल में बीज लग जाते हैं। फल आखिरी विकास की अवस्था है। सफल का अर्थ है कि तुम अपनी उस जगह आ गए जहां फूल भी लग गए और फल भी लग गए।
मनुष्य के जीवन का फल क्या है? जब तक हरि न आ जाए जीवन में, तब तक फल नहीं लगता। तो अगर तुम संसार में ही रहे, तो तुम बीज की भांति ही रहोगे और मर जाओगे। सफल होना तो दूर, तुम वृक्ष भी न हो पाओगे। अगर तुमने संसार से थोड़ा ऊपर उठने की आकांक्षा शुरू की, तो अंकुर टूटा। तो बीज के भीतर छिपा हुआ जीवन बाहर आया। आकाश की तरफ यात्रा शुरू हुई।
अगर तुम सिर्फ आकांक्षा ही करते रहे, अभीप्सा ही करते रहे, तो वृक्ष
हो जाओगे, लेकिन फूल न लगेंगे। अभीप्सा जीवन बननी चाहिए। जो तुम चाहते हो, उस यात्रा पर तुम्हें निकलना भी चाहिए। जो तुम चाहते हो, वह तुम्हारा आचरण भी बन जाना चाहिए।
जब परमात्मा की तरफ यात्रा तुम्हारा आचरण बनने लगती है, तो फूल आने शुरू हुए। तो ऐसा समझो कि संसारी--बीज; साधक--वृक्ष; साधु--फूल; और सिद्ध--तो स्वयं परमात्मा हो गया--सफल। जब तक तुम परमात्मा ही न हो जाओ, तब तक हम सफल नहीं मानते।
इस मुल्क की आकांक्षा बड़ी गहन है। पूरब की अभीप्सा बड़ी उत्तुंग है। इससे कम पर हम राजी नहीं है। जब तक तुम्हारे भीतर का परमात्मा ही निखर न आए, सब कूड़ा-कचरा जल न जाए, तुम्हारा सोना ही न बच रहे तब तक हम राजी नहीं है, तब तक हम सफल नहीं कहते। धन की सफलता को हमने सफलता नहीं कहा है। पद की सफलता को सफलता नहीं कहा है। बस, एक प्रभु-प्राप्ति को सफल होना कहा है। हरि भजि साफल जीवना, ...
जिसने हरि को भज लिया, हरि का भजन आ गया, स्मरण आ गया, जिसके जीवन में हरि की गंध उतर आई, वह सफल हुआ।
... पर उपगार समाइ।
ऐसे व्यक्ति का जीवन करुणा बन जाता है, प्रेम बन जाता है, सेवा बन जाता है।
इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। ये शब्द बड़े अनूठे हैं--पर उपगार समाइ।
तुम दूसरे का उपकार दो तरह से कर सकते हो। एक तो कि तुम उपकार करो-- चेष्टा से, विचार से, योजना से। तब यह उपकार भी तुम्हारे अहंकार को बढ़ाएगा। तब तुम उपकारी हो जाओगे। तब तुम्हें लगेगा कितना मैंने दूसरे के लिए किया। तब तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा।
एक और है उपकार का ढंग कि तुम हरि को उपलब्ध हो जाओ। तुम इसके पहले उपकार की बात ही मत सोचो। उसके पहले तुम सेवा कर ही नहीं सकते। उसके पहले सब सेवा जहरीली होगी। वह तुम्हें भी खाएगी और दूसरे को भी नुकसान पहुंचाएगी।
हरि को तुम पहले पा लो, फिर तुम्हारे जीवन में एक सेवा होगी, उसे तुम्हें योजना न करनी पड़ेगी, न तुम्हें कृत्य करना पड़ेगा--वह होगी।
इसलिए दादू कहते हैंः पर उपगार समाइ।
तुम उसमें समा जाओगे; तुम उससे पीछे न खड़े रहोगे; तुम उपकार करते वक्त पीछे खड़े होकर देखते न रहोगे कि मैं उपकार कर रहा हूं--तुम उपकार में समा जाओगे। तुम उसके साथ एक हो जाओगे, लीन हो जाओगे। तुम्हें यह भी याद न रहेगी कि कोई धन्यवाद दे। कोई धन्यवाद देगा, तो तुम चौंकोगे कि मैंने कुछ किया नहीं। और यह जो उपकार है, "उपकार" शब्द इसे पूरा नहीं कह पाता। यह तुम्हारा आनंद होगा; यह तुम्हारा उत्सव होगा।
तो दो तरह के उपकार संभव है। एक तो ईसाई मिशनरी है, वह कर रहा है; या सर्वोदयी है, वह कर रहा है। एक तरह का उपकार वह है कि करो सेवा; क्योंकि सेवा से मेवा मिलेगा। मगर मेवा पर नजर लगी है; सेवा उपकरण है।
एक दूसरा उपकार है, वह मेवा मिलने से होता है। मेवा मिल गया, इसलिए सेवा करता है आदमी। क्योंकि अब करे क्या? कुछ और करने को बचा नहीं। अब सारा जीवन उसका हो गया, अब वह जहां ले जाए, जाता है। जो करवाए, करता है। अब कर्ता खुद नहीं रहा, अब उपकरण हुआ, निमित्त हुआ।

पहले तरह की सेवा नैतिक है। दूसरे तरह की सेवा धार्मिक है। इसलिए मेरा भी जोर पहले ध्यान पर है।
विनोबा कहते हैं, सेवा धर्म है। मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, धर्म सेवा है। और फर्क भारी है। विनोबा कहते हैं, सेवा करो, तुम धार्मिक हो जाओगे। इतना आसान नहीं है। सेवा करने से तुम धार्मिक न होओगे। मैं कहता हूं, धर्म सेवा है। तुम धार्मिक हो जाओ, तुम सेवक हो ही जाओगे। छाया की तरह आएगी सेवा। यह सदा की परंपरा है।
इधर गांधी और विनोबा ने उस परंपरा को बुरी तरह तोड़ा है। क्योंकि परंपरा यही है कि पहले तुम प्रभु को पा लो। जब तक तुमने उसे नहीं पा लिया, तुम बांटोगे क्या? तुम्हारे पास बांटने को क्या है? बुझे हुए दीये हो; दूसरे दीये को जलाने मत निकल जाना, अन्यथा जलों को बुझा दोगे। तुम अपने घर ही रहो, तुम्हारी अभी सेवा खतरनाक है। पहले तुम जले हुए दीये बन जाओ, फिर तुम किसी को जला सकते हो। पहले तुम हो जाओ, तो तुम दे सकते हो, बांट सकते हो। जो तुम्हारे पास ही नहीं है, उसे तुम देने चले हो, उसे तुम बांटने चले हो? तो तुम्हारी सेवा में भी अहंकार फलेगा; उसमें परमात्मा न लगेगा। उसमें तुम और अस्मिता से भरोगे, और अकड़ हो जाएगी।
सेवक को देखा, कैसा अकड़ा हुआ चलता है! क्योंकि वह कहता है, हम सेवक हैं। वह पहले पैर से शुरू करता है, पैर दबाने से, फिर गर्दन दबाता है, पैर पर ही रोक देना, नहीं तो फिर गर्दन पर चला आएगा। तुम अगर पैर पर सोचो कि चलो करने दो मसा.ज, सेवक आदमी है। वह धीरे-धीरे आ जाएगा गर्दन पर। उसकी इच्छा पैर दबाने की है भी नहीं, वह तो केवल गर्दन पकड़ने का उपाय है। वह सेवा करने इसलिए आया है कि लोग कहते हैं, मेवा मिलेगा। सेवा करने में थोड़े ही उसे मेवा मिल रहा है। सेवा तो साधन है; साध्य पर नजर लगी है।
नहीं, जब कोई हरि भजन से भर जाता है, तो उसके जीवन में सेवा होती है। वह सेवा ऐसी ही सहज है, जैसे श्वास का चलना, जैसे हृदय का धड़कना; जैसे सुबह सूरज का निकलना; जैसे रात चांद का आना, जैसे नदियों का सागर की तरफ बहना; जैसे फूल खिल जाए, उनकी सुगंध का हवा में बिखर जाना--बस, ऐसी ही सरल और सहज है।
वह उपकार नहीं है, वह किसी के ऊपर बोझ नहीं है। वस्तुतः जिस व्यक्ति
ने सेवा की है और प्रभु को नहीं जाना, वह तुमसे धन्यवाद मांगेगा। और जिस व्यक्ति ने प्रभु को जाना है और सेवा की है, वह तुम्हें धन्यवाद देगा कि तुम्हारी बड़ी कृपा कि मुझे मौका दिया। इनकार भी कर सकते थे। तुम्हारा अनुग्रह है कि तुमने थोड़ी सी जो मेरे पास संपदा थी, उसे बांटने में साथ दिया, साझीदार बने; क्योंकि मैं बोझिल हुआ जा रहा था।
प्रभु से भरा हुआ व्यक्ति ऐसे ही है, जैसे मेघ जल से भरे। और जब कोई भूमिखंड प्यासा हो, उस मेघ को बरसने को राजी कर लेता है, तो मेघ धन्यवाद देता है। अन्यथा बोझ से लदा हुआ था।
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहं भला, जहं पसु-पंखी खाइ।।
और दादू कहते हैं जीवन तो लग गया; जीवन तो बन गया सेवा। हरि ने आकर बदल दिया सब; लेकिन मर जाऊंगा, तब भी यह आकांक्षा है कि ऐसी जगह मरूं, जहां पशु- पंखी खा सके, उनका भोजन बन सकूं। जीवन तो काम आ गया, मौत भी काम आ जाए। जीवन का तो उपयोग हो गया, सफल हुआ, मौत भी व्यर्थ न चली जाए।
तुम्हारा जीवन भी व्यर्थ जा रहा है। मौत के व्यर्थ जाने का तो सवाल ही कहां है? वह तो प्रश्न ही नहीं उठता। दादू कहते हैं, जीवन तो सफल हो गया, अब तेरी कृपा ऐसी हो कि मरूं, तो ऐसी जगह मरूं कि मौत का भी उपयोग हो जाए। वह भी अकारण बोझ न हो। पशु-पक्षियों का भोजन बन जाऊं।
यह थोड़ा समझने जैसा है।
इस जगत में सभी चीजें एक-दूसरे का भोजन है। फल पकता है, गिरता है, तुम्हारा भोजन हो जाता है। तुम मरोगे--लेकिन आदमी का अहंकार अदभुत है।
आदमी मरता है तो या तो उसे गड़ा देते हैं या जला देते हैं--सिर्फ पारसियों को छोड़ कर। दादू पक्के जरथुस्त्र के अनुयायी मालूम होते हैं। अब तो पारसी भी चिंतित हैं, वे भी विचार करते हैं कि किसी तरह यह उपद्रव बंद किया जाए।

वह भी चाहते है जलाओ या गड़ाओ, या कोई और उपाय खोजो। यह शरीर को पशु- पक्षियों के लिए खुला छोड़ देना ठीक नहीं। यह आदमी का अहंकार है। इस जगत में सभी चीजें एक-दूसरे का भोजन हैं। तुमने जीवन भर भोजन किया, शरीर क्या है तुम्हारा? तुमने जो-जो भोजन किया है वही तुम्हारा शरीर है, उसे वापस लौटा दो। जला कर क्यों नष्ट करते हो? गड़ा कर क्यों खराब करते हो? वह किसी के काम आ सकता है, काम आ जाने दो। उतना भी ऋण लेकर क्यों वापस जाते हो? वह भी ऋण चुका दो। जो लिया था, वह दे दिया।
मेरे देखे भी पारसियों की व्यवस्था जितनी वैज्ञानिक है, किसी की भी नहीं। क्योंकि उससे जीवन का वर्तुल नहीं टूटता। जीवन का वर्तुल निर्मित बना रहता है। तुमने लिया था, लौटा दिया। तुमने खाया था, तुम भोजन बन गए। लेन-देन बराबर हो गया। आदमी नष्ट करता रहा है। फिर हम रो रहे हैं, परेशान हैं।
पश्चिम में एक बहुत जोर से एक आंदोलन चल रहा है, उसको वे इकोलॉजी का आंदोलन कहते हैं। वह आंदोलन यही है कि आदमी चीजों का उपयोग तो कर लेता है, लौटाता नहीं। तो लौटाता ही नहीं, तो प्रकृति बंजर होती जा रही है। भूमि सूखती जा रही है। वर्तुल टूटता जा रहा है जगह-जगह से। जगह-जगह से खंड हो गए हैं। जीवन का वह संगीत नहीं रहा।
हम सब लेते जाते हैं। पेट्रोल हम लेते जाते हैं जमीन से, जलाते जाते हैं, लौटाया हमने? लौटाने का कोई सवाल ही नहीं है। जो भी हम लेते हैं प्रकृति से, उसको हम लौटाते नहीं हैं। और जो हम लौटाते हैं--जैसे कि प्लास्टिक को हम लौटाते हैं, प्लास्टिक के बर्तन, और प्लास्टिक के सामान-- वे करोड़ों साल तक पड़े रहेंगे, उनको जमीन गला नहीं सकती। उनको जमीन पचा नहीं सकती। क्योंकि वह अप्राकृतिक है। जो भी प्राकृतिक है उसे जमीन पचा लेती है, जो अप्राकृतिक है उसे पचा नहीं सकती। तो वे पृथ्वी की छाती पर बोझ की तरह पड़े रहेंगे।
और यह सब प्रकृति के वर्तुल को तोड़ना है। फिर वर्षा समय पर नहीं आती, फिर धूप ज्यादा पड़ती है, कि धूप पड़ती ही नहीं, कि वर्षा ज्यादा हो जाती है, बाढ़ आ जाती है। फिर तुम परेशान होते हो।
कुछ ही समय पूर्व ऋतुएं समय पर आती थीं। सब क्रमबद्ध था। आदमी ने सब अस्त-व्यस्त कर दिया है। उसी जीवन के वर्तुल का एक हिस्सा है। चार अरब आदमी है जमीन पर। कितना भोजन चार अरब आदमियों ने अपने शरीरों में इकट्ठा कर रखा है! ये सब जला दिए जाएंगे। तो इतना भोजन करने की क्षमता, इतनी भोजन पैदा करने की क्षमता पृथ्वी की क्षीण हो जाएगी।
आदमी को गड़ा देते हैं, तो भी थोड़ा-बहुत चला जाता है, थोड़ा-बहुत तो पृथ्वी बचा लेती है उसमें से, लेकिन बिल्कुल जला देते हैं। उसमें भी थोड़ी- बहुत बचने की संभावना थी। अब हम विद्युत से जलाते हैं, वह भी बचने की संभावना नहीं है। एक आदमी को हम जला देते हैं, राख कर देते हैं; उतना हमने जीवन की क्षमता को कम कर दिया। ऐसे पृथ्वी बांझ होती चली गई। सब अस्त-व्यस्त हो गया है।
दादू कहते हैंः जो लो, वह वापस लौटा दो। भोजन किया है, भोजन बन जाओ। एक हाथ से लिया, दूसरे हाथ से लौटा दो। अगर ठीक से समझो, तो यही तो कर्म की सारी की सारी गहन व्याख्या है कि तुम कुछ लेकर मत जाओ, तुम पर कुछ बोझ न हो, ऋण न हो। उऋण हो जाओ। जीवन में काम आ गए, मृत्यु में भी काम आ जाओ।
राम-नाम निज औषधि, काटै कोटि विकार।
विषम व्याधि जे ऊबरै, काया-कंचन सार।।
राम-नाम निज औषधि, ...
औषधि तुम्हारे भीतर है। और तुम कहां-कहां खोजते फिर रहे हो? "निज औषधि"--वह तुम्हारी अपनी है, तुम्हारे पास है और तुम वैद्यों से पूछते फिर रहे हो।
राम-नाम निज औषधि, काटै कोटि विकार।
और एक ही औषधि से सारे विकार कट जाते हैं। और वह औषधि बड़ी सीधी और सरल
है कि प्रभु का स्मरण भर जाए।
विषम व्याधि जे ऊबरै, ...

और जैसे ही तुम्हारे जीवन में प्रभु का स्मरण भरता है, तुम्हारी विषमता, असंतुलन कम होने लगता है। तुम सम होने लगते हो; समता को उपलब्ध होने लगते हो; संतुलन सध जाता है। जीवन में एक संयम और संगीत आ जाता है। विषम व्याधि जे ऊबरै, काया-कंचन सार।
और उसी अवस्था में, जब कोई व्याधि नहीं रह जाती चित्त की, कोई बीमारी नहीं रह जाति चित्त की, तुम परम स्वस्थ होते हो। उसी क्षण में तुम्हारे भीतर छिपा हुआ जो स्वर्ण है, वह प्रकट होता है। तब तुम्हारी यह मिट्टी- मांस-मज्जा की देह, तुम्हारी अपनी देह नहीं रह जाती। "काया-कंचन सार"--तब तुम एक स्वर्ण-देह को देख पाते हो। एक अविनाशी काया का अविर्भाव होता है। तब तुम अपने भीतर उस छिपे को देख पाते हो, जिसका कोई अंत नहीं है। जिसका कोई प्रारंभ नहीं है।
विषम व्याधि जे ऊबरै, काया-कंचन सार।
कौन पटंतर दीजिए, ...
दादू कहते हैंः कैसी उपमा दें? बड़ा मुश्किल है। क्योंकि उपमा उसकी हो सकती है, जिसके जैसी और चीजें भी हों।
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
अब उस घड़ी की हम किस बात से तुलना करें? किस बात से उपमा दें? जब व्यक्ति परम स्वास्थ्य को उपलब्ध होता है और स्वर्ण-काया उपलब्ध होती है, बुद्ध-काया उत्पन्न होती है; सार-सार बच रहता है, असार-असार छूट जाता है; शुद्ध चैतन्य का अविर्भाव होता है; एक महिमा-मंडित अमृत-जीवन का जन्म होता है, उसे किस तरह हम समझाएं? कौन सी उपमा दें? क्योंकि जो भी हम कहेंगे, वह छोटा पड़ता है। यह क्यों दादू को कहना पड़ रहा है? क्योंकि इसके पहले उन्होंने जो उपमा दी है, उसकी वजह से। उपमा क्या दी है?
राम-नाम निज औषधि, ...
राम-नाम को औषधि बताना पड़ा है। औषधि कहना राम-नाम को, बहुत छोटी बात कहनी है। पर क्या करो? मजबूरी है।
... काटै कोटि विकार।
विषम व्याधि जे उबरै, काया-कंचन सार।।
उसे स्वर्ण-काया कहा है, लेकिन क्या कहो? सोने से क्या लेना-देना उसका? तुम्हारे लिए सोना बहुत मूल्यवान है, इसलिए दादू को कहना पड़ता है कि वह काया स्वर्ण की है। बड़ी बहुमूल्य है, लेकिन उसका कोई भी मूल्य नहीं हो सकता। सोना भी वहां मिट्टी है।
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
कैसे उसकी उपमा दें? कोई दूसरी वैसी घटना नहीं।
राम सरीखा राम है, सुमरियां ही सुख होइ।
बस, राम सरीखा राम है। मत पूछो, राम कैसा है? मत पूछो, ईश्वर कैसा है?
मत पूछो, आत्मा कैसी है? क्योंकि कोई उत्तर दिया नहीं जा सकता।
राम सरीखा राम है, ...
तब फिर एक ही उपाय हैः पूछो मत परिभाषा, स्वाद लो।
... सुमरियां ही सुख होइ।
स्वाद लो, सुमिरण करो। यह मत पूछो कि परमात्मा कैसा है। इतना ही पूछो
कि परमात्मा कैसे हो सकता है। यह मत पूछो कि सत्य क्या है; इतना ही पूछो कि मेरी आंख सत्य के लिए कैसे खुल सकती है। क्योंकि बंद आंख वाले आदमी के पास कोई भी अनुभव नहीं है, जिससे सत्य की उपमा दी जा सके। और जो भी उपमा हम देंगे, आखिर में सब झूठी सिद्ध होगी। कोई परिभाषा नहीं हो सकती।
परिभाषा का मतलब ही होता है, एक को दूसरे से समझाना। अगर तुम्हारे गांव में गुलाब के फूल नहीं होते, तो भी दूसरे फूल होते हैं। और कोई यात्री अगर गुलाब के फूलों की खबर लाए, और तुम पूछो, कैसे? तो कह सकता है। तुम्हारे गांव के फूलों से तुलना दे सकता है। कहेगा कि इनसे भिन्न होते हैं, लेकिन कोई रास्ता बनाया जा सकता है कि समझा दे तुम्हें। कम से कम फूल तुम्हारे गांव में भी होते हैं। वह जो फूलने की क्रिया है, वह तुम्हारे गांव में भी घटती है। खिलने की क्रिया तुम्हारे गांव में भी घटती है। लाल फूल भी तुम्हारे गांव में होते हैं। गुलाब के बराबर फूल भी तुम्हारे गांव

में होते हैं। कोई सुगंध भी तुम्हारे गांव में खोजी जा सकती है, जो गुलाब की सुगंध की थोड़ी सी झलक दे दे।
लेकिन परमात्मा का फूल तो तुम जिस गांव में रहते हो, वहां लगता ही नहीं। वहां उस जैसी कोई घटना ही नहीं घटती।
धन से उपमा दे, बड़ी ओछी मालूम पड़ती है; धन तुम्हारा परमात्मा है। पद से उपमा दें, बड़ी ओछी मालूम पड़ती है, पद तुम्हारा परमात्मा है। फिर भी उपमा दी गई है। संतों ने उसे परम पद कहा है। संतों ने उसे परम धन कहा है। करें क्या? मजबूरी है। धन तुम्हारा परमात्मा है, उससे तुम समझोगे थोड़ा-बहुत। पद तुम्हारा परमात्मा है।
निकटतम जो उसके पहुंच सकती है बात, वह भी पहुंच नहीं पाती। वह है, प्रेम इसलिए ईसा ने परमात्मा को प्रेम कहा है। लेकिन वह भी नहीं पहुंच पाती, क्योंकि प्रेम तुम्हारा इतना कीचड़-सना है; क्योंकि उससे डर है कि तुम कुछ गलत ही समझ जाओ।
जीसस ने प्रेम कहा है परमात्मा को। यह नहीं कहा कि परमात्मा प्रेमी है। यह भी नहीं बताया किसको प्रेम करता है? कौन प्रेयसी है? परमात्मा को ही प्रेम कहा है। परमात्मा प्रेम से अलग नहीं है। वह प्रेम की भाव-दशा है। लेकिन भूल होना संभव है, हमेशा संभव है।
तुमने प्रेम को जाना है कामवासना की कीचड़ में सना हुआ। तुम्हारे परमात्मा की तस्वीर में भी कीचड़ आ जाएगी। अभी स्वीडन में वे एक फिल्म बना रहे हैं, "सेक्स लाइफ ऑफ जीसस"--जीसस का काम-जीवन। जो बना रहे हैं, उनका ख्याल है कि जब जीसस ने इतना महत्व दिया है प्रेम को; तो जरूर उनका काम-जीवन रहा होगा। कीचड़ आ गई! तुम सोच ही नहीं सकते कि जीसस का जीवन कैसा जीवन होगा। स्वाभाविक है, तुम अपने से ही सोच सकते हो। तुम्हारा गणित तुमसे ही शुरू होगा।
इसलिए दादू ठीक ही कहते हैंः
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमरियां ही सुख होइ।।
इसलिए मत पूछो कि राम क्या है--इतना ही पूछो कि उसका स्मरण कैसे करें।
बुद्ध ने बार-बार कहा है, मत पूछो सत्य क्या है। इतना ही पूछो, सत्य कैसे पाया जाता है? विधि पूछो, सत्य मत पूछो। प्रकाश क्या है, यह मत पूछो, इतना ही पूछो कि आंख कैसे खुलती है। प्रकाश तो, तुम्हारी आंख खुलेगी, तभी तुम जान सकोगे।
नांव लिया तब जानिए, जे तन-मन रहे समाइ।
तभी जानोगे, जब नाम लोगे। जब उसके स्मरण से भरोगे, थिरकोगे, नाचोगे। पागल हो उठोगे, उस दीवानेपन में ही जानोगे। पीओगे उसकी शराब, तभी जानोगे-- नांव लिया तब जानिए।
और कोई जानने का उपाय नहीं। पढ़ो शास्त्र, सुनो व्याख्याएं, उससे कुछ
भी लाभ न होगा, कोई इशारा भी न मिलेगा। भटकने की संभावना है, पहुंचने की नहीं।
नांव लिया तब जानिए, जे तन-मन रहे समाइ।
और नाम ऐसा जो तन में और मन में समा जाए। रोएं-रोएं में समा जाए। जो तुमसे भिन्न न हो; तुम्हारी श्वास बन जाए, तुम्हारी हृदय की धड़कन बन जाए।
तुम उसमें ऐसे लिप्त और सिक्त हो जाओ कि कोई फासला न रहे।
आदि, अंत, मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ।
ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं--आदि, अंत, मध एक रस।
दुनिया में तीन तरह की संभावनाएं हैं अनुभव की। एक अनुभव है, जिसको हम दुख कहते हैं। और संत कहते हैं कि दुख का अनुभव, शुरू में तो सुख का है और बाद में दुख का है। जिसको तुम सुख कहते हो, उसको संत दुख कहते हैं। तुम्हारे सुख का अनुभव पहले तो सुख का है, पीछे दुख का है। हर सुख तुम्हें दुख में ले जाता है। इसलिए तुम्हारे सुख को, संत दुख ही कहते हैं।
फिर एक दूसरा अनुभव है, जिसको संत सुख का अनुभव कहते हैं। वह पहले तो दुख देता है, बाद में सुख देता है। तुम उसे दुख कहते हो, संत उससे सुख कहते

हैं; उसका ही नाम तपश्चर्या है। पहले दुख, फिर सुख। तो ये तो दो; और तीसरा, जिसको संत आनंद कहते हैं।
आदि, अंत, मध एक रस, ...
जो शुरू में भी सुख, मध्य में भी सुख, अंत में भी सुख। अगर तुम ऐसा कोई सुख खोज लो, तो वही आनंद है। वही परमात्मा का स्मरण है, वही समाधि-रस है। जो सदा सर्वकाल में, तीनों काल में, प्रारंभ में, मध्य में, अंत में सदा ही एकरस है।
तुमने दो तरह के अनुभव जाने हैं। किसी स्त्री से प्रेम हो गया, बड़ा सुख मालूम होता है; जल्दी ही दुख मालूम होगा। विवाह करो घर बसाओ, दुख शुरू हुआ--अड़चन, झंझट, कलह! इधर विवाह पूरा नहीं हो पाता कि तलाक की तैयारी शुरू हो जाती है। तुमने जितने भी सुख जाने है, वह सब ऐसे ही हैं कि शुरू में सुख होता है, पीछे दुख आ जाता है।
सुख तो लगता है सिर्फ ऐसा ही है कि जैसे मछली को पकड़ने वाला कांटे पर आटा लगा देता है। मछली आटे को खाने के लिए आती है, कांटे को पकड़ने के लिए नहीं; पकड़ी जाती है कांटे में।
तुम सब गौर करो, तुम सबके मुंह आटे के लिए खुले थे, पकड़े गए कांटे में।
अब कांटा छिदा है। सबके मुंह में कांटे छिदे हैं। वे किसी सुख की आकांक्षा में गए थे, पाया दुख।
इस अनुभव के कारण, समझदारों ने सोचा कि इसको उलटा कर लें, शीर्षासन कर लें। दुख को साधें। जब सुख को साधने से दुख मिलता है, तो दुख को साधने से सुख मिलेगा। गणित बिल्कुल साफ था।
इसलिए तपश्चर्या के अनेक रूप पैदा हुए। दुख को साधो, खड़े हैं धूप में, कांटे के बिस्तर बिछा कर सो रहे हैं। इसमें सच्चाई है कि जो लोग इसको साध लेते हैं, उनको पीछे सुख मिलता है। सुख मिलता है, क्योंकि उनको दुख मिलना मुश्किल हो जाता है। दुख तो उन्होंने खुद ही साध लिया, अब उनको दुख तो आप दे नहीं सकते।
जो आदमी धूप में खड़ा है, भूखा-प्यासा खड़ा है, जिसने उसको साध लिया, उसको अब भूख का दुख नहीं दिया जा सकता, धूप का दुख नहीं दिया जा सकता। जो आदमी कांटों की सेज पर सोया है, अब कोई भी सेज इस दुनिया में उसको दुख नहीं दे सकती, सभी सेजें उसे स्वर्ग की सेजें मालूम पड़ेंगी, इस कांटे की सेज के मुकाबले उसको पीछे सुख ही सुख मालूम पड़ेगा। मगर दोनों ही एक से हैं। सिर्फ तुमने सिक्के को उलटा कर लिया।
आनंद बिल्कुल तीसरी घटना है।
आदि, अंत, मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ।
और जब ऐसी घटना घटती है, तो कैसे भूली जा सकती है?
नांव लिया तब जानिए, जे तन मन रहे समाइ।
आदि, अंत, मध एक रस, कबहूं भूल न जाइ।।
प्रभु स्मरण आनंद की घटना है, सुख की नहीं। और जो उसे शुरू करता है, शुरू से ही सुख शुरू होता है। सुख बढ़ता ही चला जाता है। सुख महासुख हो जाता है। और सुख का ऐसा नाद भीतर बजने लगता है कि रोआं-रोआं उसी में डूब जाता है। तुम उसमें ही जीते हो, उसमें ही होते हो। वह तुम्हारा होना हो जाता है।
तुम्हारा अस्तित्व बन जाता है।
इसे कैसे समझाएं?
कौन पटंतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमरियां ही सुख होइ।।
सुमरोगे, तो ही जानोगे कि उसके जैसा बस वही है।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
चौथा प्रवचन

जिज्ञासा-पूर्तिः दो

पहला प्रश्नः सच्ची और गहरी प्यास स्वयं परमात्मा तक पहुंचा देती है फिर आप बार-बार गुरु की महिमा बतला कर क्या हमें पंगु नहीं बना रहे हैं?

पंगु तुम हो! और ज्यादा पंगु तुम बनाए नहीं जा सकते। अंधे तुम हो, आंख
को और ज्यादा बंद करने की कोई व्यवस्था की नहीं जा सकती।
गुरु की महिमा सुन कर चोट कहां लगती है? अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है गुरु की महिमा सुन कर। निर-अहंकारी तो अहोभाव से भर जाता है। गुरु की महिमा उसके भीतर एक अमृत की वर्षा बन जाती है, लेकिन अहंकारी को बड़ी पीड़ा लगती है। क्योंकि गुरु की महिमा का अर्थ है, तुम्हें मिटना पड़ेगा।
गुरु का अर्थ है, तुम्हें "न" हो जाना पड़ेगा। जब तक तुम हो, तब तक गुरु
न हो सकेगा। गुरु मृत्यु है। वह तुम्हें मिटाएगा, पोंछ डालेगा बिल्कुल। इससे घबड़ाहट होती है। इससे गुरु की महिमा सुन कर कहीं न कहीं चोट लगती है। चोट लगती हो, तो गौर से देखना भीतर, अहंकार खड़ा है। और वह अहंकार बड़ा चालाक है, वह बड़े तर्क, बड़ी दलीलें खोजता है। उसी अहंकार ने यह दलील खोज ली है। सच्ची और गहरी प्यास स्वयं परमात्मा तक पहुंचा देती है। लेकिन सच्ची
और गहरी प्यास पाओगे कहां? अगर होती, तो तुम परमात्मा तक पहुंच गए होते; मेरे पास आने की कोई जरूरत न थी।
कौन तुम्हें बताएगा कि कौन सी प्यास सच्ची है और कौन सी झूठी? कौन तुम्हें समझाएगा कि कौन सी प्यास गहरी है और कौन सी उथली? कौन तुम्हें जगाएगा कि क्या प्यास है और क्या प्यास नहीं? अगर तुम यह कर ही लेते, तो कितने जन्म तुमने बिताए हैं अब तक, कर क्यों नहीं पाए?

अकड़! कहीं झुकना न पड़े। किसी से सीखना न पड़े। सीखना इतना पीड़ादायी है, शिष्य होना ऐसा कांटे की तरह चुभता है। क्योंकि शिष्य का अर्थ है झुको, शिष्य का अर्थ है, खुलो; शिष्य का अर्थ है कि किसी और को आने दो, हृदय के सिंहासन पर विराजमान होने दो। वहां अहंकार कब्जा किए बैठा है। वह अहंकार तुम्हें बहुत बातें समझाएगा, तुमसे कहेगा, इसकी क्या जरूरत है; तुम खुद ही तो परमात्मा हो!
ठीक है यह बात कि तुम परमात्मा हो। लेकिन इसका तुम्हें अनुभव नहीं है। और जब तक अनुभव न हो, तब तक यह बात दो कौड़ी की है। यह बात सच है कि गहरी प्यास पहुंचा देती है, लेकिन गहरी प्यास हो तब न! गुरु थोड़े ही पहुंचाता है, गहरी प्यास ही पहुंचाती है। लेकिन गुरु गहरी प्यास को जगाता है। गुरु, परमात्मा थोड़े ही दे सकता है तुम्हें। परमात्मा तो तुम्हें मिला ही हुआ है। गुरु केवल तुम्हें जगा सकता है, ताकि तुम वही देख लो, जो कि तुम्हारे भीतर छिपा है।
और बड़े मजे की बात है कि गुरु तो एक बहाना है। गुरु के बहाने तुम झुकना सीख जाते हो। और किसी दिन गुरु के चरणों में झुके-झुके तुम अचानक पाते होः गुरु के चरण तो चले गए, परमात्मा के चरण हाथ में हैं। गुरु तो बहाना था, जिसके बहाने तुमने झुकना सीख लिया। जिसने झुकना सीख लिया वह परमात्मा के पास पहुंच जाता है।
लेकिन गुरु के बिना तुम झुकना न सीख पाओगे, गुरु के बिना तो तुम अकड़े
रह जाओगे।
वही तो हुआ है कृष्णमूर्ति के शिष्यों में। सुन रहे हैं वर्षों से कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। यह सुन कर अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों की जमात इकट्ठा हो गई है। वहां तुम्हें विनम्र आदमी खोजे न मिलेगा, क्योंकि जिनका अहंकार झुकना नहीं चाहता, उन्हें कृष्णमूर्ति की बात बहुत जंचती है। और बात बिल्कुल सही है; लेकिन जंचना बिल्कुल गलत है।

कभी-कभी तुम ठीक बात को भी गलत कारण से पकड़ लेते हो। बात तो बिल्कुल ठीक होती है, लेकिन कारण तुम्हारा बिल्कुल गलत होता है। कभी-कभी तुम सच का उपयोग झूठ की तरह करते हो। तुम सच का उपयोग ही किसी को चोट पहुंचाने के लिए करते हो; तब सत्य हिंसा बन जाता है।
इसलिए जानने वालों ने, महावीर ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने, सत्य के भी पहले अहिंसा को रखा है। उसका कुल कारण एक ही है कि अगर अहिंसा हो, तो ही तुम सत्य बोल सकोगे। अन्यथा तुम एक आंख वाले आदमी को देख कर काना कहोगे। दिल तो होगा दुख पहुंचाने का, लेकिन तुम कहोगे कि मैं सत्य बोल रहा हूं। इसलिए सारे ज्ञानियों ने अहिंसा को पहला व्रत माना है। सत्य को पीछे रखा है। सत्य खतरनाक हो सकता है।
कृष्णमूर्ति जो कह रहे है, वह बिल्कुल सत्य है, लेकिन सुनने वाला गलत कारण से सुन रहा है। सुनने वाला गलत कारण से पकड़ रहा है। सुनने वाला झुकना नहीं चाहता है। कृष्णमूर्ति में सहारा मिल गया। सुनने वाला गुरु होना चाहता है, शिष्य नहीं होना चाहता। कृष्णमूर्ति में बहाना मिल गया। लेकिन वर्षों तक सुनने के बाद कोई कहीं पहुंचता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। कृष्णमूर्ति का सुनने वाला बड़ा वर्ग मुझसे संबंधित रहा है। उनमें से
एक को भी मैं पहुंचता हुआ नहीं देखता। और वे सभी मुझसे आकर कहते हैं कि क्या करें? बात तो सब समझ में आती है, लेकिन परिवर्तन कुछ भी नहीं हो रहा है। परिवर्तन होगा भी नहीं; बात गलत जगह सहारा दे रही है; रोग के लिए औषधि भोजन बन रही है।
तुम कहते हो कि "गुरु की महिमा सुन-सुन कर तुम पंगु न बन जाओगे?"
अगर तुम पंगु न होते, तो तुम यहां आते ही नहीं। तुम यहां आए ही इसलिए
हो कि तुम पंगु हो और तुम चलना सीखना चाहते हो। तुम पंगु भी हो, लेकिन तुम अहंकारी भी हो कि तुम किसी का सहारा लेकर चलना भी नहीं सीखना चाहते। तुम चलना भी सीखना चाहते हो, लेकिन किसी को धन्यवाद भी देना पड़े, इतनी भी उदारता तुम्हारे हृदय में नहीं है कि किसी के प्रति कृतज्ञ होना पड़े, अनुगृहीत होना पड़े कि किसी ने चलाया। तुम्हारा अहंकार इतना सा धन्यवाद भी न दे सकेगा। और गुरु ने कुछ मांगा नहीं है कभी; धन्यवाद भी नहीं मांगा है। गुरु की महिमा का एक ही अर्थ है कि मैं तुम्हारे अहंकार की निंदा कर रहा हूं। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो, तो गुरु से क्या लेना-देना? गुरु की महिमा कह रहा हूं इसलिए, ताकि तुम्हारा अहंकार निंदित हो जाए। गुरु की चर्चा कर रहा हूं इसलिए, ताकि तुम झुकना सीख जाओ। तुम शिष्य होने के लिए आतुर हो जाओ--गुरु की महिमा में बस, इतना ही राज है।
झुकोगे तुम गुरु के चरणों में, उठ कर तुम पाओगे कि गुरु तो विसर्जित, विलीन हो गया है, परमात्मा के चरण हाथ में आ गए हैं। क्योंकि जो झुक गया, उसके हाथ में परमात्मा के चरण आ जाते हैं। तब तुम गुरु को धन्यवाद दोगे कि तेरी कृपा कि तूने हमें झुकना सिखा दिया।
झुकते ही मिल गया, जिसे हम खोए थे। झुकते ही जान लिया, जिसे जानने की बड़ी प्यास थी।

दूसरा प्रश्नः जीवन-ऊर्जा के शीघ्र से शीघ्र रूपांतरण के लिए कौन सी ध्यान की विधि उपयोगी होगी? भीतरी योगाग्नि को जाग्रत करने के लिए सूर्य-त्राटक की क्या उपयोगिता है?

पहली तो बात, "शीघ्र से शीघ्र" की दृष्टि ही गलत है। उसका अर्थ है कि तुम प्रतीक्षा करने को जरा भी तैयार नहीं हो। उसका अर्थ है कि तुम बड़ी जल्दी में हो। उसका अर्थ है कि तुम बड़े तनाव में हो, बड़े अधैर्य में। परमात्मा को वे ही पा सकते हैं, जिनकी जीवन-चेतना में जल्दी का रोग प्रविष्ट नहीं हुआ है; जो प्रतीक्षा करने को राजी हैं।
प्रतीक्षा वरदान है।
प्रतीक्षा का अर्थ है कि तू इतना विराट है कि अगर अनंत जन्मों तक भी प्रतीक्षा करनी पड़े और फिर तू मिले, तो भी तू जल्दी ही मिल गया। प्रतीक्षा का अर्थ हैः कभी भी तू मिलेगा, अनंतकाल में भी, तो भी तू जल्दी मिल गया;

क्योंकि मेरी पात्रता ही क्या थी? तब भी मिलना ही चाहिए, ऐसी कोई पात्रता तो नहीं थी। तू अगर न मिलता, तो शिकायत क्या थी।
और जितनी तुम जल्दी करोगे, उतनी देर हो जाएगी। और तुम्हें पता है? कभी-कभी तुम्हें साधारण जीवन में भी अनुभव हुआ है कि जल्दी ट्रेन पकड़नी है, उस दिन और देर होने लगती है। कोट की बटन नीचे की ऊपर लग जाती है। उलटा जूता पैर में चला जाता है। कुछ रखना था सूटकेस में, कुछ और रखा जाता है। चाबी घर ही भूल आते हो। टिकट टैक्सी में छूट जाती है। बड़ी जल्दी में थे। जितनी जल्दी में होते हो, उतनी देर लगती है। क्योंकि जल्दी, समय को नष्ट करती है। जल्दी, समय को जलाती है। और जल्दी का अर्थ है, मन तनाव में होता है, अशांत होता है। बड़ी तरंगें और बड़ी लहरें मन में होती हैं।
जितने धीरज से तुम चल सको, उतने जल्दी तुम पहुंचते हो। और अगर तुम अनंत प्रतीक्षा के लिए राजी हो, तो इसी क्षण घटना घट सकती है।
ये वक्तव्य विरोधाभासी मालूम पड़ेंगे। मैं यह कह रहा हूं कि अगर जल्दी चाहिए हो, तो जल्दी मत करना। मैं यह कह रहा हूं कि अगर जल्दी न चाहिए हो, तो जितनी जल्दी करना हो, करना। वह मन, जो बहुत आतुर होकर लगा है और जल्दी में है, कभी पहुंच न पाएगा। क्योंकि परमात्मा को मिलने का रास्ता शांत होना है। जल्दी तो अशांति है।
प्रतीक्षा करो। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि, प्यासे
मत बनो। प्यास तो तीव्र हो, प्रतीक्षा अनंत हो। प्यास तो ऐसी हो जैसे अभी चाहते हो और प्रतीक्षा ऐसी हो कि जैसे कभी भी मिलेगा, तो भी जल्दी है। ये दो गुण जब तुम्हारी जीवन-धारा में जुड़ते हैं--
सूफी फकीर बायजीद अपने शिष्यों को कहा करता था कि हर काम ऐसे करो जैसे
यह आखिरी दिन है। आलस्य का उपाय नहीं है। हर काम ऐसे करो जैसे यह जीवन का आखिरी दिन है। यह सूर्यास्त आखिरी सूर्यास्त है, अब कोई सूर्योदय नहीं होगा। कोई कल नहीं है, बस आज सब समाप्त है। हर काम ऐसे करो कि यह आखिरी दिन है। और हर काम ऐसे भी करो कि जीवन अनंतकाल तक चलेगा। कोई जल्दी नहीं है। बड़ा विरोधाभास है। ये तुम दोनों बात एक साथ कैसे साध सकोगे? ये साधी जाती हैं। ये सध जाती हैं। और जिस दिन ये सधती हैं, तुम्हारे भीतर एक ऐसा अपूर्व संगीत जन्मता है, जिसमें प्यास तो प्रबल होती है, प्रतीक्षा भी उतनी ही प्रबल होती है।
प्यास तो तुम्हारी होती है, तुम जलते हो, आग की लपट बन जाते हो, व्याकुलता गहन होती है, यह तुम्हारी दशा है, लेकिन इस कारण तुम परमात्मा से यह नहीं कहते कि तू अभी मिल। तुम परमात्मा से कहते हो, यह प्यास मेरी है, मैं जलूंगा, लेकिन मैं राजी हूं, जब तुझे मिलना हो, तेरी सुविधा से मिल। मैं द्वार पर बैठा रहूंगा। मैं दस्तक भी न दूंगा। मैं प्यासा रहूंगा। मेरी प्यास एक अग्नि बन जाएगी। अगर वही तेरे द्वार पर दस्तक बन जाए तो पर्याप्त है, लेकिन मैं और जल्दी न करूंगा।
यह भक्ति का रसायन है। यह भक्ति का पूरा शास्त्र है कि तुम मांगो भी
और जल्दी भी न करो। प्रार्थना भी हो, और ओंठ पर मांग भी न आए।
बायजीद जब प्रार्थना करता था, तो कभी उसके ओंठ न हिलते थे। शिष्यों ने पूछाः हम प्रार्थना करते हैं, कुछ कहते हैं, तो ओंठ हिलते हैं। आपके ओंठ नहीं हिलते? आप ऐसे पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े हो जाते हैं। आप कहते क्या हैं भीतर? क्योंकि भीतर भी आप कुछ कहेंगे, तो होंठ पर थोड़ा कंपन आ जाता है। चेहरे पर बोलने का भाव आ जाता है, लेकिन वह भाव भी नहीं आता।
बायजीद ने कहा कि मैं एक बार एक राजधानी से गुजरता था, और एक राजमहल के सामने सम्राट के द्वार पर मैंने एक सम्राट को भी खड़े देखा, और एक भिखारी को भी खड़े देखा। वह भिखारी बस खड़ा था। फटे-चीथड़े थे शरीर पर। जीर्ण-जर्जर देह थी, जैसे बहुत दिन से भोजन न मिला हो। शरीर सूख कर कांटा हो गया। बस आंखें ही दीयों की तरह जगमगा रही थीं। बाकी जीवन जैसे सब तरफ से विलीन हो गया हो। वह कैसे खड़ा था यह भी आश्चर्य था। लगता था अब गिरा, अब गिरा। सम्राट उससे बोला कि बोलो, क्या चाहते हो?

उस फकीर ने कहाः अगर मेरे आपके द्वार पर खड़े होने से मेरी मांग का पता नहीं चलता, तो कहने की कोई जरूरत नहीं। क्या कहना है और? मैं द्वार पर खड़ा हूं, मुझे देख लो। मेरा होना ही मेरी प्रार्थना है।
बायजीद ने कहाः उसी दिन से मैंने प्रार्थना बंद कर दी। मैं परमात्मा
के द्वार पर खड़ा हूं। वह देख लेगा। मैं क्या कहूं? और अगर मेरी स्थिति कुछ नहीं कह सकती, तो मेरे शब्द क्या कह सकेंगे? और अगर वह मेरी स्थिति नहीं समझ सकता, तो मेरे शब्दों को क्या समझेगा?
भक्त जलता है। बड़ी गहन पीड़ा है उसकी। गहनतम पीड़ा है भक्ति की। उससे बड़ी कोई पीड़ा नहीं। और मिठास भी बड़ी है उस पीड़ा में, क्योंकि वह एक मीठा दर्द है, और परम प्रतीक्षा भी है उसमें। भक्त रुक सकता है, अनंतकाल तक रुक सकता है। और जिस दिन तुम अनंतकाल तक रुकने को तैयार हो, उसी क्षण घटना घट जाती है। उसके पहले घटना न घटेगी। क्योंकि उतने धैर्य में ही शांति घटित होती है। उसी शांति में द्वार खुलता है।
अधैर्य छोड़ो।
सारी ध्यान की विधियां धैर्य सिखाने को हैं, जल्दबाजी सिखाने को नहीं। यह तुम मुझसे पूछो ही मत शीघ्र से शीघ्र रूपांतरण के लिए। इतनी जल्दी भी क्या है? प्रकृति बड़ी शांति से बहती है। स्वभाव चुपचाप चलता है। स्वभाव समय को मानता ही नहीं। वह शाश्वत है। फूल जल्दी नहीं करते। वृक्ष जल्दी नहीं पकते--रुकते हैं, राह देखते हैं। चांद-तारे भागते नहीं, अपनी गति को थिर रखते हैं।
मैंने सुना है, ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने अपने संस्मरणों में लिखा है
कि उनके पांडित्य की खबर सारी दुनिया में पहुंच गई। और गवर्नर जनरल ने--तब राजधानी कलकत्ता हुआ करती थी--उन्हें सम्मानित करने के लिए राज-दरबार में बुलाया।
तो वे गरीब आदमी थे। फटे-पुराने कपड़े थे। मित्रों ने कहाः यह ठीक नहीं। तुम्हारी प्रतिष्ठा भारत की प्रतिष्ठा है। तुम इन कपड़ों में जाओगे, अच्छा न लगेगा। दरबार में जाने योग्य ये कपड़े नहीं हैं। हम तुम्हें अच्छे कपड़े बना देते हैं।
पहले तो उन्होंने इनकार किया, लेकिन फिर उन्हें बात समझ में आ गई कि
यह उचित न होगा। और इसमें गवर्नर जनरल का भी अपमान है, वह भी नाराज हो सकता है। व्यवस्थित कपड़ों में जाना जरूरी है। तो वे राजी हो गए। लेकिन मन में थोड़ी बेचैनी रही।
कल सुबह जाना है और आज की सांझ वह घूमने गए हैं, बगीचे की तरफ, जब वहां
से लौट रहे हैं, तो उनके सामने एक मुसलमान बड़ी शांति, शांति से टहलता हुआ चल रहा है, उनके आगे-आगे। नौकर एक भागा हुआ आया और उसने मुसलमान से कहाः मीर साहिब, आपके घर में आग लग गई।
लेकिन मीर साहिब के कदमों में फर्क न पड़ा। वही चाल रही, वही ढंग से छड़ी हिलती रही। वही गति रही। उसमें रत्ती भर फर्क न पड़ा, जैसे कुछ भी नहीं हुआ है। नौकर समझा कि शायद मीर साहिब समझे नहीं, सुने नहीं। उसने कहा कि आपने सुना कि नहीं?
नौकर एकदम व्याकुल है, पसीने से लथ-पथ है, हांफ रहा है, घबड़ा रहा है। संपत्ति किसी और की जल रही है। नौकर सिर्फ नौकर है। उसका कुछ भी नहीं जा रहा है। जिसकी संपत्ति जल रही है, वह शांति से चल रहा है। उसने फिर से कहाः मकान में आग लग गई है। आप समझे कि नहीं? आप किस ख्याल में डूबे हैं? दौड़िए! राख हुआ जा रहा है सब!
उस मुसलमान ने अपने नौकर से कहाः नासमझ, क्या साधारण से मकान के जलने
के कारण अपने जीवन भर की चाल छोड़ दूं? और फिर मकान तो जल ही रहा है। मेरे दौड़ने से मैं भी जलूंगा? जलने दे मकान! और मेरे दौड़ने से कुछ बुझेगा नहीं, लेकिन मैं भी जल उठूंगा। अब मेरा ख्याल इतना ही है कि मकान तो गया, अपने को बचा लूं।
विद्यासागर पीछे-पीछे थे, सुनी यह बात, चोट कर गई। सोचा कि यह आदमी-- मकान में आग लग गई है--और चाल बदलने को राजी नहीं है और मेरे तो कोई मकान

में आग नहीं लगी है, और मैं कपड़ा बदलने को राजी हूं। नहीं, कल ऐसे ही जाऊंगा।
तुम जब जल्दी में हो, तब आग तुम्हारे भीतर लग जाती है। संसार तो वैसे
ही जल रहा है। तुम अपने को बचा लो, बस इतना ही काफी है। संसार तो जल ही जाएगा। और तुम्हारे बचने का एक ही रास्ता है कि तुम्हारी शांति में, तुम्हारे धैर्य में, तुम्हारी प्रतीक्षा में कोई अंतर न पड़े।
धैर्य को ही ध्यान बनाओ; प्रतीक्षा को प्रार्थना। फिर देखो, कितनी जल्दी उसकी घटना घट जाती है। इस क्षण भी घट सकती है। एक क्षण भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है अगर रुकना पड़ रहा है, तो इसलिए क्योंकि तुम बहुत जल्दी में हो, अगर तुम पूरी तरह छोड़ दो, तो इसी क्षण घटना घट जाएगी। एक और क्षण खोने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि तुम शांत हो गए। तुम्हारी भाग-दौड़ के कारण ही तुम नहीं देख पाते हो। जो मौजूद है, भाग-दौड़ के कारण दिखाई नहीं पड़ता। आंखें धुंधली हैं, दौड़ में लगी हैं। रुको और पा लो।
तो मेरा सूत्र ध्यान रख लो--जो दौड़ेगा, वह चूकेगा। जो रुकेगा, वह पा लेगा। मांगोगे, कभी न मिलेगा। चुप रहो, मिला ही हुआ है।
और सूर्य-त्राटक इत्यादि सब शारीरिक बातें हैं। उन सब उलझनों में मत पड़ना। भीतर की आंख के खुलने का तो पक्का नहीं, बाहर की आंखें खराब हो सकती हैं।

तीसरा प्रश्नः ध्यान का फल आत्म-दर्शन है क्या? और श्रद्धा को कैसे उपलब्ध हुआ जाए?

श्रद्धा को उपलब्ध होने का एक ही उपाय है, श्रद्धा करना। और कोई उपाय नहीं।
जैसे कोई पूछे कि तैरना कैसे सीखा जाए? क्या करो? तैरना ही एक उपाय है। उतरो पानी में, हाथ-पैर तड़फड़ाओ। एकदम से न आ जाएगा तैरना। लेकिन हाथ-पैर तड़फड़ाना तैरने की शुरुआत है। तैरना है क्या? हाथ-पैर तड़फड़ाने की प्रक्रिया को थोड़ा व्यवस्थित कर लेना, और तो तैरना कुछ है नहीं।
एकदम आदमी को फेंक दो पानी में, वह भी हाथ-पैर तड़फड़ाता है। वह भी तैरता है, लेकिन उसके तैरने में कला नहीं है। कुशलता नहीं है। और अक्सर तो ऐसा होता है कि वह डूबता है अपने इस तैरने की प्रक्रिया के कारण। वह इतना घबड़ा जाता है कि उलटे-सीधे हाथ फेंकता है, उसी में, दबोच में आ जाता है, उसी में पानी मुंह में चला जाता है। घबड़ाहट और बढ़ जाती है, और जोर से हाथ फेंकता है, मुश्किल में पड़ जाता है। अपने ही चक्कर में डूब जाता है।
तुमने एक मजे की घटना देखी कि मुर्दा कभी नहीं डूबता, जिंदा डूबता है! मुर्दा जरूर कोई कला जानता होगा, जो जिंदा आदमी नहीं जानता। जिंदा तो डूब जाता है पानी में, मुर्दा ऊपर आकर तैरने लगता है। मुर्दा एक ही कला जानता है, वह यह कि वह कुछ करता ही नहीं। जब कुछ करता ही नहीं, तो कौन डुबाएगा उसे? तो नदी हार जाती है कि इस मुर्दे को क्या डुबाओ, कैसे डुबाओ? यह कोई सहारा ही नहीं देता।
अंत में जो लोग तैरने की कला में पारंगत हो जाते हैं, वे भी मुर्दे की भांति पानी पर तैरने लगते हैं। उनको हाथ-पैर नहीं चलाना पड़ता। पानी में फेंक दो किसी को तड़फड़ाता है। रोज फेंकते रहो, धीरे-धीरे तड़फड़ाने में कुशलता आ जाती है। रोज अनुभव से सीखता है। हाथ सुचारु ढंग से फेंकने लगता है, मुंह को बंद रखता है, पानी के साथ संबंध बनने लगता है, मैत्री सधती है, पानी के ढंग समझ में आ जाते हैं। अपनी भूलें समझ में आ जाती हैं। वही आदमी एक दिन तैरना सीख जाता है। तैरने को सीखने के लिए और क्या करोगे, सिवाय तैरने के?
श्रद्धा भी वैसी ही घटना है--श्रद्धा करो। पहले तो हाथ-पैर तड़फड़ाओ। संदेह पकड़-पकड़ लेगा। किनारे की तरफ भागने का मन होगा कि डूबे। सीखना पड़ेगा। थोड़ा ढाढ़स रखना पड़ेगा। थोड़ा साहस रखना पड़ेगा। किनारे की तरफ भागने की जल्दी न करनी पड़ेगी। भाग भी गए, तो फिर उतर आना पड़ेगा। संदेह पकड़ेगा

बार-बार; धीरे-धीरे श्रद्धा से संबंध बनने लगेगा। रस उत्पन्न होगा।
सुचारु हो जाएगी व्यवस्था। तब धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ेगी।
पहले उथले पानी में कोशिश चलती है, फिर आदमी गहरे पानी में उतरता है, फिर अनंत गहराई में उतर जाता है।
गुरु किनारा है--जहां पानी बहुत गहरा नहीं; जहां डूबे तो भी मरोगे नहीं। गुरु सिर्फ उथला किनारा है, जहां तुम थोड़ा तैरना सीख लो। तो फिर तुम अनंत गहराई की तरफ चले जाओ, जहां परमात्मा है। और जिसने तैरना सीख लिया उसके लिए गहराई से कोई फर्क नहीं पड़ता। गहराई और उथले का फर्क गैर तैरने वालों को है। तैरने वालों को क्या फर्क पड़ता है कि नीचे पांच मील गहराई है कि चार मील कि तीन मिल कि दो मील--सब बराबर है। तैरना आता हो, तो गहराई का सवाल ही मिट जाता है।
एक बार गुरु में श्रद्धा को थोड़ा जन्मा लो, तो फिर तुम अपने हाथ अनंत
की तरफ बढ़ा सकते हो। तो गुरु तो, छोटा सा प्रयोग है श्रद्धा का। और अगर तुम उससे बचे, तो तुम उसी बड़ी श्रद्धा में न जा सकोगे, जिसको हम परमात्मा कहते हैं।
और यह तो पूछो ही मत कि श्रद्धा को पैदा करने का क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं। श्रद्धा कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे तुम सीख सको। उसे सीखने का एक ही उपाय है, और वह अनुभव है। प्रेम को कोई कैसे सीखता है? कहीं कोई विद्यापीठ खुले हैं, जहां कोई प्रेम को सीखता है? नहीं!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस बच्चे को बचपन में मां-बाप का प्रेम न मिले, वह जीवन भर फिर प्रेम नहीं सीख पाता। सीख ही नहीं पाता, क्योंकि उथला किनारा चूक गया। फिर वह उपाय करता रहता है लाख! किताबें पढ़ता है, शास्त्र पढ़ता है, मगर उससे कुछ नहीं होता। क्योंकि पहली जो संभावना थी, वह चूक गई, जहां से बीजारोपण होता।
बच्चा प्रेम कैसे सीखता है? पहले वह मां में तैरना सीखता है। मां उसका पहला प्रेम है। इसलिए जिस व्यक्ति का संबंध अपनी मां से गड़बड़ हो गया, उसके सारे जीवन के संबंध अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। फिर बड़ा मुश्किल है। जिस व्यक्ति का संबंध अपनी मां से ठीक न जुड़ा, वह किसी स्त्री से कभी ठीक से न जुड़ पाएगा, क्योंकि वह पहली स्त्री थी। फिर सभी स्त्रियों में वही स्त्री बार-बार मिलने वाली है। क्योंकि स्त्रियों का थोड़े ही सवाल है, स्त्रैण गुण का सवाल है।
और मां से प्रेम कैसे होता है? बच्चा क्या करेगा? बच्चा कुछ भी नहीं
कर सकता। जानता भी नहीं। मां उसे प्रेम देती है। मां के प्रेम की छाया में वह भी प्रत्युत्तर देना सीखने लगता है। मां मुस्कुराती है, तो धीरे-धीरे वह भी अपने ओंठ खींचने लगता है। मां उसे थपथपाती है, उसे स्पर्श करती है, तो वह भी मां को स्पर्श करना सीखने लगता है। मां उसे कंठ से लगा लेती है, तो वह भी मां को कंठ से लगाने का अभ्यास करने लगता है। ऐसा प्रेम करते-करते वह मां का प्रेम सीख लेता है। प्रेम की कला आ गई! अब वह जीवन में बहुत प्रेम से भर सकेगा, और कभी सवाल न उठेगा।
पश्चिम में बड़ा सवाल उठा है। प्रेम बड़ी समस्या बन गई है; क्योंकि मां
का प्राथमिक प्रेम ही नष्ट हो गया है। कोई मां पश्चिम में अपने स्तन से बच्चों को दूध पिलाने को राजी नहीं है। क्योंकि स्तन का आकार, रूप, रंग-ढंग दूध पिलाने से बिगड़ जाता है। मां बूढ़ी मालूम होने लगती है। स्तन की ताजगी चली जाती है। तो कोई मां स्तन से दूध पिलाने को राजी नहीं है। और स्तन से ही बच्चे का पहला संबंध था, जब वह मां के शरीर से जुड़ता था और मां की ऊष्मा को अनुभव करता था। और मां स्तन के द्वारा ही उसे जीवन, भोजन और प्रेम देती थी।
वह सेतु टूट गया। अब यह बच्चा जीवन भर कोशिश करेगा, लेकिन जहां भी कोशिश करेगा, वहीं असफल होगा। तब मनोवैज्ञानिक खड़े होंगे, पागलखाने भरेंगे।
आज अमरीका में करीब-करीब सत्तर प्रतिशत अस्पतालों की जगह मन के मरीज घेरे हुए हैं। और मन का एक ही रोग है। अगर प्रेम न उपलब्ध हो पाया, तो मन रुग्ण हो जाता है। अगर प्रेम उपलब्ध हो गया, तो मन स्वस्थ हो जाता है। वह

जो पहली घटना थी, पहला सूत्रपात था, नदी के किनारे उथले में तैरने की जो सुविधा थी, वह चूक गई। अब यह गहरे में कैसे जाए? अब डर लगता है।
मेरे पास रोज आते हैं लोग, जो कहते हैं कि स्त्री से भय लगता है, प्रेम करने में डर लगता है। डरेंगे ही! क्योंकि उनको हम सागर में बुला रहे हैं और किनारे पर चूक गए। उनको किनारे पर मौका न मिला तैरने का।
जैसे मां के पास बच्चा सीखता है प्रेम का ढंग, वह कोई कला नहीं है, जो सिखाई जा सके। मां अपने प्रेम में उसे निमंत्रण देती है, उस प्रेम में डूब कर ही वह सीख जाता है, ऐसे ही गुरु के पास व्यक्ति सीखता है श्रद्धा। गुरु तुम्हें अपने प्रेम से भर देता है। और कोई कला नहीं है। गुरु तुम्हारे बिना मांगे तुम्हें देता चला जाता है। गुरु के होने के ढंग में, तुम पर वर्षा होती रहती है। उसके देखने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी मौजूदगी में, वह चारों तरफ एक वातावरण खड़ा करता है, जहां तुम थोड़ा तैरना सीख लो।
लेकिन तुम पूछते होः "श्रद्धा कैसे? क्या करें?"
कुछ करना नहीं है, सिर्फ थोड़ा अपने को छोड़ो। गुरु बुलावा देता है, थोड़ा अपने को छोड़ो। थोड़ा सा तो भरोसा करो कि इस थोड़े से उथले पानी में उतर सको।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन तैरने गया था, सीखने। पैर फिसल गया घाट पर, गिर पड़ा। अभी पानी में उतरा ही न था, भागा घाट से। जो गुरु सिखाने ले गया था, उसने कहा कि मुल्ला, कहां भागे जा रहे हो? ऐसे तो तैरना न हो पाएगा। मुल्ला ने कहाः अब जब तक तैरना न सीख लूं, नदी के पास न आऊंगा। यह तो जान पर खतरा है। वह तो बच गए। अगर नदी में गिर गए होते, पैर फिसला था, तो गए! अब तो तैरना सीख कर ही आऊंगा गुरु। उसने कहा कि अब तुम वहीं रहो, मैं पहले... वह अभी तक नहीं पहुंच पाया। वह कभी नहीं पहुंचेगा। क्योंकि तैरना सीख
कर अगर नदी में आने का नियम बनाया हो, तो तुम तैरना कहां सीखोगे? कोई घर में गद्दे-तकिए बिछा कर थोड़े ही तैरना सीखा जाता है कि अपने गद्दे पर लेटे हैं और हाथ-पैर चला रहे हैं। चलाते रहो! उससे कुछ तैरना नहीं आ जाएगा। उतरना ही पड़ेगा।
श्रद्धा अगर सीखनी है, तो साहस चाहिए। गुरु जब बुलावा दे, तब रुकना मत। जब गुरु निमंत्रण दे, तो चले जाना। जैसे-जैसे रस आएगा, जैसे-जैसे स्वाद आएगा, वैसे-वैसे हिम्मत बढ़ेगी। और गहरे में जाने की हिम्मत बढ़ेगी। और जब उथले में इतना सुख पाओगे, और उथले में ऐसा महासुख तुम्हें घेरने लगेगा, जो कभी नहीं जाना, तो तुम खुद ही कहोगे कि अब और गहरे में जाना है।
तो गुरु तो एक इशारा है--और गहरे की तरफ। जब तुम तैयार हो गए, तब वह कह देगा, अब जाओ गहरे की तरफ। वह तुम्हें खुद ही धक्के देगा कि अब तुम गहरे की तरफ जाओ। कहीं मुझे पकड़ कर मत रुक जाना।
गुरु सीढ़ी है, जिससे पार हो जाना है; जिस पर पैर रखना है और जिससे पार
हो जाना है। गुरु एक सहारा है, जिससे स्वतंत्र हो जाना है। कोई गुरु तुम्हें परतंत्र नहीं कर सकता, अगर वह गुरु है। क्योंकि गुरु की गुरुता इसमें है कि वह स्वतंत्र करे। कोई गुरु तुम्हें पंगु नहीं बना सकता, पंगु तो तुम हो। गुरु तुम्हें हाथ का सहारा देगा, जैसे ही तुम्हारे पैर सम्हल जाएंगे, वह अपना सहारा अलग कर लेगा, ताकि तुम अपने पैरों पर चल पड़ो।
तो गुरु के प्रति दो धन्यवाद देता है शिष्य। पहला धन्यवाद तो तब देता है, जब वह उसकी पंगुता में हाथ का सहारा देता है। और दूसरा उससे भी बड़ा धन्यवाद तब देता है, जब उसके पैर चलने लगते हैं और वह अपना हाथ खींच लेता है। दूसरी घड़ी और भी बड़ी घड़ी है। क्योंकि पहली घड़ी इतनी बड़ी घड़ी नहीं थी, शिष्य पकड़ना ही नहीं चाहता था।
यह बड़े मजे की बात है कि शिष्य पहले पकड़ना नहीं चाहता, गुरु उसे पकड़ता है। फिर शिष्य छोड़ना नहीं चाहता और गुरु उससे छुड़ाता है। और जिस दिन ये दोनों कदम पूरे हो जाते हैं, उस दिन द्वार खुला है। उस दिन तुम मंदिर के पास आ गए।
"और ध्यान का फल आत्म-दर्शन है क्या?"

ध्यान का फल नहीं है आत्म-दर्शन, ध्यान की गहराई है। फल और गहराई में थोड़ा फर्क है। फल तो होता है भविष्य में। बीज आज बोओगे, तो आज ही फल नहीं आ जाएगा। लेकिन ध्यान ऐसा बीज है कि फल आज भी आ सकता है। इसलिए उसे फल कहना उचित नहीं। उसे गहराई कहना उचित है। वह ध्यान की ही गहराई है आत्म-दर्शन। जिस दिन ध्यान में गहराई पूरी हो जाती है, आत्म-दर्शन हो जाता है। अगर तुम डुबकी आज लगा लो, आज हो जाएगा। कल लगा लो, कल हो जाएगा। वर्षों तक ऐसे ही बैठे सोच-विचार करते रहो, कभी न होगा।
ध्यान ही आत्म-दर्शन है। जिस दिन पूरा ध्यान हो जाता है, आत्म-दर्शन
हो गया। तो ध्यान में कोई फल नहीं लगता आत्म-दर्शन का। ध्यान के बाहर कोई आत्म-दर्शन नहीं है। ध्यान की परिपूर्णता ही आत्म-दर्शन है।
और श्रद्धा शुरुआत है, आत्म-दर्शन अंत है।

चौथा प्रश्नः सक्रिय ध्यान में अंतिम चरण में एक शांति किंतु उदासी
सी घेर लेती है, जब कि आप उत्सव मनाने को कहते हैं, इस उदासी में कैसे उत्सव मनाएं, और कैसे नाचें?

उदासी में क्या बुराई है? उदास नृत्य नहीं हो सकता? और बड़ा मजा तो यह
है कि अगर तुम उदास होकर नाचो, तो जल्दी ही तुम पाओगे, उदासी बदल गई। नाच उदासी को बदल देगा। इसलिए रुको मत, आज अगर उदासी का क्षण है, तो उदासी में ही नाचो। नाच को रोको मत, क्योंकि रोकने से तो उदासी गहन हो जाएगी, बोझ हो जाएगी। नाचने से उदासी बिखर जाएगी। जैसे सूरज निकल आया और बादल हट जाए, ऐसे तुम अगर सच में नाचे, तो बादल हट जाएंगे।
इसे तुम समझने की कोशिश करो। उदास व्यक्ति नाच सकता है, लेकिन, नाचने वाला व्यक्ति उदास नहीं रह सकता। उदासी में कोई बाधा नहीं है, चलो, थोड़े धीमे पैर उठेंगे। घूंघर में पूरी झनकार न आएगी, ठीक सही! आज ऐसा ही सही! हाथ-पैर पूरे उमंग से नहीं उठते, सुस्ती घेरे हुए हैं, चलो ऐसा ही सही। लेकिन उठाओ हाथ-पैर, नाचो गाओ, उदास गीत गाओ, मगर गाओ।
अगर तुमने गाया और नाचे, तो तुम जल्दी ही पाओगे, तुम्हें पता ही न चलेगा, कब उदासी में शुरू हुआ गीत, उदासी को मिटा गया। कब उदासी में उठे पैर, नृत्य... । उदासी कब खो गई, पता नहीं चलेगा। अचानक तुम पाओगे, उदासी नहीं है, अब तुम नाच रहे हो।
जीवन के प्रत्येक अनुभव से नृत्य निकल सकता है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को उत्सव बनाया जा सकता है। और यही तो कला है धर्म की कि तुम जीवन के प्रत्येक अनुभव से...
तुम क्रोधित हो, कोई फिकर नहीं, आज तुम नाचो। तांडव सही! आज तोड़-फोड़ का
मन हुआ है, नाचो! तुम्हारे नृत्य को तोड़-फोड़ होने दो। मगर तुम जल्दी ही पाओगे कि नृत्य ने तुम्हारी क्रोध की ऊर्जा को निष्कासित कर दिया, रेचन हो गया। क्रोध विलीन हो गया, झंझावात जा चुका, अब तुम नाच रहे हो बड़े हल्के हो कर, पंख लग गए हैं तुम्हें।
उदासी हो या क्रोध, उत्सव तो हो ही सकता है। उत्सव में किसी चीज से कोई बाधा नहीं पड़ती। यह एक गलत दृष्टि है तुम्हारी कि आज उदास हैं तो कैसे नाचें, जब खुश होंगे, तभी नाचेंगे। तब तुम कभी भी न नाचोगे। क्योंकि उदास तुम आज हो। इसी उदासी को ढोओगे, इससे खुशी कैसे निकलेगी? तुम्हारी खुशी में भी उदासी का बोझ होगा। तुम्हारी खुशी भी उदासी से दबी होगी। तुम खुश भी होओगे, तो समग्रता से न हो पाओगे। तुम हंसोगे भी, तो तुम्हारी हंसी पूरी न होगी, पीछे पत्थरों का बोझ अटका रहेगा।
तुम लोगों को हंसते देखते हो, कभी निरीक्षण किया? बहुत कम लोग हैं, जो हृदयपूर्वक हंसते हैं। मुश्किल से कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, उसके पैर छूना, जो हृदय से हंसता हो। बस, होंठ पर ही आती है। बहुत गहरी गई, तो कंठ तक जाती है, लेकिन हृदय तक नहीं जाती। क्योंकि हृदय में तो जन्मों-जन्मों की उदासी घिरी है।
वहां से तो आ नहीं सकती हंसी। वहां तो द्वार बंद हैं। वहां तो कभी दीया जला ही नहीं। वहां तो कभी किसी ने अर्चना नहीं की, धूप नहीं जलाई।

वहां तो सब गंदा हो गया है। उस अंधेरे में तो सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं और इसलिए तो आदमी भीतर जाने से डरते हैं। लोग कहते हैं, भीतर जाओ, भीतर जाओ। वे घबड़ाते हैं भीतर जाने से, क्योंकि भीतर सिवाय अंधकार के कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
कबीर कहते हैं, सूर्यों का सूर्य जल रहा है भीतर; पर तुम जब जाते हो वहां, तो अंधेरों का अंधेरा दिखाई पड़ता है। कबीर गलत नहीं कहते, दादू गलत नहीं कहते। मगर वह अंधेरे की सीमा पार करनी पड़ेगी। उस अंधेरे के मरघट में ही छिपा है सूरज।
और अंधेरा तुम इकट्ठा करते गए हो। और तुम रोज इकट्ठा करते जा रहे हो, उसकी मात्रा बढ़ती चली जाती है। उदासी को इकट्ठा मत करो। क्रोध को इकट्ठा मत करो। नाचो, और तुम पाओगे कि तुम हलके हो गए हो। न केवल मन हलका हुआ; शरीर हलका हुआ।
जिस दिन कोई समाज नाचना भूल जाता है, उसी दिन समाज रुग्ण हो जाता है। जंगल में आदिवासी हैं, नाचते हैं, उनके स्वास्थ्य की बात ही और! रात, आधी- आधी रात तक नाचते हैं। तारों तले नाचते हैं, तारों के नीचे। तारों की तरह ही नाचते हैं। सो जाते हैं थके-मांदे। लेकिन उस थकान में थकान नहीं है, उस थकान में एक हलकापन है। फिर सुबह जब आदिवासी उठता है, तो उस उठने में फर्क है तुम्हारे उठने से। तुम सोते थोड़े ही हो। तुम सोते में भी सपना ही रहते देखते हो, सोते में भी तुम जागने का सारा व्यापार जारी रखते हो। सोते में भी तुम वही दुस्वप्न देखते रहते हो, जो तुमने जागने में देखे। वही बाजार, वही मित्र, वही शत्रु, वही गोरखधंधा। नींद में भी तुम तड़फते ही रहते हो। नींद भी तुम्हारी शांत घटना नहीं है। आदिवासियों से पूछो कि तुमने सपना देखा? तुम्हें मुश्किल से कभी कोई आदिवासी कहेगा कि हां, एक बार जीवन में देखा था।
मनोवैज्ञानिक जब पहली दफा आदिवासियों का अध्ययन करने लगे, तो चकित हुए, क्योंकि वे कहते ही नहीं कि कभी उनने सपना देखा। सपने की कोई जरूरत नहीं, कुछ इकट्ठा ही नहीं होता। सुबह ताजे उठते हैं पशुओं और पक्षियों की भांति, और पौधों की भांति। फिर दिन भर का काम है, व्यवसाय है। वह काम भी छोटा-मोटा है, भोजन के लिए, छप्पर के लिए। जीवन की उनकी जरूरतें थोड़ी हैं, वह पूरी हो जाती है। सांझ फिर नाच है। नाच उनकी प्रार्थना है। नाच उनका धर्म है।
सभ्यता सबसे पहले नाच को तुड़वा देती है। सभ्य आदमी नाचने से डरने लगता है। कोई सभ्य जाति नाचती नहीं। और अगर नाचती भी है, तो उसका नाच सिर्फ कामुक होता है। कामुक नाच नाच का एक बहुत ही निम्नतम ढंग है।
मैं तुमसे कह रहा हूं उत्सव। नृत्य को तुम उत्सव बनाओ। मैं तुमसे कह रहा हूं, वह तुम्हारे पूरे जीवन-ऊर्जा का खिलाव बन जाए, फूल की तरह खिल जाए। तुम एक कमल की तरह खिल जाओ, पंखुड़ी-पंखुड़ी खिल जाए। तुम पाओगे, उस नृत्य से तुम्हारा जीवन बदलना शुरू हो गया। तुम उदास कम होते हो, क्रोधित कम होते हो, क्योंकि तुम इकट्ठा ही नहीं करते। वह कचरा तुम नाच में फेंक देते हो। तुम्हारे हाथ में एक कीमिया लग गई, एक तरकीब, जिससे तुम लोहे को सोना बना लेते हो, जिससे तुम व्यर्थ को सार्थक बना लेते हो। हर नाच के बाद तुम पाओगे, तुम इतने ताजे होकर वापस आए, जैसे भीतर का एक स्नान हो गया। तुम मत रुको कभी इस कारण कि उदासी मालूम पड़ती है।
सच तो यह है कि मेरे अनुभव में अनेक लोगों को निरीक्षण करने से यह पता चला है कि तुम शांति से इतने अपरिचित हो गए हो कि जब शांति आती है, तो तुम समझते हो कि यह उदासी है। तुम शांति भूल ही गए हो। तुम्हें याद ही नहीं कि शांति का गुणधर्म क्या है? शांति के निकटतम जो तुम्हारी अनुभूति है, वह उदासी की है, बस! तो जब शांति पहली दफा उतरती है, तो तुम समझते हो, ढीले- ढीले, उदास हो गए हो। एक्साइटमेंट नहीं है, उत्तेजना नहीं है, उदास हो गए। सुख के नाम पर तुमने उत्तेजना जानी है। और शांति के नाम पर तुमने उदासी जानी है। तुम्हारा जीवन बिल्कुल झूठा है। तुम नकली सिक्कों में जी रहे हो। इसलिए तुम्हारी व्याख्या मैं समझता हूं कि तुम्हारी व्याख्या भ्रांत है, लेकिन तुम भी क्या करोगे? तुम उसी से तो पहचानोगे नये अनुभव को,

जो तुम्हारा पिछला अतीत का अनुभव रहा है। ज्ञात से ही तो तुम अज्ञात की लक्षणा को जानोगे।
तुम उदासी जानते हो, तो जब भी तुम शांत होते हो, तुम्हें उदासी पकड़ लेती है। वह उदासी नहीं है, एक नई घटना का आविर्भाव हो रहा है। तुम्हारे भीतर शांति घनीभूत हो रही है। और अगर तुम समझ जाओ कला को, तो तुम हर उदासी को शांति में रूपांतरित कर सकते हो। और अगर तुम न समझो तो हर शांति को तुम उदासी समझोगे और उससे छूटने का उपाय करोगे।
ध्यान तुम्हें जो दे जाए, कोई फिकर नहीं कि वह क्या है! शर्त मत लगाओ
कि हम कब नाचेंगे। ध्यान तुम्हें जो दे जाए, समझो कि परमात्मा का वही प्रसाद है आज के दिन। नाचो!
कल सांझ ही मैं कह रहा था कि एक सूफी फकीर निरंतर कहा करता था कि परमात्मा तेरा धन्यवाद। अहोभाग्य मेरे कि जब मेरी जो जरूरत होती है, तू तत्क्षण पूरी कर देता है।
उसके शिष्य उससे धीरे-धीरे परेशान हो गए। यह बात सुन-सुन कर, क्योंकि
वे कुछ देखते नहीं थे कि कौन सी जरूरत पूरी हो रही है? फकीर गरीब था। शिष्य भूखे मरते थे। कुछ उपाय न था। और यह रोज सुबह सांझ पांच बार मुसलमान फकीर पांच बार प्रार्थना करे और पांच बार भगवान को धन्यवाद देता और ऐसे अहोभाव से! तो शिष्यों को लगता कि यह भी क्या मामला है?
एक दिन हद हो गई। यात्रा पर थे, तीर्थ-यात्रा के लिए जा रहे थे। तीन दिन से भूखे-प्यासे थे। एक गांव में सांझ थके-मांदे आए। गांव के लोगों ने ठहराने से इनकार कर दिया। तो वृक्षों के नीचे, भूखे, थके-मांदे पड़े हैं। और आखिरी प्रार्थना का क्षण आया, कोई उठा नहीं। क्या प्रार्थना करनी है? किससे प्रार्थना करनी है? हो गई बहुत प्रार्थना! यह क्षण नहीं था प्रार्थना का। लेकिन गुरु उठा, उसने हाथ जोड़े। वही अहोभाव कि धन्यवाद परमात्मा, जब भी मेरी जो भी जरूरत होती है, तू तभी पूरी कर देता है।
एक शिष्य से यह बरदाश्त न हुआ, उसने कहाः बंद करो बकवास। यह हम बहुत सुन चुके। अब आज तो यह बिल्कुल ही असंगत है। तीन दिन से भूखे-प्यासे हैं, छप्पर सिर पर नहीं है। ठंडी रेगिस्तानी रात में बाहर पड़े हैं, किस बात का धन्यवाद दे रहे हो?
उस फकीर ने कहाः आज गरीबी मेरी जरूरत थी। आज भूख मेरी जरूरत थी, वह उसने पूरी की। आज नगर के बाहर पड़े रहना मेरी जरूरत थी। आज गांव मुझे स्वीकार न करे, यह मेरी जरूरत थी। और अगर इस क्षण में उसे धन्यवाद न दे पाया, तो मेरे सब धन्यवाद बेकार हैं। क्योंकि जब वह तुम्हें कुछ देता है, जो तुम्हारी मन के अनुकूल है, तब धन्यवाद का क्या अर्थ? जब वह तुम्हें कुछ देता है, जो तुम्हारे मन के अनुकूल नहीं है, तभी धन्यवाद का कोई अर्थ है। और जब उसने दिया है, तो जरूर मेरी जरूरत होगी, अन्यथा वह देगा ही क्यों? आज यही जरूरी होगा मेरे जीवन-उपक्रम में, मेरी साधना में, मेरी यात्रा में कि आज मैं भूखा रहूं, कि गांव अस्वीकार कर दे, कि रेगिस्तान में खुली रात, ठंडी रात पड़ा रहूं। आज यही थी जरूरत। और अगर इस जरूरत को उसने पूरा किया है और मैं धन्यवाद न दूं, तो बात ठीक न होगी।
ऐसे व्यक्ति को ही परमात्मा उपलब्ध होता है। तो तुम जब उदास हो तो समझना कि यही थी तुम्हारी जरूरत। आज परमात्मा ने चाहा है कि उदासी में नाचो। पर नाच नहीं रुके, धन्यवाद बंद न हो, उत्सव जारी रहे।

पांचवां प्रश्नः आपने अनेक बार कहा है कि सदगुरु शिष्य को पास भी बुलाता है, फिर दूर भी करता है। कैसे पता चले कि सदगुरु ने अप्रसन्नता से, नाराज होकर दूर किया है, या आशीर्वाद रूप से, प्रसन्नता से, आगे के विकास के लिए शिष्य को दूर किया है?

पहली बात, जो गुरु नाराज हो, वह गुरु नहीं। और दूसरी बात, जो शिष्य दूर किए जाने पर ऐसा सोचे कि अप्रसन्नता से दूर किया होगा, वह शिष्य की योग्यता का नहीं।

गुरु नाराज नहीं होता। नाराज होने की बात ही समाप्त हो गई है। अगर कभी गुरु नाराज भी दिखे, तो जानना कि अभिनय करता होगा; क्योंकि अन्यथा कोई उपाय नहीं है।
गुरजिएफ बहुत बार नाराज हो जाता था। ऐसा नाराज हो जाता था कि जैसे खून-खराबा कर देगा। जो भाग जाते थे, वे वंचित रह जाते थे। जो फिर भी टिके रहे, वे जानते थे कि उस जैसा कोमल हृदय पाना कठिन है।
लेकिन फिर वह इस तरह नाराज क्यों हो जाता है? शायद वही शिष्य के लिए जरूरी था। ऐसी भी घटनाएं घटी हैं--और वह गुरजिएफ ही कर सकता था, कि दो व्यक्ति मिलने आए हैं, एक बाएं बैठा है, एक दाएं, जब वह बाएं की तरफ देखे, तो नाराजगी से और दाएं की तरफ देखे तो बड़े प्रेम से। और दोनों जब बाहर गए तो विवाद में पड़ गए कि यह आदमी कैसा है? एक कहे कि बिल्कुल दुष्ट प्रकृति का मालूम होता है, और दूसरा कहे कि इतना प्रेमी आदमी मैंने नहीं देखा।
और दोनों सही थे, क्योंकि दोनों को पता नहीं था कि वह क्या कर रहा था।
वह एक को इनकार कर रहा था कि तू जा। वह एक को कह रहा था कि तू आ। उसको इनकार कर रहा था, जिसकी अभी जरूरत न थी, जिसका आना अभी व्यर्थ होगा, जो अभी आने के लिए परिपक्व नहीं था, शायद दूसरे के साथ चला आया होगा, शायद कुतूहलवश चला आया होगा, लेकिन कोई प्यास न थी।
तो गुरु उस पर तो मेहनत नहीं करेगा, जिसकी कोई प्यास न हो। वह तो ऐसा
ही होगा, जैसे कोई पत्थरों पर बीज फेंके। वे तो बीज भी नष्ट हो जाएंगे। वह उस पर ही मेहनत करेगा, जहां भूमि है, जहां हृदय राजी है--बीज को स्वीकार करने को, अंगीकार करने को।
तो गुरु कई बार नाराज हो सकता है, लेकिन गुरु नाराज कभी नहीं होता। और शिष्य तो वही है, जो गुरु की नाराजगी में भी करुणा देख पाए। अगर गुरु की नाराजगी में नाराजगी दिख जाए, तो तुम्हें शिष्यत्व का कुछ पता ही नहीं। तब तुम सीखे ही नहीं झुकना।
झुकने का मतलब ही यह होता है, जिस दिन शिष्य बने, उस दिन ये सब परिभाषाएं और व्याख्याएं तुमने छोड़ दीं। अब तुमने कहाः यह इस आदमी के साथ मैं राजी हूं चलने को। यह नरक ले जाए तो नरक, स्वर्ग ले जाए तो स्वर्ग; भटकाए तो उसके साथ भटकूंगा, पहुंचाए तो उसके साथ पहुंचूंगा।
इसलिए इसके साथ नहीं हूं कि यह पहुंचाएगा; इसलिए इसके साथ हूं... शिष्य
का मतलब ही यह है कि इसके साथ हूं, अब पहुंचना हो जाए, तो इसके साथ हूं, भटकना हो जाए तो इसके साथ हूं। असल में इसके साथ होना ही अब पहुंचना है। कोई विकल्प नहीं छोड़ा, तब ही कोई शिष्य बनता है।
शिष्य बनना एक महान क्रांति है; एक बड़ी भारी छलांग है।

छठवां प्रश्नः अतीत में जितने सदगुरु हुए, उनमें भगवान कृष्ण पूर्णावतार कहे गए हैं। मेरा विश्वास है कि आपकी अभिव्यक्ति इतनी ऊंची और श्रेष्ठ है कि आने वाला युग आपको कृष्ण से भी ऊपर रखेगा। क्या इस पर आप कुछ प्रकाश डालेंगे?

उस जगत में न तो कोई छोटा होता, न बड़ा। न तो कृष्ण बड़े हैं, न राम छोटे।
न कृष्ण बड़े हैं, न क्राइस्ट छोटे हैं। न कृष्ण बड़े हैं, न महावीर छोटे हैं। छोटे और बड़े का हिसाब, अज्ञान का हिसाब है, अंधेरे के मापदंड है, प्रकाश में सब मापदंड खो जाते हैं।
लेकिन भक्त के पास तो प्रेम की आंख होती है। इसलिए जो कृष्ण को प्रेम करता है, स्वभावतः, कृष्ण उसके लिए सबसे बड़े हैं। इसमें भी कुछ भूल नहीं है। यह भक्त की तरफ से बताई गई बात है। भक्त तो अंधेरे में खड़ा है। उसे तो सिर्फ एक दीये का दर्शन हुआ है, वह कृष्ण का दीया है। उसे महावीर के दीये का कोई पता नहीं। उसे तो एक ही दीये से पहचान हुई है, वह कृष्ण का दीया है। तो वह कहता है, यह दीया सबसे बड़ा है। कोई दीया इतना बड़ा नहीं है, सब दीये इससे छोटे हैं। वह असल में कह ही नहीं रहा है कि सब दीये इससे छोटे हैं, वह इतना ही कह रहा है कि मेरे हृदय को इस दीये ने ऐसा भर दिया है कि इससे बड़ा

कोई दीया नहीं हो सकता। जगह ही नहीं बची मेरे हृदय में, अब और बड़ा क्या हो सकता है?
मजनू पागल था लैला के पीछे। गांव के नरेश ने उसे बुलाया, क्योंकि दया आने लगी लोगों को। पागल की तरह दिन-रात लैला-लैला की रट लगाए रहता। नरेश ने अपने महल की बारह जवान सुंदरतम लड़कियां लाकर खड़ी कर दीं, और कहाः तू पागल है। लैला साधारण सी लड़की है। मैंने भी उसे देखा है। तू भरोसा मान। मेरी परख तुझसे ज्यादा है। जिंदगी भर औरतों के बीच रहा हूं। वह बिल्कुल साधारण काली-कलूटी लड़की है। तू नाहक पागल है। अगर वह इतनी सुंदर होती, जैसा तू समझ रहा है, तो मेरे राजमहल में होती, सड़क पर हो ही नहीं सकती थी। तू भरोसा मान। ये बारह लड़कियां तेरे सामने खड़ी हैं, ये सुंदरतम हैं। इस राज्य में इन से सुंदर लड़कियां तू न खोज पाएगा। कोई भी चुन ले।
मजनू हंसने लगा। उसने कहाः आपने लैला को देखा ही नहीं।
सम्राट ने कहाः तू पागल है? मैंने देखा। तेरी वजह से देखना पड़ा। तू महल के आस-पास चिल्लाए फिरता है लैला-लैला। यह कौन लैला है? एक आदमी पागल हुआ, देखना है। बुला कर देखा।
मजनू ने कहा कि नहीं, आप देख ही नहीं सकते। लैला को देखने के लिए मजनू
की आंख चाहिए। आपके पास मेरी आंख कहां? मेरी आंख से ही सिर्फ लैला देखी जा सकती है। उस जैसी सुंदर न तो कभी कोई स्त्री हुई है, न कभी होगी। और मैं आज की ही नहीं कहता, भविष्य की भी कहता हूं।
भक्त की आंख तो मजनू की आंख है। शिष्य की आंख तो मजनू की आंख है। वह एक
के प्रेम में पड़ गया। बात बिल्कुल सही है। कोई जरूरत भी नहीं है मजनू को कि लैला से सुंदर कोई स्त्री कहीं हो, ऐसा वह माने। कोई कारण भी नहीं है। श्रद्धा तो पूर्ण होती है। जब श्रद्धा पूर्ण होती है, तो सब खो जाता है, एक ही रह जाता है। श्रद्धा तो अनन्य होती है। दूसरे कोई बचते नहीं।
तो जिसने कृष्ण को प्रेम किया है, कृष्ण उसके लिए पूर्णावतार हैं। जिसने महावीर को प्रेम किया है, उसके लिए महावीर तीर्थंकर है, उसके लिए महावीर तीर्थंकर हैं, कृष्ण कुछ भी नहीं।
जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल रखा है। उनके शास्त्र कहते हैं, कृष्ण सीधे नरक गए हैं--सातवें नरक! क्योंकि इसी आदमी ने महाभारत का युद्ध करवाया। अर्जुन तो जैन मालूम पड़ता है। उसमें तो बड़ी सदबुद्धि पैदा हुई थी। इस कृष्ण ने उसको भटकाया और भरमाया। और उस बेचारे ने लाख उपाय किया कि निकल जाए पंजे से। हजार उसने संदेह उठाए। बाकी यह आदमी भी एक था कि जिसने सब तरफ से घेर-घार कर उसको फंसा दिया। युद्ध करवा दिया। भयंकर उत्पात हुआ, हिंसा हुई। शायद महाभारत जैसा बड़ा युद्ध फिर कभी हुआ ही नहीं। भारत की तो रीढ़ ही टूट गई उस युद्ध में। उसके बाद भारत फिर कभी खड़ा ही नहीं हो सका। वह सारा जिम्मा कृष्ण का है।
तो जैनों ने बड़ी हिम्मत की, उन्होंने सातवें नरक में डाल दिया। और आदमी बलशाली था, यह तो मानना ही पड़ेगा। नहीं तो अर्जुन को भी कैसे भटका देता? और आदमी बलशाली है, हजारों लोग उसको प्रेम करते हैं, यह भी मानना पड़ेगा। तो जैनों ने इतनी उदारता बरती है कि अगली सृष्टि में, जब यह सृष्टि पूर्ण नष्ट हो जाएगी, तब तक तो कृष्ण को नरक में रहना ही पड़ेगा। फिर अगली सृष्टि में वे पहले तीर्थंकर होंगे। मगर तब तक तो नरक की महाअग्नि में जलना पड़ेगा।
अब तुम सोचो। किसी को कृष्ण पूर्ण अवतार हैं, उनके सामने सब फीके हैं,
सब अधूरे हैं। और किसी के लिए कृष्ण नरक में डालने योग्य है। और मैं किसी को, इन दोनों में से किसी को सही-गलत नहीं कह रहा हूं। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं, एक प्रेमी की नजर है। एक मित्र की नजर है, एक शत्रु की नजर है। ये दोनों ही अपनी नजर के संबंध में कुछ कह रहे हैं, कृष्ण के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं।
अगर तुम्हें मुझसे प्रेम हो गया, तो जो तुम कह रहे हो, मेरे संबंध में नहीं है, वह तुम अपने प्रेम के संबंध में कह रहे हो; अगर तुम्हें मुझसे घृणा हो गई, तो जो तुम कह रहे हो, वह मेरे संबंध में नहीं है, वह तुम अपनी घृणा के संबंध में कह रहे हो।

आदमी सदा अपने संबंध में ही कहता है। किसी और के संबंध में कहने का उपाय नहीं है। अगर तुम्हें मेरी अभिव्यक्ति बहुत प्रीतिकर मालूम पड़ती है, तो तुम अपनी संबंध में कुछ कह रहे हो कि यह अभिव्यक्ति तुम्हें जमती है। यह तुम्हारे हृदय को छूती है। यह तुम्हारे हृदय में कोई तार छेड़ देती है। बस, इतनी बात है। उस लोक में कोई आगे नहीं, कोई पीछे नहीं, कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, मोहम्मद, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट--
जैसे ही अंधेरे का जग समाप्त हुआ, सभी एक जैसे हो जाते। सब रंग, सब भेद,
सब भिन्नताएं अंधेरे में है। जागे हुए पुरुषों में कोई भेद नहीं है। लेकिन तुम सभी जागे पुरुषों को प्रेम तो न कर पाओगे। सभी जागे पुरुषों को प्रेम करना हितकर भी नहीं होगा; क्योंकि जितने तुम्हारे प्रेम-पात्र होंगे, उतना ही तुम्हारा हृदय बंट जाएगा। और अगर हृदय बंट जाए, तो श्रद्धा भी बंट जाएगी। और बंटी हुई श्रद्धा से तुम कभी सत्य तक न पहुंच सकोगे।
इसलिए, मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम, गांधी जैसा भजन करवाते हैं--अल्ला ईश्वर तेरा नाम! नहीं कहता कि वह करो। तुमको तो नाम अपना चुन लेना है। या तो अल्लाह या ईश्वर। क्योंकि दोनों नाम तुम लेते रहोगे, तुम्हारा हृदय सदा ही बंटा रहेगा। वह कभी पूरा न हो पाएगा।
और गांधी जी अपनी ही बात को पूरा मान न सके, मरते वक्त जब गोली लगी, तो "राम" निकला, "अल्लाह" न निकला। वह बात-चीत थी। वह राजनीति होगी, धर्म नहीं था। जब गोली लगी, तब "अल्लाह" नहीं निकला, तब तो राम निकला, "हे राम" वह बिल्कुल ठीक है। वह बिल्कुल गैर-राजनीतिक आवाज है। मरते वक्त कोई राजनीतिज्ञ हो सकता है? मरते वक्त तो जो था हृदय में, वह निकला, जिंदगी में तो सब लीपा-पोती थी।
मैं तुमसे नहीं कहता, चुन लो। मैं तुम से नहीं कहता कि तुम महावीर को
भी पूजो, बुद्ध को भी पूजो, कृष्ण को भी पूजो--नहीं। पूजा तो अनन्य होती है। तुम चुन लो। क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कि तुम किसको चुनते हो। फर्क इससे पड़ता है, तुम पूजा करते हो या नहीं, बस!
पूजा पूरी हो। तुम पत्थर चुन लो, वृक्ष के नीचे रखा, दुनिया कहे पत्थर है, तुम फिकर मत करो। तुम्हारा अगर हृदय वहां लग गया, और पत्थर से तुम्हारा रास जम गया और तुम नाचने लगे पत्थर के पास, तो वहां भगवान है तुम्हारे लिए। तुम उसी पत्थर से पहुंच जाओगे। तुम फिर किसी की मत सुनो। तुम फिर अंधे होकर पत्थर के पागल हो जाओ, तुम नाचो, तुम पूजा करो। पत्थर ही तुम्हारी अर्चना और तुम्हारा आराध्य बन जाए। तुम वहीं से पहुंच जाओगे। क्योंकि कोई पात्र से नहीं पहुंचता, प्रेम-पात्र से; प्रेम से पहुंचता है। श्रद्धा- पात्र से नहीं पहुंचता है, श्रद्धा से पहुंचता है।
तुम कृष्ण, राम, बुद्ध से नहीं पहुंचते, तुम्हारी पूजा के भाव से पहुंचते हो, वह पूजा का भाव जहां तुम्हें आ गया हो, फिर तुम बिल्कुल फिकर मत करना, फिर तुम कहना कि कृष्ण पूर्ण अवतार हैं, और इनसे ऊपर कोई भी नहीं। कोई चिंता मत करना। यह अंधेरे की भाषा है। लेकिन तुम अंधेरे में हो। अभी तुम प्रकाश की भाषा बोलोगे, तो भाषा ही गलत होगी, झूठी होगी। अंधेरे को पार कर लो कृष्ण के सहारे। जिस दिन तुम प्रकाश में पहुंचोगे, उस दिन तुम हंसोगे कि मैं भी कैसा पागल था कि किसी को छोटा कहा, किसी को बड़ा कहा; किसी को आगे कहा, किसी को पीछे कहा। यहां प्रकाश के लोग में तो सब समान हो गए हैं।

सातवां प्रश्नः मैं खुद तो निःसंदेह मार्ग पर चल पड़ा हूं और मार्ग ही मंजिल होता जा रहा है। लेकिन जब प्रवचन में बैठता हूं, तब जो कुछ आप कहते हैं, उसे दूसरों को बताने के लिए मेरा मन संगृहीत किए जाता है। दूसरों के सामनेः विशेषकर प्रियजनों के सामने, उसे प्रतिपादित करने की इतनी आतुरता मुझमें क्यों है?

स्वाभाविक है। जिन्हें हम प्रेम करते हैं, उन्हें हम वह दे देना चाहते हैं जो हमें मिला है, जिसमें हमने आनंद जाना है जिसमें हमें सत्य की

भनक मिली है। जो स्वाद हमने चखा है वह अपने प्रियजनों को चखा देना चाहते।
हम उन्हें साझीदार बनाना चाहते हैं। बिल्कुल स्वाभाविक है।
बांटो! जो तुम्हें लग रहा है ठीक, उसे तुम कहो। पता नहीं किसी को, और को
भी ठीक लग जाए।
एक ही बात ख्याल रखना। बांटने की आतुरता तो ठीक है, आग्रह ठीक नहीं है। ऐसा किसी की छाती पर मत बैठ जाना कि हमने माना, तुम्हें भी मानना पड़ेगा; क्योंकि तू मेरी पत्नी है, अगर तू मेरी नहीं मानेगी तो बस, ठीक नहीं है, या तू मेरा पति है। आग्रह मत करना, निराग्रह! वह माने या न माने इसकी पूरी स्वतंत्रता देना।
लेकिन तुम्हारे हृदय में भाव उठता है, उसे भी दबाना मत। तुम्हें लगता
है सुख, रस प्रतीत होता है, बांटो, उलीचो! जितना उलीच सको, उतना अच्छा है। इससे तुम्हारे हृदय का रस और बढ़ेगा। जितना तुम उलीचोगे, बांटोगे, जितनी आंखों में तुम्हारा रस झलकने लगेगा, उतना तुम्हारा रस भी बढ़ेगा। बस, एक ही बात ख्याल रखना, किसी पर थोपना मत। आग्रह मत करना।
और मजे की बात यह है, अगर तुम आग्रह करो, तो तू दूसरा दूर हटता है। अगर तुम निराग्रह भाव से कहो, दूसरा पास आता है। अगर दूसरा यह बात देख ले कि तुम्हारी कोई आकांक्षा किसी को कनवर्ट करने की, किसी को अपने मार्ग पर लाने की नहीं है, तो दूसरे को तुम्हारे मार्ग पर आ जाना आसान हो जाता है। और जैसे ही तुम दूसरे को अपने मार्ग पर लाने की चेष्टा में रत हो जाते हो, वैसे ही दूसरे में एक प्रतिरोध, एक रेसिस्टेंस खड़ा होता है। उसका अहंकार बचाव करने लगता है।
बांटो जरूर, लेकिन कोई अगर न लेना चाहे, तो जबरदस्ती किसी के कंठ मत उतारना।
जबरदस्ती दिया गया अमृत भी जहर हो जाता है। प्रेम, सहजता से, जितना बन सके! इसमें कुछ बुरा मत मानना कि तुम्हारे मन में यह क्यों ऐसी वासना उठती है? यह वासना नहीं, यही करुणा है। वासना का अर्थ हैः जब तक तुम अपने लिए पाना चाहते हो, तब तक वासना। जब तुम दूसरे को बांटना चाहते हो तब करुणा। साधक के जीवन में करुणा का क्षण भी आएगा। मेरे पास जब तुम पहली दफा आना शुरू होते हो, तब तुम वासना से ही आना चाहते हो, तुम अपने लिए पाना चाहते हो। तुम्हारी खोज स्व-केंद्रित है। लेकिन जैसे-जैसे तुम्हें प्रतीति होगी, जैसे-जैसे तुम्हारा अनुभव बढ़ेगा, जैसे-जैसे तुम थोड़े जागोगे होश सधेगा, वैसे-वैसे तुम्हें लगेगा कि जो तुम्हें मिला है, इसे बांट देना है। यह करुणा का जन्म है।
वासना की ऊर्जा करुणा बन जाती है। इसलिए बांटो! बेफिकरी से बांटो, निश्चिंत होकर बांटो! बस, बांटते वक्त एक ही ख्याल सदा रखना, किसी पर बोझ न पड़े।

आठवां प्रश्नः आपने पहले कहा कि मेरा सारा बोलना मात्र बहाना है। फिर आपका होना क्या है?

अगर वह भी मुझे बोलना पड़े तो वह भी बहाना हो जाएगा। होने को जानना हो,
तो बिना बोले ही जानना पड़ेगा। आंख हो, तो मुझे देखो। हृदय हो तो मुझे अनुभव करो।
होने का तो एक ही उपाय है कि मेरे होने के साथ सत्संग करो। तब मैं क्या कहता हूं, इसकी फिकर छोड़ो। मैं क्या हूं, उस मौन क्षण में, दो शब्दों के बीच, दो विचारों के बीच जो अंतराल है, दो पंक्तियों के बीच जो खाली जगह है, वहां उतरो।
अगर तुम वह भी मुझसे पूछते हो कि आप का होना क्या है, तो मैं फिर बोलूंगा। उस बोलने में तो बोलना ही होगा, वह बहाना हो जाएगा।
मैं बोलने को बहाना कहता हूं इस कारण, क्योंकि अगर मैं यहां चुप बैठ जाऊं, तो तुम में से दो-चार ही यहां मेरे पास बैठे रहेंगे, बाकी जा चुकेंगे। दो-चार ही यहां बैठे रहेंगे, जो मौन सत्संग करने में समर्थ हो गए हैं। वे तो बड़े प्रफुल्लित होंगे। वे तो कहेंगे, यह बोलने की बाधा थी बीच

में, यह भी हट गई। ये शब्द बीच में पर्त बनाते थे, ये भी जा चुके। अब तो सीधा हृदय और हृदय का खालिस मिलन है। अब तो सीधा-सीधा साक्षात्कार हैं।
वे तो बड़े आनंदित होंगे, वे तो बड़े प्रफुल्लित होंगे, लेकिन वे दो-चार होंगे, बाकी जा चुकेंगे। बाकी से मैं बोल रहा हूं। क्योंकि वे जो दो-चार हैं, वे तो मेरे बोलते समय भी मेरे मौन को सुन सकते हैं। वे तो मेरे बोलते समय भी, बोलने को जानेंगे कि ऊपर सागर की लहरें हैं, और भीतर के सागर की शांति उन्हें सुनाई पड़ती रहेगी। उनको तो कुछ हर्ज नहीं हो रहा है, लेकिन दूसरे जो मेरे मौन को न सुन सकेंगे, न समझ सकेंगे, उनके लिए बहाना है कि उनके लिए मैं बोलता रहूं। और धीरे-धीरे-धीरे वे भी राजी होने लगेंगे। बोल-बोल कर मैं उन्हें राजी कर लूंगा कि वे मेरे होने को, शून्य को, मौन को समझने में समर्थ हो जाएं।
जिस दिन तुम सब होने को समझने में समर्थ हो जाओगे, मैं बोलना बंद कर दूंगा। कोई जरूरत न रह जाएगी। क्योंकि फिर मुझे जो कहना है, वह सीधा ही कह दिया जाएगा। शब्द के माध्यम का कोई उपाय न रहेगा। लेकिन फिर बहुत जो अभी नहीं, उस होने में डूब सकते हैं, वे वंचित रह जाएंगे।
ऐसा हुआ, बुद्ध की मृत्यु हुई। तो जब तक बुद्ध जीवित थे, किसी ने फिकर
भी न की थी कि उनके वचनों का संग्रह हो जाए। बुद्ध जीवित थे, किसी को याद भी न आया। फिर अचानक होश हुआ, जैसे एक सपना टूटा। इतने बहुमूल्य वचन खो जाएंगे ऐसे ही। तो संग्रह करो।
तो जो जाग चुके थे बुद्ध के समय में बुद्ध के बहुत शिष्य, जो बुद्धत्व
को पा चुके थे, उनसे प्रार्थना की गई। उन्होंने कहाः हमने कुछ सुना ही नहीं कि बुद्ध ने क्या कहा। यह बकवास बंद करो। बुद्ध कभी बोले ही नहीं। इनका तो उनके मौन से संबंध जुड़ गया था। तो उन्होंने कहाः हमने तो सुना ही नहीं, तुम भी क्या बात कर रहे हो? बुद्ध और बोले? कभी नहीं! बुद्धत्व के बाद चालीस साल चुप रहे, हमने तो चुप्पी सुनी।
बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। जिन पर भरोसा किया जा सकता था, जो जाग गए थे, जिनकी वाणी का मूल्य होता, जिनकी रिपोर्ट सही होने की संभावना थी, वे कहते हैं हमने सुना ही नहीं, कहां की बात कर रहे हो? सपने में हो?
उनमें जो परमज्ञानी था एक महाकाश्यप, उसने तो कहाः बुद्ध कभी हुए ही नहीं। किसकी बात उठाते हो? कोई सपना देखा होगा!
यह तो द्वार बंद हो गया। जो सर्वाधिक कीमती व्यक्ति था महाकाश्यप, जिसको बुद्ध ने कहा था--जो मैं शब्द से दे सकता हूं, वह मैंने दूसरों को दे दिया महाकाश्यप, और जो शब्द से नहीं दिया जा सकता, वह मैं तुझे देता हूं। उस आदमी ने तो कह दिया, बुद्ध कभी हुए ही नहीं। कौन बोला? किसने सुना? कहां की बातें करते हो?
तब आनंद का सहारा लेना पड़ा। आनंद, बुद्ध के समय में ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। वह अज्ञानी ही रहा। वह अंधेरे में ही रहा, उसने शून्य को नहीं सुना, उसने शब्द को सुना। लेकिन उसके पास पूरा संग्रह था। उसकी स्मृति ने सब सम्हाल कर रखा था। उसने सब बोल दिया, सब संगृहीत कर लिया गया।
अब सवाल यह है कि अगर आनंद भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया होता बुद्ध के जीते, तो बुद्ध के संबंध में तुम्हें कुछ पता भी नहीं हो सकता था। रेखा भी न छूट जाती क्योंकि महाकाश्यप तो यह भी मानने को राजी नहीं कि यह आदमी कभी हुआ!
अज्ञानी आनंद की ही अनुकंपा है कि बुद्ध के वचन संगृहीत हैं।
तो मेरे मौन को जो समझ सकते हैं, वे तो एक दिन कह देंगे कि यह आदमी कभी हुआ? कहां की बात कर रहे हो? यह कुर्सी सदा से खाली थी। सपना देखा है। लेकिन जो नहीं मेरे मौन को समझ पा रहे हैं, मेरे शब्द को ही समझ सकते हैं, उनका भी उपयोग है। शायद वे ही उस शब्द की नौका को दूसरों तक पहुंचा देंगे। शब्द की नौका का प्रयोजन तो शून्य के तट पर लगना है। लक्ष्य तो शून्य है। लेकिन लक्ष्य तो मिलेगा, तब मिलेगा। आज तो नौका भी मिल जाए, तो काफी है।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
पांचवां प्रवचन

सबदै ही सब उपजै

ओशो, संत श्रेष्ठ दादू की कुछ साखियां हैं--

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाए।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।
दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।।
दादू सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझै प्राण।
सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण।।
पहली किया आप थैं उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थैं उपजैं, पंच तत्त आकार।।
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिए जगाइ।।
सबद सरोवर सूभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।।

ओशो, हमें इनका मर्म समझाने की अनुकंपा करें।

नानक ने कहा हैः एक ओंकार सतनाम।
सत्य का एक ही नाम है, वह है ओंकार। ओंकार में भारत की सारी खोज समा जाती है। इस एक छोटे से शब्द में भारत की अनंत-अनंत काल की खोज का सारा रस समाया हुआ है। जिसने इस एक शब्द को समझ लिया, उसने सब समझ लिया। जो इस एक शब्द से वंचित रह गया, वह कुछ और समझ ले, उस समझने का कोई भी मूल्य नहीं। इसलिए इस एक शब्द को बहुत ध्यान से समझने की कोशिश करना।
पहले कुछ प्राथमिक बातें।
पहली तो बातः ओंकार को शब्द कहना ठीक नहीं, मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए शब्द कहते हैं; लेकिन ओंकार शब्द नहीं है। जैसे और सब शब्द हैं, वैसा ओंकार शब्द नहीं है। क्योंकि, सभी शब्दों का कुछ अर्थ है, ओंकार का कोई भी अर्थ नहीं है, ओंकार अर्थातीत है। शब्द में तो अर्थ होता है; ओंकार में कोई अर्थ नहीं है, ओंकार शुद्ध ध्वनि है। लेकिन उसे ध्वनि कहना भी मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए कहना पड़ता है।
बहुत ध्वनियां हैं जगत में, लेकिन सभी ध्वनियां दो वस्तुओं के आघात
से पैदा होती हैं। उनके लिए पारिभाषिक शब्द हैः आहत-नाद। दो हाथ को टकराओ, ताली बजती है। दो पत्थरों को टकराओ, आवाज होती है। ओंकार अनाहत नाद हैं। वह दो वस्तुओं के टकराव से पैदा नहीं होता। वह एक हाथ की ताली है। शब्द नहीं कह सकते, क्योंकि अर्थातीत है; शब्द में तो अर्थ होना चाहिए। ध्वनि नहीं कह सकते, क्योंकि सभी ध्वनियां आघात से पैदा होती हैं। ओंकार अनाहत है। वह आघात से पैदा नहीं होता।
तीसरी बात, तुम जिस ओंकार का पाठ करते हो, जिस ओंकार की रटन लगाते हो, जिस ओंकार का जाप करते हो, नानक या दादू उस ओंकार की बात नहीं कर रहे हैं। क्योंकि तुम तो जिसकी रटन लगाओगे, वह भी आहत नाद हो जाएगा, वह भी कंठ की टकराहट होगी। तो ओंकार का जाप कोई कर नहीं सकता। ओंकार के जाप के लिए तैयार हो जाओ तुम, एक दिन जाप उतरता है। इसलिए ओंकार को जाप नहीं कह सकते हैं।
ज्ञानियों ने उसे अजपा कहा है। उसका जाप नहीं किया जा सकता। क्योंकि जाप तो तुम कर सकते हो--ओंकार, ओंकार, ओंकार; लेकिन वह तो तुम्हारी कंठ की ही टकराहट है। वह तो तुम्हारा ही पैदा हुआ ओंकार है। वह तो तुमसे पैदा हुआ, तुम्हारी संतान है। और जिस ओंकार की चर्चा हो रही है, वह तो वह ओंकार है, जिसकी हम सब संतान हैं। तुम अपने पिता के पिता नहीं बन सकते। जब तुम ओंकार

को जपते हो, तब तुम पिता को पैदा करने की कोशिश कर रहे हो; तब तुम पिता के पिता बनने की चेष्टा में लगे हो।
नहीं, साधक ओंकार को जप नहीं सकता; जपने के द्वारा केवल अपने भीतर उस व्यवस्था को निर्मित करता है जिसमें अजपा उतर आए। सारी साधनाएं सिर्फ निमंत्रण हैं; चेष्टाएं हैं तुम्हें तैयार करने की, ताकि तुम्हारी तैयारी में वह संबंध, वह साज बैठ जाए जहां अनाहत बजने लगता है।
ओंकार जपा नहीं जाता; ओंकार सुना जाता है। ओंकार जपा नहीं जाता, ओंकार हुआ जाता है। जब ओंकार उतरता है तब तुम नहीं बचते, ओंकार ही रहता है। ओंकार महामृत्यु है, इसलिए वह महामंत्र है। बाकी सब मंत्र मंत्र हैं; ओंकार महामंत्र है।
एक बहुत आश्चर्य की बात है कि भारत में तीन बड़े धर्म पैदा हुए--हिंदू, जैन, बौद्ध। तीनों में बड़ा विभेद है, सिद्धांतों की बड़ी टकराहट है। तीनों की मान्यताएं ऐसी अलग-अलग हैं कि उनमें कोई तालमेल बिठालना संभव नहीं है। कोई लाख समन्वय बिठाए, इन तीन में समन्वय बैठ नहीं सकता। वे तो त्रिकोण के तीन कोण हैं; उनको तुम पास नहीं ला सकते। लेकिन एक मत पर वे सब राजी हैं, वह है ओंकार। बौद्ध, जैन, हिंदू इस एक अनूठे शब्द पर राजी हैं। इस संबंध में कोई विरोध नहीं है। इस संबंध में एकदम मतैक्य है।
तो, ऐसा लगता है कि ईश्वर भी गौण है। उस पर भी विवाद हो सकता है कि है
या नहीं; आत्मा भी गौण है--उस पर भी चर्चा चलने की सुविधा है कि है या नहीं। जैन ईश्वर को नहीं मानते। बौद्ध तो आत्मा को भी नहीं मानते। लेकिन ओंकार को तीनों ही मानते हैं। ओंकार लगता है, आत्मा और परमात्मा से भी बड़ा है।
निर्विवाद वही एक मालूम होता है।
और ऐसा केवल भारत के धर्मों के संबंध में ही सच नहीं है, भारत के बाहर पैदा हुए धर्म भी ओंकार को अनजाने रूप से मानते हैं। उनकी व्याख्या में थोड़ी भूल हो गई है। व्याख्या में भूल का कारण है।
जब ओंकार की ध्वनि सुनी जाती है तो अगर तुम ठीक-ठीक सजग न हुए, अगर तुम बिल्कुल ही न मिट गए और तुम्हारे मन की कहीं किसी कोने-कातर में कोई छाया छिपी रही तो तुम शुद्ध ध्वनि को न पकड़ पाओगे। तुम्हारा मन ध्वनि को उतना तोड़ देगा।
भारत के तो सभी धर्मों ने मन को मिटाने की चेष्टा की है। इसलिए जब मन मिट जाता है तो ओंकार की शुद्ध ध्वनि सुनाई पड़ती है। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुआ--ज्यू, इस्लाम, ईसाइयत--उन तीनों ने मन को मिटाने की चेष्टा नहीं की है, बल्कि मन को शुद्ध करने की चेष्टा की है। शुद्ध होकर भी मन तो बचता है, पूरा नहीं मिट जाता। बिल्कुल शुद्ध हो जाता है, पारदर्शी हो जाता है, हवा की तरह हो जाता है; तुम छू भी नहीं सकते; पता भी नहीं चलता कि है, लेकिन होता है।
मन के न हो जाने पर जो ओंकार सुनाई पड़ा था, तब तो हमने ओंकार को सीधा पकड़ लिया। मन के होने पर; शुद्ध मन के होने पर जो सुनाई पड़ा तो रूप थोड़ा बदल गया। मन ने थोड़ी सी झंझट थोड़ी सी विकृति पैदा की। इसलिए मुसलमान, यहूदी और ईसाइयत अपनी प्रार्थनाओं के अंत से जिस शब्द में पूर्ण करते हैं प्रार्थना को--ओमीन या अमीन--वह ओम का ही रूप है। और उनके पास भी उसका कोई उत्तर नहीं है कि अमीन का क्या अर्थ होता है। वह ओम का ही रूप है--ओम, ओमन, अमीन।
अंग्रेजी में तीन शब्द है--ओमनीप्रेजेंट, ओमनीपोटेंट, ओमनीसाइंट। अंग्रेजी भाषाविद बड़ी कठिनाई में पड़ते हैं, क्योंकि वे इन शब्दों का मूल नहीं खोज पाते। ये आते कहां से हैं? ये शब्द बड़े अनूठे हैं। ओमनीसाइंट का अर्थ होता हैः जिसने सब देख लिया। लेकिन ओमीन कहां से आता है? वह ओम का ही रूप है। जिसने ओम देख लिया, उसने सब देख लिया।
ओमनीप्रेजेंट का अर्थ हैः जो सब जगह मौजूद है। लेकिन वह ओमन कहां से आता है? वह ओम का ही रूप है। ओमनीप्रेजेंट का अर्थ हैः जो ओम के साथ एक हो गया, वह सब जगह मौजूद हो गया। तुम एक जगह हो। जिस दिन तुम ओम के साथ एकरूप हो जाओगे, तुम सब जगह हो जाओगे। ऐसी कोई जगह न होगी जगत में जहां तुम न होओगे। तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाओगे।

ओमनीपोटेंट का अर्थ होता हैः जिसके पास सारी शक्ति है। लेकिन मतलब इतना ही होता है कि जिसके पास ओम की शक्ति है। जिसने ओम को पा लिया, सब पा लिया। जो ओम के साथ एक हो गया, वह सब हो गया। जो ओम में डूब गया, वह सर्वशक्तिशाली हो गया।
यह ओम बड़ा अनूठा शब्द है!
भारत ने जो भी खोजा है अंतर-जगत में, वह इस एक छोटे से सूत्र में समाहित है। जैसे आइंस्टीन की सापेक्षतावाद की सारी खोजना एक छोटे से सिद्धांत में समा जाती है, ऐसे ही ओम के छोटे से सूत्र में, छोटे से सिद्धांत में भारत की सारी अंतर-खोज समा गई है। बाहर की खोज में तो अभी बहुत कुछ बाकी है। इसलिए आइंस्टीन जल्दी ही तिथिबाह्य, आउट ऑफ डेट हो जाएंगे। कोई दूसरा उनकी जगह ले लेगा; ले ही ली है जगह। लेकिन ओम के आगे भीतर की कोई खोज बाकी नहीं बची। वह यात्रा पूरी हो गई है। वहां हम मंजिल पर पहुंच गए हैं। इसलिए ओम को कभी भी विस्थापित नहीं किया जा सकता। वह सिंहासन पर रहेगा ही। तुम उससे दूर भटक सकते हो। तुम उसे भूल सकते हो। लेकिन उसे तुम सिंहासन से नहीं उतार सकते। जब भी तुम घर आओगे, तुम ओम को सिंहासन पर विराजमान पाओगे।
यह जो ओम है, इसके संबंध में कुछ और बात ख्याल ले लें।
विज्ञान कहता है कि सारा जगत विद्युत-तरंगों से बना है--पत्थर भी, सोना भी। सारा अस्तित्व, सारी वस्तुएं, सारा पदार्थ-पदार्थ नहीं है-- विद्युत-तरंगों का घनीभूत रूप है।
हमने कुछ ओर जाना है। हमने यह जाना है इधर पूर्व में; भीतर प्रवेश करते-करते कि सारा जगत ध्वनियों का ही संगृहीभूत रूप है और विद्युत ध्वनि का एक प्रकार है। वैज्ञानिक कहते हैं, ध्वनि विद्युत का एक प्रकार है और सारा जगत विद्युत की तरंगों का जाल है। हम कहते हैं, सारा जगत ध्वनि का जाल है और विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। तुमने कहानियां सुनी होंगी कि तानसेन ने दीपक राग से दीपक जला दिए। इसकी संभावना है। ध्वनि का आघात अग्नि को पैदा कर सकता है। इसकी संभावना है। इस पर बहुत प्रयोग चलते हैं। और इस बात को इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि आघात से ही तो विद्युत पैदा होती है। पहाड़ से जल गिरता है, उसकी चोट से विद्युत पैदा होती है। दो चकमक पत्थरों को तुम टकरा दो, आग पैदा हो जाती है। तुम दो हाथों को रगड़ो, हाथ गरम हो जाते हैं। रगड़ से गरमी पैदा होती है, विद्युत पैदा होती है।
दो ध्वनियों की रगड़ से भी विद्युत पैदा होती है, लेकिन बड़ी सूक्ष्म कला है। शायद शास्त्र भूल गया हो, हमें याद न रहा हो, कैसे हम दो ध्वनियों को टकराएं। लेकिन कभी किसी ने तानसेन ने या किसी ने भी, दो ध्वनियों को टकराना सीख लिया हो तो दीये जल सकते हैं। जब दो पत्थरों के टकराने से आग पैदा हो सकती है तो दो ध्वनियों के टकराने से क्यों पैदा नहीं हो सकती? टकराहट उष्मा पैदा करती है, गरमी पैदा करती है।
और अब तो विज्ञान भी धीरे-धीरे शिथिल हुआ है। उसकी पुरानी जिद नहीं रही, पुरानी अकड़ नहीं रही। रस्सी तो जल गई है। पर जली हुई रस्सी में भी पुरानी अकड़ तो रह ही जाती है, बस उतनी ही अकड़ विज्ञान में बची है।
हजारों प्रयोग चल रहे हैं सारी पृथ्वी पर, जो विज्ञान को जड़ों से उखाड़े डाल रहे हैं। ध्वनि पर बहुत प्रयोग हुए हैं।
इंग्लैंड में एक बहुत प्रसिद्ध प्रयोगशाला है--डिलाबार। वहां उन्होंने बड़े प्रयोग किए हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में बे-मौसम में वृक्षों में फल आ जाते हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में वृक्ष दुगनी गति से बढ़ते हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में मां के गर्भ का बच्चा बहुत तीव्रता से परिपुष्ट होने लगता है। जो पौधा बिना संगीत के साल भर में बड़ा होता है, वह दो महीने में उतना बड़ा हो जाता है संगीत के साथ।
पौधे सुनते हैं।
कनाडा में एक छोटा सा प्रयोग किया गया। जहां रविशंकर पंद्रह दिन तक सितार बजाता था। उसके दोनों तरफ बीज बोए गए थे। जो पौधे पैदा हुए वे सब रविशंकर की तरफ झुके थे, दोनों तरफ से, जैसे की बहरा आदमी कान झुका लेता है। वे सब पौधे झुके हुए पैदा हुए। एक भी पौधा नहीं था जो संगीत सुनने को

उत्सुक न हो। भवन के बाहर दूसरे बीज बोए गए थे, उसी दिन जिस दिन भवन के भीतर के बीज बोए गए थे। वे सब सीधे पैदा हुए थे। क्या हुआ? पौधे सुनने को आतुर थे। और बाहर जो पौधे थे वे आधे ही बढ़े। पंद्रह दिन के प्रयोग में भीतर के पौधे दुगने बढ़ गए। उनकी शान और थी।
ध्वनि में भोजन है, जीवन है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो संगीत से आंदोलित न होता हो, जिसके पैर न थिरकने लगते हों, जिसके हाथ ताल न देने लगते हों, जिसके भीतर कोई धुन न बजने लगती हो।
और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि धातुएं भी--पौधे तो ठीक, धातुएं भी-- संगीत से प्रभावित होती हैं। अगर कोई धातु को संगीत सुनाया जाए, तो उसमें जंग लगना मुश्किल हो जाता है। इस बात की बहुत संभावना है कि अशोक की लाट जो दिल्ली में खड़ी है--जिसको वैज्ञानिक नहीं समझ पाए अब तक कि उस पर जंग क्यों नहीं लगती, क्योंकि सदियों से खड़ी है, वर्षा, धूप, सब मौसम आते हैं, जाते हैं, अभी तक वैज्ञानिक ऐसा कोई स्टेनलेस स्टील पैदा नहीं कर सके जो सदियों तक धूप में, वर्षा में बाहर पड़ा रहे और जिस पर जंग का एक दाग न आया हो। मेरी अपनी समझ यह है कि बहुत गहन संगीत में उस लाट को तैयार किया गया है, बड़े मंत्रोच्चारों के बीच उस लाट को तैयार किया गया है। मंत्र उसे अब भी सुरक्षित किए हैं। वे अब भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।
इजिप्त के पिरामिड हैं। वे पिरामिड इतने बड़े पत्थरों से बने हैं कि हमारे पास अभी जो क्रेनें हैं, विकसिततम, वे भी उन पत्थरों को उठाने में समर्थ नहीं हैं। और आज से पांच हजार या चार हजार साल पहले उन पत्थरों को ले जाने का कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। और जहां वे पिरामिड बने हैं, वहां पास पत्थरों का कोई खदान नहीं है; सैकड़ों मील दूर खदानें हैं। रेगिस्तान में खड़े हैं पिरामिड। तो पत्थरों को सैकड़ों मील दूर से लाया गया है। उन दिनों क्रेनों का कोई सवाल नहीं उठता, क्योंकि कोई प्रमाण नहीं मिलता कि एक भी क्रेन थी या कोई यंत्र था। निहत्थे आदमियों ने उनको ढोया है। यह बिल्कुल असंभव है। यह हो कैसे सकता है? लेकिन ध्वनि का शास्त्र कहता है कि एक विशेष ध्वनि की अवस्था में वस्तुएं निर्भार हो जाती हैं।
तुमने भी शायद कभी गौर किया होगा कि जब तुम नाचते हो, प्रसन्न होते हो, गीत तुम्हारे हृदय में गूंजता है तो तुम्हें बोझ नहीं मालूम पड़ता, तुम एकदम हलके हो जाते हो। जब पैर जमे होते हैं और नाच पैदा नहीं होता, जब हृदय बंद होता है और गीत नहीं फूटता और कहीं चारों तरफ कोई नृत्य की पुकार नहीं आती, तब तुम अपने को पाते हो जैसे पत्थर हो गए और वजनी हो गए।
तुमने ख्याल किया होगा, साधारण मजदूर आज भी जब किसी बड़े पत्थर को उठाते हैं तो बड़ा हो-हल्ला मचाते हैं। लेकिन उस हो-हल्ले में एक संगीत होता है--हैय्या हे! यह ध्वनि अगर बार-बार दोहराई जाए तो मजदूर बड़े से बड़े पत्थर को उठा लाता है।
तुमने नाविकों को मझधार में नदी को पार करते देखा हो पूर की, तो हैय्या-हे। जब नदी बहुत टक्कर देने लगती है और आदमी की ताकत कमजोर पड़ने लगती है, तब स्वर को पुकारा जाता है। स्वर तत्क्षण बचा लेता है। बड़ी ताकत दौड़ जाती है भीतर।
स्वर में छिपी हुई ऊर्जा है। ओंकार का अर्थ हैः मूल स्वर, जिससे फिर
सब स्वर पैदा हुए, मूल-स्रोत। आज उससे हमारे संबंध छूट गए, नाता नहीं रहा।
हम भूल ही गए उन शिखरों को जो छू लिए गए थे।
हम सोचते हैं, दुनिया जैसे पहली बार सभ्य हो रही है। भ्रांति है।
दुनिया बहुत बार सभ्य हो चुकी है। और दुनिया ने बहुत बार बड़ी उत्तुंग ऊंचाइयां पा ली हैं। और फिर उत्तुंग ऊंचाइयां खो जाती हैं।
अब आज प्रार्थना कोरा शब्द है, पूजा एक औपचारिकता है।
मैं एक घर में मेहमान था। इकलौता बेटा घर का देर तक सोकर नहीं उठा था,
तो मां उससे कह रही थी कि बेटा उठो, तुम ऋषि-मुनियों के देश में पैदा हुए हो, ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। उस बेटे ने बिस्तर में ही पड़े-पड़े करवट लेकर कहा कि मां, तुमको पता नहीं, ऋषि कपूर नौ बजे के पहले कभी नहीं उठता और दादा मुनि अशोक कुमार तो दोपहर तक सोते हैं।
ऋषि-मुनि खो गए; ऋषि कपूर, अशोक कुमार रह गए!

प्रार्थना कोरा शब्द है। पूजा एक ढोंग है। जाप निरर्थक मालूम होता है। भगवान का नाम लोग जानते ही नहीं, कैसे लें, कब लें।
मैं एक मित्र के बेटे से पूछ रहा था कि तुम्हारे पिता कभी प्रार्थना करते हैं? उसने कहाः कल ही कर रहे थे। मैं थोड़ा चौंका, क्योंकि उनके पिता से प्रार्थना का कोई संबंध जुड़ेगा, इसकी आशा भी नहीं की जा सकती। मैंने पूछाः बताओ, क्या प्रार्थना की? उसने कहाः शाम को ही भोजन के वक्त प्रार्थना कर रहे थे। बोले--हे भगवान! फिर वही मूंग की खिचड़ी?
बस प्रार्थना इतनी हो गई है! प्रार्थना एक शिकायत है।
एक मित्र कल सांझ को ही मुझे मिलने आए थे। वे कहते हैं कि परमात्मा से
वे नाराज हो गए। प्रार्थना करते थे, पूजा करते थे, ध्यान करते थे, और बच्चा पैदा नहीं हुआ, तो वे नाराज हो गए!--हे भगवान! फिर मूंग की खिचड़ी! तो अब वे प्रार्थना नहीं करेंगे, पूजा नहीं करेंगे--नाराज हैं।
यह प्रार्थना कैसी, यह पूजा कैसी, यह अर्चना कैसी? यह कोई सौदा है? तुम परमात्मा पर कोई अहसान कर रहे थे? कहने लगेः मैंने कभी कुछ मांगा नहीं; इतनी पूजा-प्रार्थना की, फिर भी बच्चा पैदा नहीं हुआ।
अगर मांगा ही न था, तो यह सवाल ही क्यों उठता है कि फिर बच्चा पैदा न हुआ? मांग तो रही ही होगी। तुम्हारी पूजा झूठी है। तुम्हारी पूजा रिश्वत से ज्यादा नहीं। तुम परमात्मा की रिश्वत कर रहे हो। तुम कोशिश कर रहे हो फुसलाने की उसे, ताकि तुम्हारे भीतर छिपी हुई जो वासना है, उसे वह पूरा कर दे। तुम परमात्मा को अपनी वासना का चाकर बनाना चाहते हो।
भक्त तो कहते हैंः "म्हाने चाकर राखो जी!" प्रार्थना जो करते हैं, तो मीरा कहती है, "गिरधर! मुझे अपना नौकर बना लो!" तुम परमात्मा को नौकर बनाने की कोशिश में लगे हो। बस, वहीं चूक हो जाती है। अगर कुछ भी मांगा तो प्रार्थना खो गई। अगर कुछ भी चाहा तो पूजा पूजा न रही, भ्रष्ट हो गई, कुरूप हो गई। और ओंकार तो तब उतरता है जब तुम मंदिर की तरह शुद्ध, पवित्र हो जाते हो, निर्दोष हो जाते हो; जब तुम एक छोटे बच्चे की तरह कुंआरे हो जाते हो। अभी पिछले वर्ष...
इजरायल में एक बहुत अनूठा आदमी है, उसका नाम है, यूरी गैलर। वह सिर्फ इशारे से बिना वस्तुओं को छुए, उनको तोड़-मरोड़ देता है। चाकू उसके सामने करो, बस वह सिर्फ हाथ का इशारा करेगा, चाकू मुड़ कर गोल हो जाएगा। सींखचे मजबूत उसके सामने करो, वह दस फीट, बीस फीट की दूरी से उनको झुका देगा, सिर्फ इशारे से, जिनको तुम ताकत लगा कर नहीं झुका सकते।
तो पिछले वर्ष एक बहुत अनूठी घटना घटी। इंग्लैंड में बी.बी.सी. टेलीविजन पर उसने अपना प्रयोग दिखलाया और सिर्फ उत्सुकता, सिर्फ एक अनहोनी घटना की संभावना के कारण उसने टी.वी. पर प्रयोग बतलाते समय कहा कि जो लोग भी टी.वी. देख रहे हैं, वे भी अपने घरों में प्रयोग करें, मेरे साथ, कौन जाने उनमें से कुछ लोग (क्योंकि करीब लाखों लोग टी.वी. देख रहे थे, यूरी गैलर टी.वी. पर था)शायद कुछ लोगों के पास ऐसी क्षमता हो जिनका उन्हें भी पता नहीं है। तो हजारों लोगों ने प्रयोग किए। दूसरे दिन जो रिपोर्ट आई, उसमें पंद्रह सौ लोग सफल हो गए थे, जिन्होंने यूरी गैलर के साथ ही टी.वी. पर देखते वक्त चीजों को आज्ञा दी, वे मुड़ गईं। मगर एक बड़ी आश्चर्य की बात थी कि वह जो पंद्रह सौ लोग सफल हुए थे, वे सब बच्चे थे। उनकी कोई की भी उम्र चौदह साल से ज्यादा नहीं थी और किसी की भी उम्र सात साल से कम नहीं थी। सात और चौदह के बीच में थे, वे सभी बच्चे थे।
सात और चौदह के बीच कुंआरापन होता है। वीर्य की ऊर्जा अपनी परिपूर्ण शुद्धता में होती है। शक्ति होती है और एक भोलापन होता है। जहां शक्ति और भोलेपन का मिलन हो जाता है, वहीं परम की घटना घटती है।
यूरी गैलर भी भरोसा न कर सका कि यह कैसे हुआ? और बड़ी तो बात यह थी कि सात और चौदह के बीच ही क्यों हुआ?
चौदह के बाद जीवन में वासना, कामना घेर लेती है। मन फिर स्वच्छ नहीं
रह जाता। मंदिर की पूजा में वासना प्रविष्ट हो जाती है। सात के पहले मन तो पवित्र होता है, लेकिन ऊर्जा नहीं होती।

तो सात और चौदह जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय है और वही बरबाद किया जा रहा है। सारी दुनिया में बरबाद किया जा रहा है। इसलिए इस देश में तो हम उन सारे क्षणों का बड़ा उपयोग करते थे। सात वर्ष का होते ही बच्चे को हम गुरुकुल भेज देते थे; वह जंगल चला जाता था। वहां से हम उसे इक्कीस के पहले नहीं बुलाते थे। चौदह की उम्र के सात वर्ष पहले हम उसे भेज देते थे और चौदह के बाद सात वर्ष तक और उसे वहां रहने देते थे, ताकि जिस पावनता को उसने अनुभव किया है, उसमें गहन हो जाए, सुदृढ़ हो जाए। फिर जब वापस लौटे जगत में तो जगत उसे छू भी न सके। वह जगत से गुजर जाए लेकिन जगत उसे स्पर्श भी न कर सके। फिर वह विवाह भी करेगा, लेकिन उसका ब्रह्मचर्य खंडित न होगा। उसके बच्चे भी पैदा होंगे लेकिन कामना कभी उसको विकृत न करेगी। यह सब कर्तव्य होगा। करना है, इसलिए वह करेगा। लेकिन उसका बिस्तर सदा बंधा रहेगा कि कब यह पूरा हो जाए और मैं वापस लौट जाऊं। क्योंकि जो स्वाद उसने चख लिया है उन थोड़े से शक्ति के क्षणों में, वह बुलाए चला जाता है, उसकी पुकार अहर्निश सुनाई पड़ती है--सोता है, जागता है, दुकान पर काम करता है, बच्चों को बड़ा करता है, लेकिन वह पुकार खींचती है, स्वाद एक बार लग जाए परमात्मा का, तो फिर बात ही और हो जाती है।
तुम पूजा तो करते हो बिना स्वाद के। प्रार्थना करते हो बिना स्वाद के। और प्रार्थना भी करते हो, पूजा भी करते हो, कुछ पाने के लिए। नहीं, तुम ओंकार को कभी न जान पाओगे। अगर ओंकार को जानना है, सब कामना छोड़ देनी होगी; मांग ही छोड़ देनी होगी; खाली हो जाना होगा।
दादू इसी महामंत्र के संबंध में बात कर रहे हैं। समझने की कोशिश करें।
सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।
शब्द से अर्थ हैः ओंकार--शब्दों का शब्द ओंकार।
सबदै बंध्या सब रहै, ...
अगर तुम्हारे भीतर ओंकार की धुन बजे तो तुम्हारे भीतर एक एकता होगी, तुम बंधे रहोगे। टूट-फूट न जाओगे, खंड-खंड न हो जाओगे, अखंड रहोगे। जैसे माला में पिरोया हुआ धागा माला के मनकों को बांधे रखता है, ऐसे ओंकार की ध्वनि अगर तुम्हें सुनाई पड़ने लगे तो तुम्हारे जीवन के सब मनके अनुस्यूत हो जाएंगे, एक माला बन जाएगी। अभी तुम सिर्फ मनकों का एक ढेर हो, माला नहीं, क्योंकि धागा नहीं है, जो तुम्हारे सब कृत्यों में, सब भावों में, सब विचारों में समा जाए और सबको एक एकता में बांध ले।
मनस्विद कहते हैं कि, आदमी एक भीड़ है। वे ठीक कहते हैं। तुम भीड़ हो। तुम्हारे भीतर बहुत आदमी है। आदमी ही आदमी हैं। तुम एक बाजार हो। तुम्हारे भीतर एक का अभी जन्म नहीं हुआ, क्योंकि एक के जन्म के लिए तो तुम्हें एक होना पड़ेगा; तुम्हें भीड़ को समेटना होगा; तुम्हें खंड-खंड, जो तुम बंट गए हो, उस सबको जोड़ना होगा।
ओंकार सीमेंट है, जोड़ता है; खंड को खंड से एक कर देता है, अखंड का जन्म होता है। और जिस दिन तुम अखंड होते हो, उस दिन कैसी चिंता, कैसा तनाव? सारा तनाव, सारी चिंता, बेचैनी भीड़ की वजह से है। कोई पश्चिम की तरफ खींच रहा है तुम्हारे भीतर का हिस्सा, कोई पूर्व की तरफ खींच रहा है। कोई नरक जाना चाहता है, कोई स्वर्ग जाना चाहता है। कोई पूजा करना चाहता है, कोई वेश्या का विचार कर रहा है। कुछ भी तुम कर नहीं पाते। एकस्वरता नहीं है। करते भी हो तो अधूरा होता है। प्रार्थना करने भी बैठे हो तो वहां मन नहीं होता। बस एक छोटा सा हिस्सा गुनगुनाए चला जाता है। वह ऐसी ही हालत होती है जैसे तुम रेडियो सुन रहे हो और बैटरी बिल्कुल फीकी हो गई, बामुश्किल सुनाई पड़ता है कुछ। ऐसी ही तुम्हारी प्रार्थना है पूरी ऊर्जा नहीं बहती। ऊर्जा कहीं और जा रही है।
तुम स्वर्ग भी पहुंच जाओ तो भी तुम पूरे न पहुंचोगे। तुम्हारा एकाध टुकड़ा पहुंचेगा, बाकी तुम नरक में पड़े रहोगे। और दोनों के बीच जो दूरी होगी, वही तुम्हारा तनाव है। तनाव का एक ही अर्थ है कि तुम्हारे टुकड़ों के

बीच बड़ी दूरी है, बड़ा खिंचाव है। एक हाथ एक तरफ खींचा जा रहा है, दूसरा हाथ दूसरी तरफ खींचा जा रहा है। यही तो बेचैनी है।
एक ही चैन है दुनिया में, और वह है जब तुम एक हो जाओ।
दादू कहते हैंः
सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।
उसी से तो बंधन, उसी में तो तुम एक होते हो। वही तो तुम्हें जोड़ता है।
और तुम्हें ही नहीं, सारा अस्तित्व ओंकार से जुड़ा है।
जब तुम परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तब भी तुम्हें धुन सुनाई पड़ती रहेगी। वह शून्य की धुन होगी। वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार। तुमने कभी रात का सन्नाटा सुना है? सन्नाटे का भी एक संगीत है। जब कोई
भी आवाज नहीं होती, तब भी एक आवाज बच रहती है। जब सब शोरगुल खो जाता है तब उस सन्नाटे में भी एक स्वर होता है। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर की सब भीड़, सब शोरगुल खो जाएगा, तब तुम्हारे भीतर तुम्हें एक स्वर सुनाई पड़ेगा, वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।
और तुम्हें ही नहीं बांधे हुए है; सारे अस्तित्व को बांधे हुए है, साधे हुए है। वही है आधार। उसके बिना सब बिखर जाएगा।
सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।
और अगर वह शब्द तुमसे खो जाए तो तुम एक बिखरी हुई स्थिति में हो जाते हो। तब तुम्हारी आकृति विकृत हो जाती है; तुम्हारा रूप कुरूप हो जाता है; तुम्हारे कंठ में बांसुरी नहीं बजती; तुम्हारी आंखों में ओज नहीं रह जाता; तुम्हारे जीवन की धारा जगह-जगह टूट जाती है, जैसे कभी ग्रीष्म के दिनों में नदियां टूट जाती हैं--एक डबरा भरा है, फिर रेत आ गई, फिर थोड़ा सा डबरा रह गया, फिर रेत आ गई।
जो ओंकार से जुड़ा है, वह पूर आई नदी की भांति है, अखंड है। स्रोत से लेकर अंत तक, गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक एक है।
सबदै ही सब उपजै, ...
इस ओंकार से ही सबका जन्म हुआ है और इस ओंकार में ही सबको लीन हो जाना है। क्योंकि, हमारी समझ से, अंतर-खोजियों की दृष्टि से, ओंकार की ध्वनि इस जगत का सारभूत तत्व है। ओंकार के ही संघात से, चोट से सब पैदा हुआ है, और ओंकार की ही पर्त दर पर्त जमती जाती है और विभिन्न रूप पैदा होते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य जैसा नहीं है। क्योंकि विज्ञान कहता है, विद्युत
से सारी चीजें पैदा हुई हैं। क्या फर्क पड़ता है, विद्युत से पैदा हों या ध्वनि से पैदा हों? दोनों ही बातें समझ में आने जैसी हैं। लेकिन यह भेद क्यों है? क्योंकि विज्ञान बाहर से खोजता है। बाहर से जो चीज विद्युत जैसी दिखाई पड़ रही है, वही चीज भीतर से ध्वनि जैसी दिखाई पड़ती है।
एक तो है मकान के बाहर से देख जाने वाला आदमी और एक है अतिथि की तरह मकान के भीतर आ जाने वाला आदमी--धर्म और विज्ञान में यही फर्क है। विज्ञान बाहर-बाहर घूमता है, तो बाहर की रेखा और परिधि को पहचान लेता है ठीक से। धर्म अंतर्गृह में प्रवेश करता है और भीतर से चीजों को जानता है।
दोनों के मध्य में कला का जगत है--कवि का, चित्रकार का, मूर्तिकार का। मूर्तिकार दोनों के बीच है। चित्रकार दोनों के बीच है। कवि दोनों के बीच है। कवि साधारणतः तो बाहर हो जाता है, साधारणतः तो बाहर रहता है; लेकिन कभी मौका मिल जाए तो चोर की तरह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। कला एक तरह की चोरी है। कभी-कभी चोर तुम्हारे घर में रात के अंधेरे में घुस आता है। वह अतिथि नहीं है। वह निमंत्रित भी नहीं है। सामने के द्वार से भी प्रवेश नहीं किया है। वस्तुतः तो जब मेजबान सोया है, तब वह आता है। अगर मेजबान जागा हो तो वह आएगा ही नहीं।
विज्ञान बाहर घूमता रहता है। कवि कभी-कभी चोरी से भीतर प्रवेश कर जाता है। इसलिए कविता में कभी-कभी धर्म की धुन सुनाई पड़ती है। काव्य में कभी-कभी परम अनुभूति का थोड़ा सा प्रकाश मालूम पड़ता है। और अक्सर यह होता है कि अगर किसी कवि की कविता पढ़ो तुम तो तुम्हारे मन में एक छाया पैदा होती है कवि की कि कितना सुंदर, कितना भव्य, कितना दिव्य न होगा यह व्यक्ति।

मगर भूल कर इस व्यक्ति को मिलने मत जाना, नहीं तो तुम उसे बैठे किसी होटल में चाय पीते पाओगे, या बीड़ी सुलगाते पाओगे। और तुम बड़े हैरान होओगे और बड़े उदास कि इतनी ऊंचाई थी कविता की और यह यह कवि कहां पड़ा है! और कवि तुम्हें बिल्कुल साधारण आदमी मालूम पड़ेगा। उसका कोई कसूर भी नहीं है। साधारणतः वह बाहर रहता है। मौके-बेमौके, अंधेरे-उजाले, कभी समय पाकर चोरी से भीतर घुस जाता है।
धर्म अतिथि की तरह भीतर प्रवेश करता है--आमंत्रित अतिथि की तरह तैयार होकर प्रवेश करता है। इसलिए हमने इस मुल्क में कवियों को दो शब्द दिए हैं, दोनों का मतलब एक होता है। और दुनिया की किसी भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं है, सिर्फ भारत की भाषाओं में है। एक को हम कवि कहते हैं, दूसरे को हम ऋषि कहते हैं--दोनों का मतलब एक ही है। दोनों का मतलब हैः द्रष्टा, जिसने देखा।
लेकिन दोनों में फर्क क्या है? एक ने चोर की तरह देखा। घुसा वह भी घर
के भीतर, मगर डरा-डरा घुसा। घुसा वह भी, लेकिन बिना तैयारी के घुसा। घुसा वह भी, लेकिन योग्य न था और घुसा। घुसा वह भी, लेकिन मालिक जब सोया था, तब घुसा। थोड़ी खबर ले आता है, जैसा कि चोर भी घर के भीतर की थोड़ी खबर देगा; लेकिन अंधेरे में बहुत ज्यादा देखा नहीं जा सकता। और घबड़ाया हुआ, डरा हुआ, दूसरे के घर में कितना देख पाएगा; थोड़ी-बहुत खबर ले आता है।
धर्म तैयार होकर भीतर जाता है। साधक तैयारी करता है, अपने को योग्य बनाता है, पात्र बनाता है। प्रतीक्षा करता है तब तक द्वार पर, जब तक कि बुला न लिखा जाए। द्वार पर दस्तक भी नहीं देता--क्योंकि जब योग्य हो जाऊंगा, मालिक के योग्य हो जाऊंगा, बुला लिया जाऊंगा--प्रतीक्षा करता है। तब वह जो देखता है, वह बात ही और है! वह है ऋषि।
उपनिषद के कवियों को हम ऋषि कहते हैं। बड़ी मुश्किल से कभी हजार कवियों में एक कवि ऋषि होता है। ऋषि का मतलब हैः जो उसने जाना है वह सिर्फ जाना ही नहीं, वह उसका जीवन भी है। और कवि का अर्थ होता हैः जिसने जाना है वह अलग, उसका जीवन अलग। तुम उसके जीवन में खोजबीन करने मत जाना। तुम उसकी कविता को पढ़ना और कविता से कुछ पा सको तो पा लेना; लेकिन कवि को खोजने मत जाना, अन्यथा निराशा हाथ लगेगी।
अगर कवि को खोज के भी तुम्हें कविता ही दिखाई पड़े कवि में तो वह ऋषि है। ऐसा कभी-कभी होता है। कोई एक रविंद्रनाथ, कोई एक खलील जिब्रान, सिर्फ कवि नहीं होता, ऋषि भी होता है। तब वह सिर्फ गाता ही नहीं; जो गाता है, उसे जीता भी है। उसके शब्द शब्द ही नहीं होते; उसके शब्द में उसके प्राण की धड़कन होती है। तब वह अपने को उंड़ेलता है। और जो जाना है उसने, जीकर जाना है। चोरी से, खिड़की से, पीछे के द्वार से झलक नहीं ली है; मेहमान की तरह परमात्मा के भवन का वासी बना है। और जो वहां मेहमान की तरह रहा है, वह सदा के लिए रूपांतरित हो जाता है।
सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।
उसको, जिसको विज्ञान बाहर से देखता है, और कहता है विद्युत, उसे धर्म भीतर से देखता है और कहता है शब्द। और दोनों के बीच में कवि है, कला है। वह उसे कहती है रस--रसो वै सः। रस से ही सब बना है। लेकिन सारा रस झरता है उस ओंकार से और जिसको विज्ञान विद्युत की तरह जानता है, वह उसी ओंकार की उष्मा है, गरमी है; उसी ओंकार के प्राण का स्पंदन है।
दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।।
दादू सबदै ही सचु पाइए, ...
सच के पाने का और कोई उपाय नहीं है। सोचने से न पाओगे, विचारने से न पाओगे। लाख सिर पटको, लाख पहेलियां सुलझाओ, तर्क जमाओ, सिद्धांत बनाओ, शास्त्र निर्मित करो--नहीं, सत्य को ऐसे न पाओगे। सत्य को पाने का ढंग दर्शनशास्त्र नहीं है। सत्य को पाने का ढंग साधना है, योग है, प्रार्थना है, ध्यान है, समाधि है।

कितना ही तुम सोचो, तुम ही तो सोचोगे! तुम्हारा सोचना तुमसे ऊपर नहीं
जा सकता। तुम्हारे सिद्धांत तुमसे बड़े नहीं हो सकते। तुम्हारे सिद्धांत तुमसे बहुत छोटे होंगे। तुम्हारे हाथ की पकड़ में जो आ गया, वह तुम्हारे हाथ की मुट्ठी से छोटा होगा। अगर तुम्हारे परमात्मा को पकड़ना है तो रास्ता और है। तुम्हें उतना ही विराट हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही शून्य हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही विराट हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही शून्य हो जाना पड़े, तुम्हें इतना खाली हो जाना पड़े, इतना खाली कि अगर पूरा परमात्मा भी आए तो जगह मिले, जगह बनानी पड़े।
दादू सबदै ही सचु पाइए, ...
ओंकार जगह बनाना है। जब तुम ओंकार की धुन से भर जाते हो, तब सब शांत हो जाता है, सब शून्य हो जाता है। वही एक धुन बजती रह जाती है। जैसे मंदिर के सब यात्री जा चुके और घंटा ही बजता रह गया। हर मंदिर के द्वार पर हमने घंटा लटका रखा है। कारण है। द्वार के बाहर ही घंटा लटका रखा है। और हर मंदिर के यात्री को घंटे को बजा कर ही प्रवेश करना है। तुम यह मत सोचना कि घंटा बजाना कोई कॉलबैल जैसा मामला है कि दरवाजे पर घंटी लगी है ताकि भीतर के मालिक को पता चल जाए। वह कोई भगवान झपकी खा रहे हैं, उनको जगाने के लिए नहीं है कि शायद सो रहे हों, या शायद कोई निजी गुफ्तगूं में लगे हों, तो जरा घंटा बजा के खबर कर दें, जैसा घर में लोग खांस-खंखार के प्रवेश करते हैं। नहीं, मंदिर के द्वार पर घंटा प्रतीक है कि ध्वनि उसका द्वार है, ध्वनि से उस तक पहुंचोगे। वह जो घंटनाद है, वह तो सिर्फ सूचना है, इस बात की कि असली द्वार ध्वनि है। और अगर उसमें प्रवेश करना है तो ध्वनि को साधो, ध्वनि के योग्य बनो।
तुमने कभी देखा, शास्त्रीय संगीतज्ञ बैठता है अपने सितार को लेकर, तो लोग तो ऊब जाते हैं। अभी संगीत शुरू ही नहीं हुआ, वह साज ही बिठा रहा है, ठोका-ठाकी कर रहे हैं, तार ठीक कर रहे हैं, तबले वाला तबले को ठोंक रहा है। लोगों को बड़ी हैरानी होती है कि यह क्या कर रहे हो; यह घर से ही करके आ गए होते! यह आधा घंटा इसमें खराब करना!
लेकिन प्रतिपल साज को बिठाना पड़ता है, नहीं तो बासा हो जाता है। बासे साज पर ताजा संगीत पैदा नहीं होता। घर से बिठा कर वे भी आ सकते थे, कोई अड़चन न थी, वहीं ठोक-ठाक कर लेते; लेकिन जितनी देर में आते, जितना समय व्यतीत हो जाता, उतना ही साज बासा हो जाता। प्रतिपल ही साज को ताजा करना पड़ता है। और ताजे साज पर ही ताजा संगीत पैदा होगा। जरा भी बासा न हो जाए, इसलिए बेचारा संगीतज्ञ वहीं बैठ कर ठोक-पीट करता है। उसके पीछे राज है। और जब तार ठीक बैठ जाते हैं, तो संगीत पैदा करना बहुत कठिन नहीं है।
कहावत है कि संगीत तो कोई भी पैदा कर सकता है, लेकिन साज सिर्फ बड़ा अधिकारी पात्र ही बिठा सकता है। क्योंकि साज बिठाना बड़ी सूक्ष्म बात है। फिर तार छेड़ देना उतनी बड़ी बात नहीं है। तार बिठाना बड़ी बात है।
सारा धर्म तुम्हारी हृदय की वीणा की ठोक-ठाक है, साज बिठाना है। जिस दिन साज बैठ जाएगा, उस दिन तो बच्चा भी तार छेड़ दे तो भी संगीत उत्पन्न होने लगेगा। असली बात साज का बैठ जाना है और उस साज को बिठाने के लिए ही सारी साधना है। ओंकार के रटन को कहा जाता है। वह सिर्फ साज को बिठाना है, वह संगीत नहीं है। वह सिर्फ हथौड़ी से ठोक रहे हैं तबले को, कस रहे हैं तारों को।
ओंकार के पाठ को कहा जाता है। मैं भी तुमसे कहूंगा। एक घड़ी चौबीस घड़ी में निकाल ही लेनी चाहिए जब तुम कुछ भी न करो। खाली बैठ जाओ, ओंठ बंद कर लो, जीभ को तालू से लग जाने दो, रीढ़ सीधी हो और तुम भीतर ओंकार का नाद करने लगो। ओंकार के नाद को भीतर करने का मतलब है कि तुम ओंठ से आवाज बाहर मत निकालो। अंदर ही गुंजाओ लेकिन गुंजाओ इतने जोर से कि बाहर लोगों को सुनाई पड़े। ओंठ से न निकले, सुनाई जरूर पड़े। तुम्हारे रोएं-रोएं से निकले। तुम एक गूंज बन जाओ।
बड़ा मीठा अनुभव होता है। भीतर जैसे अमृत झरने लगता है थोड़े ही दिनों में। और यह अभी असली ओंकार नहीं है। नकली ओंकार इतना कर देता है तो असली की तो बात ही मत करो। उसकी तो कोई तुलना ही नहीं हो सकती। तुम सिर्फ आंख बंद

करके, रीढ़ सीधी करके--रीढ़ सीधी इसलिए ताकि तुम्हारे भीतर सारा शून्य सीधा खड़ा हो जाए और तुम ओंकार को गुंजाने लगो।
जब श्वास बाहर जाए तो तुम ओंकार की ध्वनि करो--ओम... ओम। जब श्वास भीतर जाएगी तब तो ध्वनि न कर पाओगे। तो एक रिदिम, एक लय पैदा हो जाएगी। श्वास बाहर जाएगी। तुम श्वास को ओंकार की ध्वनि से भर दो। फिर श्वास भीतर जाएगी, शून्य रहेगा। फिर श्वास बाहर जाएगी, फिर ओंकार की ध्वनि करो इतने जोर से कि बाहर कोई गुजरता हो तो सुनाई पड़े। जैसे एक मधुमक्खियों का जत्था जा रहा हो तो एक गूंज मालूम पड़ती है, ऐसी ही गूंज बाहर मालूम पड़ेगी। और वह गूंज तुम्हारे शरीर को भी स्वस्थ करेगी, तुम्हारे बिखरे मन को बांधेगी और तुम्हारे भीतर एक अपूर्व शांति का जन्म होगा और एक मस्ती छा जाएगी। ध्वनि की अपनी सुरा है। इसीलिए तो संगीत सुनते-सुनते तुम्हारा सिर हिलने लगता है, जैसे शराबी का हिल रहा हो।
मैंने सुना है, लखनऊ में वाजिद अली के दिनों में ऐसा हुआ, एक बड़ा संगीतज्ञ आया और उसने वाजिद अली से कहा कि मैं संगीत तो प्रस्तुत करूंगा, लेकिन शर्त है एक--कोई सिर न हिलाए। वाजिद अली तो पागल था ही। उसने कहाः तुम फिकर मत करो। जो सिर हिलाएगा, कटवा देंगे। गांव में डुंडी पीट दी गई कि जिसने भी सिर हिलाया, उसका कट जाएगा। इसलिए अगर सिर हिलाना हो तो आना ही मत।
जहां सुनने दस हजार लोग आए होते--क्योंकि बड़ा ख्यातिनाम संगीतज्ञ था-- वहां मुश्किल से सौ-पचास आदमी आए और वह भी ऐसे आदमी जिसको अपने पर भरोसा है। हठयोग के साधक होंगे या इस तरह के लोग, कसरती, पहलवान, जिनको कि पक्का है भरोसा कि सिर न हिलने देंगे। क्योंकि खतरा है, वाजिद अली पागल है। मक्खी सिर पर बैठ जाए और तुम हिला दो तो वह फिर सुनेगा ही नहीं कि हमने संगीत के लिए नहीं हिलाया था।
तो लोग बिल्कुल सध कर बैठे, बुद्ध की प्रतिमाओं की तरह बैठे। संगीत शुरू हुआ। घड़ी भी न बीती होगी। कुछ सिर हिलने लगे, बेतहाशा हिलने लगे। वाजिद अली तो घबड़ाया खुद भी। उसने सोचा कि वह तो नाहक हत्या हो जाएगी। अब इन नासमझों को कहलवा दिया, डुंडी पिटवा दी, फिर भी आ गए हैं, और सामने ही बैठे हैं और संगीतज्ञ को भी दिखाई पड़ रहा है।
उसने नंगी तलवारें लिए आदमी खड़े कर रखे थे। संगीत पूरा हुआ। वे आदमी पकड़ लिए गए। और वाजिद अली ने कहा संगीतज्ञ को, बोलो, कटवा दूं इनके सिर? उसने कहा कि नहीं, किसी और कारण से मैंने ऐसा कहा था। बाकी सब को विदा कर दो, अब इनके साथ रात बिताऊंगा। यही असली हकदार है सुनने के।
क्योंकि जिनके भीतर संगीत से शराब पैदा न हो जाए, वे भी कोई सुनने वाले हैं? यह तो परीक्षा थी सिर्फ। क्योंकि अब ये शराब की हालत में हैं, अब ये होश में नहीं हैं। जब तक होश था, तब तक तो ये भी साधे रहे। जब बेहोशी आ गई, तब ये न साध पाए। उन लोगों ने भी कहाः हमने सिर हिलाए नहीं, सिर अपने से हिले। हम तो अपनी तरफ से न हिलाने की ही जिद किए थे। हमने तो कई बार रोकने की भी कोशिश की, मगर परवश! सिर था कि हिले जा रहा है, जैसे हमारा हिस्सा ही न हो।
तुमने शराबी को चलते देखा है? वह काफी सम्हल कर चलता है। कोई आदमी इतना सम्हल के नहीं चलता, जितना शराबी सम्हल के चलता है। क्योंकि उसको पता है कि वह डांवाडोल हो रहा है। वह बहुत सम्हल के चलता है, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है?
संगीत की अपनी सुरा है; वैसी सूक्ष्म कोई भी सुरा नहीं। और सब शराबें स्थूल हैं।
अगर तुमने अपने भीतर ओंकार के नाद को गुंजाया--और ध्यान रखना कि यह तुम्हारा नाद है; अभी तुम्हें असली नाद का पता ही नहीं है--तो भी तुम्हारे भीतर एक मस्ती पैदा होगी; तुम एक मदमस्ती में जीने लगोगे। तुम चलोगे और ढंग से! स्फूर्ति और होगी! उठोगे और ढंग से! आंखों में एक नशा छाया रहेगा, जैसे जिंदगी में एक पहली दफा उत्सव की घड़ी आई है।
अगर तुम इस तरह ओंकार की ध्वनि करते रहो, करते रहो, करते रहो, किसी दिन अचानक तुम पाओगे कि तुम्हारी धुन तो जारी है ही, एक और धुन तुम्हारे भीतर

पैदा हो रही है। यह उसी दिन पैदा होती है जिस दिन तुम्हारी वीणा पूरी कस जाती है और तैयार होती है; साज राजी होता है। उस दिन तुम पाओगे, एक धुन तो तुम कर रहे हो, जो अब कुछ भी नहीं है; एक फीका स्वर है, कार्बनकॉपी है। असली धुन अब पैदा हो रही है। तब तुम अपनी धुन को बंद कर देना। तब तुम सुनने वाले बन जाना। अब तक तुम कर्ता थे; अब तुम सुनने वाले बन जाना; अब तुम आंखें गड़ा लेना भीतर। अब तुम प्राणों को थाम लेना। क्योंकि भीतर जो घट रहा है, वह अपूर्व है; वह अतुलनीय है; उसकी कोई उपमा नहीं है। भीतर अमरस की धार बहने लगेगी। रोआं-रोआं किसी अपूर्व प्रकाश से भर जाएगा। अंधकार गया! दुर्दिन गए; महासुख बरसेगा! मिलन का क्षण करीब आ गया।
ओंकार तुम शुरू करो। मगर तुम खींचे मत जाना और प्रतीक्षा करना उस दिन
की जिस दिन भीतर का ओंकार फूटने लगे। उस दिन तुम जिद्द मत करना अपने ओंकार को थोपने की। उस दिन तुम बिल्कुल चुप हो जाना। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ आयोजन था, ताकि रास्ता बन जाए उस ओंकार के बहने के लिए; ताकि तुम्हारे यंत्र में मार्ग बन जाए उस ओंकार को झेलने के लिए। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ पूर्व तैयारी थी, रिहर्सल था; असली नाटक तो तब शुरू होता है जब तुम्हारा ओंकार तो गया और उसका ओंकार शुरू हुआ--एक ओंकार सतनाम!
दादू सबदै ही सचु पाइए, ...
और उस घड़ी में ही सत्य से मिलन है।
... सबदै ही संतोष।
और संतोष उस सत्य की छाया है। उसके पहले तुम लाख संतोष की बातें करों, तुम्हारा संतोष सांत्वना है, संतोष नहीं। और सांत्वना को भूलकर संतोष मत समझना। वह तो बड़ी नपुंसक स्थिति है। सांत्वना नपुंसक स्थिति है; संतोष महा ऊर्जा से भरी हुई घड़ी है।
तुम भी सोचते हो कि संतोष है। तुम भी कहते हो कि जो है, सब ठीक है; लेकिन जैसा तुम कहते हो, जो है सब ठीक है, उसमें भी शिकायत मौजूद है। जरा भीतर झांक कर देखोगे तो पाओगे, कुछ भी ठीक नहीं हो। कह रहे हैं--मन को समझा रहे हैं। न कहेंगे तो कोई हटने वाला नहीं हैं। दुख और नाहक फजीहत होगी, और लोग भी जान लेंगे। तुम किसी तरह झूठी मुस्कुराहट अपने दुख के सरोवर के चारों तरफ बांध रखते हो। किसी तरह अपने को सम्हाले रखते हो कि सब ठीक है। कुछ भी ठीक नहीं है। ठीक हो भी नहीं सकता। सत्य के बिना कभी कुछ ठीक हुआ भी नहीं है। इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम संतोष साधो, मैं तो कहता हूं, तुम ओंकार साधो। ओंकार के साधने से सत्य आएगा।
सत्य की छाया है संतोष; सत्य के पीछे चला आता है। जिसको सत्य से मिलन
हो गया वह संतुष्ट हो जाता है। उसके पहले संतुष्ट हो भी कैसे सकते हो? और दुर्भाग्य होगा अगर संतुष्ट हो जाओ। क्योंकि अगर संतुष्ट हो गए तो फिर सत्य को कौन खोजेगा? फिर तो खोज ही बंद हो गई।
इसलिए परमात्मा की बड़ी कृपा है कि सत्य के पहले वह तुम्हें संतुष्ट नहीं होने देता। अगर तुम संतुष्ट हो गए हो तो यात्रा ही समाप्त हो गई। धर्म संतोष नहीं है; धर्म महा असंतोष है, असंतोष की प्रबल ज्वाला है। अग्नि की भट्टी की तरह तुम जलोगे तुम असंतोष में और तभी कभी यात्रा पूरी हो सकती है। तुम जल्दी संतोष की करते हो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, जल्दी संतोष मिल जाए। संतोष इतनी जल्दी मिल जाए तो दुर्भाग्य होगा। फिर तुम वहीं बैठ रहोगे जहां हो, फिर तुम आगे न बढ़ोगे। तो मैं तुमसे कहता हूं, बाहर की चीजों में चाहे संतोष साध लेना; भीतर के जगत में संतोष मत साधना।
ठीक है मकान छोटा है, समझा लेना कि ठीक है, चल जाएगा काम, क्योंकि ऐसे
तो बड़े से भी नहीं चलता। बड़ा भी मिल जाएगा तो भी छोटा ही रहेगा। जो भी मिल जाए, वह छोटा हो जाता है। असल में छोटे की एक ही परिभाषा है--जो तुम्हारे पास है, वह छोटा है। जो दूसरे के पास है, वह बड़ा है। और तो कोई परिभाषा नहीं है छोटे की। इसलिए जो भी मिलेगा, छोटा हो जाएगा।
ठीक है, बाहर के काम में संतोष साध लेना; लेकिन भीतर के जगत में जब तक परमात्मा न मिल जाए, उससे कम पर राजी मत होना। उससे कम पर अगर तुम राजी हो गए तो चूक जाओगे।

तुमने पढ़ी है कथा? नचिकेता को उसके पिता ने भेज दिया यम के द्वार पर।
यम तीन दिन बाद आया। यम की पत्नी ने बहुत कहा कि तू कुछ भोजन कर ले, विश्राम कर ले। उसने कहा कि नहीं। पहले तो जिस काम से आया हूं, वह निपटाऊं। अभी कैसा विश्राम? अभी कैसा भोजन? कहीं भोजन, विश्राम में भूल न जाऊं, पहले तो मिलना है।
द्वार पर ही नचिकेता को यम मिला। इस छोटे से लड़के की ऐसी अदम्य जिज्ञासा देख कर यम का हृदय भी पसीज गया। वह सबसे कठिन हृदय होना चाहिए, क्योंकि मृत्यु का देवता है यम। वह भी पसीज गया। उसने कहाः तू मांग ले-- घोड़े-हाथी, धन-दौलत, हीरे-जवाहरात। नचिकेता ने कहाः इनके मिल जाने से तृप्ति होगी? यम मुश्किल में पड़ा। उसने कहाः तू साम्राज्य मांग ले सारी पृथ्वी का, चक्रवर्ती बन जा। पर नचिकेता ने कहाः मेरे सवाल का जवाब दें। उससे मैं संतुष्ट हो जाऊंगा?
यम झूठ न बोल सका। जिज्ञासा प्रबल हो, मृत्यु भी झूठ नहीं बोल सकती। जिज्ञासा गहन हो तो यम भी धोखा नहीं दे सकता। इस छोटे बच्चे को धोखा देना मुश्किल था। उसने कहा कि नहीं, यह तो मैं भी न कह सकूंगा। नहीं, इससे संतोष तो न मिलेगा। तू अनंतकाल तक जीवन मांग ले। तुझे जितना जीना हो उतना जीना। पर वह नचिकेता अपनी जिद पर अड़ा रहा। उसने कहा कि उससे क्या होगा? एक दिन तो फिर आखिर मैं मरूंगा क्या इससे अमृत मिल जाएगा--लंबा जीवन? अमृत का मिलन हो जाएगा? संतुष्ट हो जाऊंगा?
यम ने कहाः तू जिद्दी है। नहीं, उससे भी संतोष न मिलेगा?
तो नचिकेता ने कहाः जब आप दे ही रहे हैं वरदान ऐसे उदार हृदय से, तो मुझे वही रास्ता बता दें जिससे अमृत मिल जाए, और संतुष्टि हो जाए। नचिकेता की तरह बैठे रहना द्वार पर जीवन के, जब तक कि संतुष्टि न मिल जाए। तब तक जीवन कुछ भी दे--कई भुलावे देगा जीवन--कहना कि ठीक है सब, धन्यवाद! पर अपने भुलावे अपने पास रखो। मेरे अग्नि मेरे पास, मेरी प्यास मेरे पास, मेरी जलन मेरे पास, मेरा विरह मेरे पास, जलूंगा; लेकिन अब वर्षा तो वही चाहिए जो आखिरी हो। इन छोटी-मोटी वर्षाओं से क्या होगा? फिर आग पैदा होगी, फिर जलूंगा। आखिरी वर्षा चाहिए।
इसलिए मैं कहता हूं, धर्म असंतोष है, महा असंतोष है, दिव्य असंतोष है-- डिवाइन डिसकंटेंटमेंट। और जो उस असंतोष से गुजरता है, वही किसी दिन संतोष को उपलब्ध हो पाता है लेकिन संतोष सीधा नहीं मिलता। वह तुम्हारी चेष्टा से नहीं मिलता।
दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै भागा सोक।।
उस ओंकार की ध्वनि में ही सत्य से मिलन होता है, संतोष आ जाता है। उस ओंकार की धुन में ही स्थिरता आती है, स्थिर हो जाता है प्राण, सारी चंचलता खो जाती है, सारी भाग-दौड़, आपा-धापी मिट जाती है, और उसी क्षण--सबदै ही भागा सोक--और सारा दुख तिरोहित हो जाता है।
जानने वालों की दृष्टि में चंचलता दुख है। जानने वालों की दृष्टि में थिर हो जाना सुख है। जो थिर है वह सुखी है। जो दौड़ रहा है, भाग रहा है, वह दुखी है। तुम सोचते हो उलटा। तुम्हारा तर्क यह है कि दुखी हूं, इसलिए भाग रहा हूं। और तुम किसी को बैठे देखते हो, किसी बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे, तुम कहते हो, सुखी है इसलिए बैठा है।
मामला उलटा है। यह बैठा है इसलिए सुखी है। तुम दौड़ रहे हो इसलिए दुखी हो। तुम भी बैठ कर देखो। तुम कहते हो, बैठूं कैसे? , जब तक सुख न मिलेगा हम बैठेंगे न। तब तो सुख कभी मिलेगा नहीं, क्योंकि वह बैठने से मिलता है। तुम कहते हो, अभी अगर दौड़-धूप बंद कर दी तो क्या होगा? अभी तो बहुत सुख बाकी पड़े हैं। दुख ही दुख जीवन में पाए हैं; थोड़ा तो सुख ले लेने दो; थोड़ा तो दौड़ लेने दो, थोड़ा तो कुछ पा लेने दो--फिर बैठ जाएंगे।
किसी ने कभी दौड़ कर कुछ पाया? इतिहास में कोई सबूत है, एकाध भी? किसी
ने कभी दौड़ कर कुछ नहीं पाया। दौड़ कर खोया भला, पाया नहीं। जिन्होंने पाया बैठ कर पाया। बैठ जाने की कला ही बड़ी भारी कला है। बस तुम बैठ जाओ। दौड़ो मत। थिर हो जाओ। उसको कृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है--जिसकी

प्रज्ञा ठहर गई; ऐसे ठहर गई जैसे किसी भवन में जिसके द्वार-दरवाजे बंद हों, हवा के झोंके न आते हों और दीये की ज्योति थिर होकर जलती है, कंपती नहीं-- ऐसी जिसकी प्रज्ञा ठहर गई।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।
दादू सबदै ही मुक्ता भया, ...
शब्द से ही मुक्त हुआ।
... सबदै समझै प्राण।
और शब्द से ही जीवन का रहस्य जाना। सबदै ही सूझै सबै, ... शब्द से ही आंख खुली, सूझना शुरू हुआ।... सबदै सुरझै जाण। और शब्द से ही जितनी उनझनें थीं सुलझीं। ये शब्द ओंकार की तरफ इशारा है। क्यों नानक, दादू, कबीर शब्द कहते हैं। कारण हैं। वे कहते हैं कि ओंकार सीधा-सीधा कहना ठीक नहीं। वह बड़ी नाजुक बात है। उसे इशारे से कहते हैं।
यहूदियों में एक पुराना रिवाज है कि परमात्मा का नाम मत लो, क्योंकि नाम लेना बहुत सीधा हो जाता है शोभा नहीं देता। भारत में रिवाज हैं कि पत्नी पति का नाम नहीं लेती। शोभा नहीं देता। थोड़ा सा बेहूदा लगता है।
इतना सीधा? न, प्रेम नाजुक बात है। पत्नी पति का नाम नहीं लेती। भक्त भगवान का नाम नहीं लेता।
संत उसको बार-बार शब्द कहते हैं, इशारा करते हैं।
सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण।
पहली किया आप थैं, उतपत्ती ओंकार।
दादू कहते हैंः परमात्मा से जो पहली होने की घटना घटी, वह है ओंकार, जो पहला उदघोष हुआ, वह है ओंकार, जो पहली सृष्टि हुई, वह है ओंकार; जो पहली लहर उठी, वह है ओंकार।
ध्यान रखना, परमात्मा में जो पहली लहर है, वही तुममें अंतिम लहर होगी, अगर परमात्मा में जाना है। ओंकार पहली लहर है परमात्मा की अर्थात, हुआ, परमात्मा संसार में आया; स्रष्टा सृष्टि बना, लहर उठी। अगर तुम्हें वापस जाना है तो उसी मार्ग से लौटाना होगा। ओंकार अंतिम बात होगी तुम्हारे जीवन में। उसके आगे परमात्मा है। उसके आगे फिर कुछ भी नहीं है। जिस दिन ओंकार भी शांत हो जाएगा, और महाशून्य रह जाएगा, उस दिन सिर्फ परमात्मा रह जाएगा; उस दिन तुम परमात्मा हो।
पहली किया आप थे, उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थैं उपजैं, पंच तत्त आकार।।
और दादू कहते हैं कि फिर ओंकार से पांच महा तत्व पैदा हुए--पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि इत्यादि। सारा संसार फिर उसी शब्द की, अलग-अलग जोड़ों से
निर्मित हुआ।
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो उबरै, सूते लिए जगाइ।।
दादू सबद बाण गुरु साध के, ...
और उसी ओंकार को गुरु अपनी प्रत्यंचा पर साधता है। उसी ओंकार को गुरु बाण की तरह अपने जीवन की प्रत्यंचा पर साधता है, खींचता है।
दादू सबद बाण गुरु साध के, ...
और फिर कोई भी दिशा, और कितनी ही दूरी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
अगर शिष्य राजी है तो कहीं भी हो, गुरु का बाण उसे छेद देता है।
... दूरि दिसंतर जाइ।
क्योंकि उस ओंकार की ध्वनि के लिए न तो कोई दिशा है, न कोई दूरी है।
अगर शिष्य खुला है और राजी है, और हृदय के वातायन उसने खोल रखे हैं तो तीर लग जाएगा। तीर पहले तो पीड़ा देगा, पहले तो मारेगा, फिर जिलाएगा। और फिर ऐसा जिलाएगा कि फिर कोई मरना नहीं होता। तो वह तीर मृत्यु भी है और पुनर्जीवन भी।
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो उबरै, सूते लिए जगाइ।।
जिसको लग जाता है बाण वह उबर जाता है।
----सुते लिए जगाइ।

इसे थोड़ा समझें। जो सो रहे हैं, उन्हें बाण मार कर जगा लिया।
दो बातें हैं; अगर शिष्य राजी न हो और गुरु बाण मारे तो ज्यादा--से ज्यादा सोए को जगा सकता है। अगर शिष्य राजी हो और गुरु बाण मारे तो उबार ले सकता है, परम मुक्ति घटित हो सकती है। अगर शिष्य राजी न हो, तो फिर सो जाएगा। अगर शिष्य राजी हो तो फिर कोई सोने का उपाय न रहा। वही मुक्ति का अर्थ है। मुक्ति का अर्थ है, ऐसे जागे ऐसे जागे कि फिर कोई सोना न रहा, फिर सोने का कोई उपाय न रहा!
तो बहुत बार गुरु तब भी बाण मारता है जब तुम राजी नहीं हो, तब तुम्हें सिर्फ जगाता है। उतना तो गुरु अपनी तरफ से भी कर सकता है कि तुम्हें थोड़ा हिला दे, कंपा दे और जगा दे। अगर तुम उस जागने का उपयोग कर लो और राजी हो जाओ तो दूसरी घटना भी घट सकती है। लेकिन वह तुम पर निर्भर है।
कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को उसकी इच्छा के खिलाफ मुक्त नहीं कर सकता। और स्वभावतः यह ठीक भी है। क्योंकि अगर कोई तुम्हें मुक्त भी जबरदस्ती कर दे तो वह मुक्ति ही क्या रही! अगर तुम मुक्त भी तुम्हारी इच्छा के खिलाफ किए जा सको तो वह तो गुलामी हो गई।
तो मुक्ति की परम घटना तुम्हारे राजी होने से ही घटती है। लेकिन तुम्हें जगाया जा सकता है, तुम्हें हिलाया जा सकता है, तुम्हें चौंकाया जा सकता है। और अगर तुम थोड़े भी समझदार हो तो उस चौंकाई हुई हालत का तुम उपयोग कर लोगे। अगर तुम बिल्कुल नासमझ हो तो तुम फिर करवट लेकर सो जाओ और शायद गुरु को एक गाली भी दे दोगे कि क्यों नाहक नींद खराब कर रहे हो; अपना काम देखो और हमें सोने दो।
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिए जगाइ।।
सबद सरोवर सूभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।
वह जो शब्द का सरोवर है, वह लबालब भरा है परमात्मा के जल से।
... हरिजल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।।
और जो उसे प्रेम से पी लेते हैं, वे अखिल ब्रह्म के साथ एक हो जाते हैं।
उस जल को पीने की कला प्रेम है। तुम उसे अपनी प्यास के कारण भी पी सकते हो; लेकिन तब परमात्मा का तुम उपयोग कर रहे हो। तुम उसे प्रेम से भी पी सकते हो, तब तुम परमात्मा को समर्पित हो रहे हो।
इसे थोड़ा समझ लो। तुम ऐसी भी प्रार्थना कर सकते हो कि तुम चाहो कि परमात्मा तुम्हारे काम आ जाए। तब तुम्हारी जरूरत महत्वपूर्ण है, परमात्मा गौण है। और जिसने परमात्मा को गौण रखा, वह नास्तिक है। और तुम इसलिए भी प्रार्थना कर सकते हो, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना आनंद है। वह तुम्हारा प्रेम है। तुम इसलिए नहीं कि कुछ चाहते हो, इसलिए नहीं कि कुछ हो जाएं; सिर्फ इसलिए प्रार्थना करते हो जैसे कि कोई प्रेम करता है। तुमने कभी पूछा कि प्रेम किसलिए करते हो? तुम कहोगे, बस प्रेम प्रेम
के लिए, प्रार्थना प्रार्थना के लिए, ध्यान ध्यान के लिए।
दादू कहते हैंः दादू पीवै प्रीति सौं, ... जो प्रेम से पीता है--प्रेम
का मतलब ही यह है कि जो साधन की तरह नहीं पीता, बल्कि साध्य की तरह पीता है।
... तिनके अखिल सरीर। वह ब्रह्मांड के साथ एक हो जाता है। उसकी सब दूरी मिट जाती है, फासले गिर जाते हैं। वह एक बूंद की तरह उस सागर में उतर जाता है।
वह सागर पूरा का पूरा उस बूंद में उतर जाता है।
कहां से शुरू करो? यात्रा की शुरुआत है तुम्हारे ओंकार के नाद से।
तुम्हारा ओंकार का नाद सिर्फ तैयारी है, पूर्व तैयारी है। फिर जब असली नाद उठने लगे और तुम्हारी वीणा उस नाद से थिरकने लगे, तब अपने हाथ खींच लेना, तब तुम एक अनूठे अदृश्य अनाहत संगीत से भर जाओगे। तुम नादब्रह्म से भर जाओगे। उस भरी हुई अवस्था में नशा होगा एक।
उमर खय्याम उसी शराब की बात कर रहा है। वह कोई इस संसार की शराब की बात नहीं कर रहा है। तब तुम मदमाते जीओगे। तब तुम्हारे उठने बैठने में रस

छलकेगा। तुम्हारे पास जो आ जाएगा, तुम्हारी गंध जिसको छू जाएगी, वह नशे में डूब जाएगा और नाचने लगेगा।
उस मदमस्त दशा को ही जो पा लेता है उसे सत्य की प्रतीति होनी शुरू होती है। उस बेहोशी में ही मिलता है सत्य, क्योंकि वह बेहोशी ही सबसे बड़ा जागरण है। और जिसको मिला सत्य--संतोष सत्य की छाया है--उसके जीवन में परम संतोष छा जाता है।
परमात्मा को साध्य समझना, साधन नहीं। प्रेम से पीना, कारण से नहीं। लाभ की दृष्टि से मत सोचना, नहीं तो वंचित रह जाओगे। उपयोगिता का भाव ही मत ले जाना वहां। जो उपयोगिता से चलता है, वह हमेशा बाजार में पहुंच जाएगा, मंदिर कभी नहीं आ सकता। उपयोगिता के सभी रास्ते बाजार की तरफ जाते हैं।
वहां तो प्रेम के दीवानों की बस्ती है। मंदिर की तरफ आना हो तो पागल प्रेमियों की तरफ आना होता है।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।
सबद सरोवर सुभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।।
वह सरोवर तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। जिस क्षण तुम राजी हो जाओगे, अचानक पाओगे, आंख के सामने ही सरोवर है। जिस क्षण तुम्हारे भीतर का अनाहत बज उठेगा, अचानक पाओगे, सब तरफ वही सरोवर है। हैरान होओगे, इतने दिन तक कैसे चूकते रहे। मछली सागर में प्यासी!
कबीर कहते हैंः एक अचंभा मैंने देखा! वह अचंभा यह है कि मछली सागर में प्यासी है। वह अचंभा तुम्हारे संबंध में है। वह अचंभा मैं भी देखता हूं। चारों तरफ सरोवर भरा है। तुम सरोवर में ही पैदा हुए हो। तुम्हारे रोएं- रोएं में सरोवर की तरंगें हैं। तुम सरोवर हो और प्यासे!

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
छठवां प्रवचन

जिज्ञासा-पूर्तिः तीन

पहला प्रश्नः क्या भय नकारात्मक होते हुए भी सोए को जगाने या होश को बढ़ाने में सहायक है? बहुत से झेन गुरु शिष्यों को क्यों हमेशा डंडे से ही भयभीत करते हैं? बहुत बार आपने भी हमें ऐसी कहानियां सुनाई हैं और डंडा भी मारा है।

झेन गुरु डंडे का उपयोग करते हैं लेकिन तुम्हें भयभीत करने को नहीं। गुरु के हाथ में डंडा देख कर तुम्हें भय लग सकता है। यह तुम्हारी व्याख्या है। यह तुम्हारी भूल है।
गुरु के हाथ में डंडा देख कर तुम भयभीत हो जाते हो क्योंकि डंडे में तुमने सदा भय ही देखा है, गुरु का प्रेम नहीं, करुणा नहीं। उस तरफ तुम्हारी आंखें अंधी हैं। और उस तरफ तुम्हारे हृदय में कोई संवेदना नहीं होती। गुरु डंडा उठाता है करुणावश--तुम्हें भयभीत करने को नहीं, तुम्हें जगाने को। चोट भी करता है। तुम्हें मिटाने को नहीं, तुम्हें बनाने को। मारता भी है ताकि तुम्हें जिला सके। लेकिन तुम्हें तो लगेगा भय। तुम्हें तो हर चीज से भय लगता है। क्योंकि भय तुम्हारे भीतर है। और जब तक तुम्हारे भीतर का भय न मिट जाए तब तक तुम गुरु की करुणा को समझ भी न पाओगे। उसकी करुणा भी तुम्हें भयभीत करती ही मालूम पड़ेगी।
बहुत बार मुझसे लोग पूछते हैं कि झेन गुरुओं ने तो डंडा उठाया है लेकिन ऐसा भारत में जैन गुरु हुए हैं, बौद्ध गुरु हुए हैं, हिंदू गुरु हुए है; उन्होंने तो ऐसा डंडा नहीं उठाया। क्या कारण है?
कारण इतना ही है कि झेन गुरु की करुणा तुम्हारे गुरुओं से ज्यादा है। भारत के गुरुओं की एक धारणा है--वह है, तटस्थ होने की। तुम्हारे प्रति एक तटस्थता को साधने की उनकी दृष्टि है। तुम लाभ ले सको तो ले लो; न ले सको, तुम्हारी मर्जी। लेकिन भारतीय परंपरा, भारतीय गुरु सीमा से बाहर जाकर तुम्हें लाभ पहुंचाने की चेष्टा न करेगा। वह उदासीन रहेगा।
करुणा की कमी है। क्योंकि करुणा उदास नहीं हो सकती। और करुणा उदासीन
भी नहीं हो सकती। करुणा तो आएगी तुम्हारे मार्ग में। तुम्हें खींचेगी तुम सोए हो, तो तुम्हें हिलाएगी।
भला तुम्हें अपनी नींद में लगे कि यह तो मेरा सपना तोड़ दिया। कितना प्यारा सपना था! भला तुम्हें नींद में लगे कि यह आदमी तो दुष्ट है, हिंसक है। मेरी सुखद-सुहावनी नींद थी, नष्ट कर दी, चौंका दिया। सपने में तो प्रकाश से भरा था, जाग कर तो रात अंधेरी मालूम पड़ती है। सपने में थोड़ी बहुत रोशनी थी वह भी इस आदमी ने बुझा दी और जगा कर इस महाअंधकारपूर्ण रात्रि में छोड़ दिया।
यह तुम्हारी दृष्टि है क्योंकि तुम्हें जागने का अभी रस ही नहीं है। तुम्हें जागने का अभी पता ही नहीं है। तुम्हें यह भी पता नहीं है कि सपने के प्रकाश से जागने का अंधकार करोड़ गुना मूल्यवान है, क्योंकि सत्य है। मूल्य तो सत्य का है। तुम्हें डराने को नहीं, तुम्हें जगाने को झेन गुरुओं ने डंडा उठाया है।
और यह भी ठीक है कि मैंने भी तुम्हें बहुत बार डंडे मारे हैं। उतने स्थूल नहीं कि तुम्हारा सिर तोड़ दें। लेकिन तुम्हारा अहंकार तोड़ सकें, उतने सूक्ष्म जरूर! उतने स्थूल नहीं कि तुम्हारे शरीर को चोट पहुंचाएं लेकिन उतने सूक्ष्म जरूर कि तुम्हारे भीतर छिद जाएं और हृदय तक तीर की तरह पहुंच जाएं। निश्चित ही मैंने वे डंडे मारे हैं।
लेकिन अगर तुम्हें लग गए होते तो यह प्रश्न न उठता। वे लगे नहीं। मेरी तरफ से कोशिश जारी रही, तुम्हारी तरफ से बाधा जारी रही। तो ऐसा भी हो सकता है, कोई तुम्हें जगाए, हिलाए, लेकिन तुम न जागो। तुम और जिद में गहरी नींद में सो जाओ। तुम जाग भी जाओ तो आंख न खोलो, और जिद पकड़ लो आंख को बंद ही रखने की। नहीं जागने की जैसे तुमने कसम खा ली हो। तो हिला कर भी तो तुम्हें नहीं

जगाया जा सकता। और जो आदमी सोया हो वह तो जगाया भी जा सकता है लेकिन जिसने सोए रहने की जिद कर रखी हो, वह तो जागा ही हुआ है, सिर्फ अहंकार की वजह से सो रहा है, उसे तो उठाना भी बहुत मुश्किल है।
सच है! मैंने भी तुम्हें डंडे मारे हैं, लेकिन तुम्हें लगे नहीं। जिस दिन लग जाएंगे उस दिन डंडे नहीं रह जाएंगे। उसी दिन तुम पाओगे कि डंडा तो खो गया। एक करुणा की वर्षा तुम पर हो जाएगी। उस दिन जो कांटे की तरह लगा था कल तक, अचानक फूल हो जाएगा। उस दिन गुरु का डंडा तुम्हारे ऊपर फूलों की वर्षा मालूम होगी। तो यह प्रश्न न उठता।
तुम भी तैयार होओ, थोड़ा अपने को उघाड़ो, ताकि डंडा तुम्हारे मर्मस्थल में लग जाए। मैं तुम्हें रोज-रोज डंडे मारता हूं, तुम रोज-रोज मलहम-पट्टी करके वापस आ जाते हो। तुम फिर वही हो। तुम्हें थोड़ा चौंकाता हूं, तुम करवट लेकर फिर सो जाते हो।
काफी समय ऐसे ही व्यतीत किया। और ज्यादा समय किसी के भी हाथ में नहीं है। कोई भी नहीं जानता, कल होगा, नहीं होगा! इसलिए कल पर बहुत भरोसा मत करो।
आज ही उपयोग कर लो। जागना है, आज ही जाग जाओ, कल पर मत टालो।
लेकिन क्षुद्र बातों के लिए आदमी विराट बातों को टाले चला जाता है।
दुकान है, बाजार है, परमात्मा को टाल देता है, मोक्ष को टाल देता है। नोन-तेल, लकड़ी खरीदना है, उसमें निर्वाण को छोड़ देता है।
एक छोटे से स्कूल में ऐसा हुआ, शिक्षक पूछ रहा था बच्चों से कि तुममें
से जो स्वर्ग जाना चाहते हों, हाथ ऊपर कर दें। एक को छोड़ कर सबने हाथ ऊपर कर दिए। शिक्षक थोड़ा हैरान हुआ। उसने पूछा कि अब तुममें से जो नरक जाना चाहते हों वे हाथ ऊपर कर दें। किसी ने भी हाथ ऊपर न किया, उसने भी नहीं, जो स्वर्ग के समय भी हाथ नीचे रखे बैठा रहा था। शिक्षक ने उससे पूछाः तेरी क्या मर्जी है? न तुझे स्वर्ग जाना है, न तुझे नरक जाना है, तुझे जाना कहां है? उसने कहाः मेरी मजबूरी यह है कि मेरी मां ने घर से चलते वक्त कहा, स्कूल से छुट्टी होते ही सीधे घर आना।
स्वर्ग को छोड़ने को राजी हो तुम क्योंकि कुछ छोटी-मोटी बात कहीं इस संसार में अटकी रह गई है जिसे पूरा करना है। छुट्टी होते ही घर लौट कर आना है!
और ऐसा भी होता कि तुम बिल्कुल ही सोए होते तो भी ठीक था। बिल्कुल ही
जो सोए हैं वे तो यहां आए ही नहीं। तुम्हारी नींद में थोड़ा सा भान आना शुरू हो गया है। तुम्हारी नींद गहरी नहीं है अब। जरा सी... जरा सी हिम्मत, जरा से साहस और सहयोग की जरूरत है कि तुम जाग जाओगे।
और सोकर तो कुछ भी किसी ने कभी पाया नहीं है; सिर्फ खोया है। और जाग कर
सब मिल जाता है। कुछ-कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता है।
यह सौदा बड़ा सस्ता है। खोते तुम कुछ भी नहीं, पाते सब हो। फिर भी तुम हिम्मत नहीं जुटा पाते हो। यह गणित बिल्कुल सीधा है।
जब मेरा डंडा तुम्हारे सिर पर पड़े तो तुम बचाव मत करना। उसे पड़ ही जाने देना। और जब तुम्हारे हृदय में तीर लगे तो तुम रुकावट मत डालना, तुम उसे छिद ही जाने देना। तुम मलहम-पट्टी बंद करो। तुम मरने को राजी हो जाओ क्योंकि वही पुनर्जन्म है। वही पुनरुज्जीवन का सूत्र है।

दूसरा प्रश्नः क्या एक कवि को भीतर प्रविष्ट होने के लिए काव्य-सर्जना के साथ-साथ ध्यान की साधना भी आवश्यक है? यदि आवश्यक है, तो रवींद्रनाथ और खलील जिब्रान ने अपने जीवन में कौन सी ध्यान-साधना का आश्रय लिया? यदि आवश्यक नहीं, तो बताएं कि काव्य-सृजना ही कैसे जीवन-साधना बन जाए कि कवि को एक चोर की भांति भीतर न घुसना पड़े। वह भी एक अतिथि की तरह मंदिर में प्रविष्ट होने का आनंद अनुभव कर सके।

दो बातेंः पहली, अगर कवि जन्मजात प्रतिभा का है, तब तो किसी और साधना
की कोई जरूरत नहीं। और अगर कवि केवल तुकबंद है, कोशिश कर करके कविता बना लेता है, व्यवस्था और शास्त्र से भला वह कवि हो, प्राण से और आत्मा से कवि नहीं है, तो ध्यान-साधना की जरूरत पड़ेगी।

प्रतिभा से कवि का अर्थ है, जन्मजात स्फुरण। उसका अर्थ है, अनंत जन्मों में सौंदर्य की जो अभिलाषा, अनंत जन्मों में सौंदर्य का जो अनुभव, अनंत-अनंत जन्मों में अनंत-अनंत प्रकार से सौंदर्य को पीने का जो उपाय उसने किया है, वह अब उस जगह आ गया है कि उसका घट भर गया है। अब घट इतना भरा हुआ है कि ऊपर से बह रहा है; वही काव्य है प्रतिभाजन्य कवि में। रवींद्रनाथ या खलील जिब्रान प्रतिभाजन्य कवि हैं। वे अगर कविता न भी लिखते तो भी कवि थे। बुद्ध ने कोई कविता नहीं लिखी लेकिन बुद्ध कवि हैं। उनके उठने में काव्य है, उनके बैठने में काव्य है, उनकी मुद्रा-मुद्रा कविता है, उनकी आंख की पलक का हिलना एक महाकाव्य है। उनकी आंख के पलक के सामने कालिदास फीके होंगे। उनके उठने की मधुरिमा में बड़े से बड़े कवि हार जाएंगे। उनका जीवन काव्य है।
जरूरत नहीं है कि प्रतिभाजन्य कवि कविता लिखे ही। उसके होने में उसके रोएं-रोएं में काव्य सिक्त होता है। वह बोलता है तो कविता बोलता है। चुप होता है, तो उसकी चुप्पी में काव्य होता है।
तो बहुत प्रतिभाजन्य कवियों ने कविता लिखी ही नहीं। जीसस, बुद्ध, जरथुस्त्र, लाओत्सु--कोई कविता नहीं लिखी। लेकिन जो भी उन्होंने कहा है, वह सभी काव्य है। नहीं कहा है, वह भी काव्य है। उनसे कुछ और निकल ही नहीं सकता। जैसे गुलाब के पौधे से गुलाब का फूल निकलता है, ऐसे उनसे जो निकलता है वह काव्य है। उनमें से कुछ ने कविता की है। उपनिषद के ऋषियों ने की है, वेद के ऋषियों ने की है। उन्होंने अनूठे छंद गाए। वह गौण बात है, वे गाएं, न गाएं।
लेकिन प्रतिभाजन्य अगर क्षमता हो, तो कोई और साधना की जरूरत नहीं है। काव्य ही तब पर्याप्त साधना है। तब सौंदर्य ही तुम्हारा सत्य है। तब सौंदर्य ही तुम्हारा परमात्मा है; उससे अन्य कोई भी नहीं। तब तुम सौंदर्य को खोजते-खोजते ही सत्य के पास पहुंच जाओगे। तब तुम गीत को साधते-साधते ही पाओगे कि गीतकार भी सध गया।
इसे थोड़ा समझना। थोड़ा बारीक है। जब गीतकार गीत को साधता है, तो अकेला गीत थोड़े ही साधेगा, गीतकार भी सधेगा। जब चित्रकार चित्र को बनाता है, तो अकेला चित्र थोड़े ही बनेगा, चित्रकार भी साथ-साथ बनेगा। दोनों का जन्म साथ-साथ होगा।
ऐसा समझो कि एक स्त्री को बच्चा पैदा हुआ; तुमने एक तरफ से देखा है, तो तुम कहते हो कि बच्चे का जन्म हुआ। दूसरी तरफ से देखो, तो मां का भी जन्म हुआ, क्योंकि इसके पहले वह मां न थी। दो जन्म हैं उस दिन। बच्चा तो एक तरफ से देखने पर तुम कहते हो। दूसरी तरफ से मां भी जन्मी है। क्योंकि अब तक वह एक साधारण स्त्री थी। मां और स्त्री में बड़ा फर्क है। मां होना एक अलग ही अनुभव है, जो साधारण स्त्री को उपलब्ध न था। मां होना तो ऐसे है, जैसे वृक्ष में फल लगते हैं। मां न होना ऐसा था जैसा वृक्ष बिना फल का रह जाता। एक बांझ दशा थी, जिसमें फूल न लगे, फल न लगे। एक पीड़ा थी। मां तो एक खिलाव है। जिस दिन बच्चा पैदा होता है, उस दिन दो जन्मते हैं। इस तरफ बच्चा, उस तरफ मां।
लेकिन दुनिया एक ही को देखती है क्योंकि मां का जन्म बड़ा सूक्ष्म है। उसके लिए न तो अस्पताल में भर्ती होने की जरूरत मालूम पड़ती है, न चिकित्सक की जरूरत पड़ती है, न दाई की। वह बड़ी सूक्ष्म भाव-दशा है। भीतर चुपचाप घटित हो जाता है। स्त्री विलीन हो जाती है, मां का आविर्भाव हो जाता है। जहां कल तक एक साधारण स्त्री थी, वहां अब एक मां है--भरी-पूरी!
जब कवि कविता को साधता है, तो कविता ही थोड़ी सधती है! दुनिया कविता को देखेगी। गहरी आंख होगी, तो उसके साथ-साथ कवि भी पैदा हो रहा है, कवि भी सध रहा है। चित्रकार भी पैदा हो रहा है चित्र के साथ। मूर्तिकार मूर्ति के साथ। तुम जो भी करते हो उससे तुम्हारा जीवन निर्मित हो रहा है। तुम जब भी स्रष्टा बनते हो, तब तुम्हारे भीतर परमात्मा करीब आ रहा है। परमात्मा का स्वरूप है स्रष्टा होना। तो जब भी तुमने कुछ सृजन किया तुम परमात्मा के पास पहुंचे। अगर तुम स्रष्टा हो गए, तो तुम परमात्मा हो गए।

परमात्मा को स्रष्टा कहना बड़ी मधुर बात है। इस कारण नहीं कि उससे कोई दर्शनशास्त्र की पहेली सुलझती है। नहीं, कुछ भी नहीं सुलझता। उलझन और बढ़ जाती है। मेरे लिए परमात्मा को स्रष्टा कहने का अर्थ बिल्कुल ही दूसरा है। वह अर्थ यह है, उसमें परमात्मा पर जोर नहीं है, स्रष्टा पर जोर है। वह अर्थ यह है कि जो भी स्रष्टा हो जाएगा, वह परमात्मा हो जाएगा। स्रष्टा होना परमात्मा का गुणधर्म नहीं है, परमात्मा का स्वभाव है।
जब भी तुम कुछ निर्मित कर पाते हो तब एक पुलक, तब एक आनंद एक अहोभाव तुममें भर जाता है। अभागे हैं वे लोग, जो अपने जीवन में कुछ भी सृजन नहीं कर पाते। जिन्होंने न कभी कुछ बनाया, न कभी बनाने का आनंद जाना। जिन्होंने कभी कुछ सृजन न किया, दो पंक्तियां गीत की पैदा न हुईं, एक मूर्ति न बनी, एक चित्र न उभरा जिनके जीवन में कुछ सृजन जैसी घटना न घटी। ऐसे लोग अभागे हैं।
तो अगर सौंदर्य की दिशा खुली है जन्म के साथ, तब तो किसी और साधना की जरूरत नहीं। तब कला ही ध्यान हो जाएगी। तब तुम कला में डूब-डूब कर ही उसे पा लोगे, जो परम कलाकार है। तब कला ही तुम्हारा मार्ग होगी।
परमात्मा तक पहुंचने के तीन मार्ग हैं। एक मार्ग है, सत्य के खोजी का-- ध्यान उसकी प्रक्रिया है। दूसरा मार्ग है, सौंदर्य के खोजी का--कला! इतना लीन हो जाना कला में कि कलाकार मिट जाए। उसकी प्रक्रिया है। और तीसरा है-- शिवम्। सत्यम्, सुंदरम्, शिवम्।
शिवम का अर्थ हैः शुभ। वह जीवन को निखारने और पवित्र करने की प्रक्रिया है। उसे योग कहो, तंत्र कहो, वह जीवन को निखारने की प्रक्रिया है शुभ की दिशा में। तुम धीरे-धीरे अपने को पवित्र और कुंआरा करते चले जाते हो। तुम सारी अपवित्रता छोड़ देते हो। तुम ऐसे हो जाते हो, जैसे सद्यःस्नात, सदा ही स्नान किए हुए हैं।
अगर नीतिशास्त्र अपनी परम ऊंचाई पर पहुंचे तो वह शिवम का मार्ग है।
तब तुम आचरण को शुद्ध करते हो, परिशुद्ध करते हो, निखारते हो। निखारते- निखारते एक दिन तुम पाते हो, तुम खो गए, सिर्फ आचरण की आभा बची। सिर्फ ज्योति बची, धुआं न रहा।
या सौंदर्य को खोजते हो तुम और सौंदर्य में लीन हो जाते हो। इतने लीन
हो जाते हो कि तुम बचते ही नहीं। तुम्हारी रेखा भी नहीं बचती। या तुम सत्य को खोजते हो तब तुम ध्यान में लीन होते हो।
सार की बात इतनी है कि इल तीनों मार्गों पर अगर गौर से खोजेंगे तो एक
ही सूत्र काम करता है, वह है, लीनता, तल्लीनता, डूब जाना। ये तीन मार्ग तीन नहीं हैं। दुनिया में तीन तरह के लोग हैं, मार्ग तो एक ही है। मगर जब तीन तरह के लोग चलते हैं तो वे तीनों अपने-अपने ढंग से चलते हैं।
बुद्ध भी उसी मार्ग पर चलते हैं, जिस पर रवींद्रनाथ चलते हैं। लेकिन बुद्ध सत्य की धारणा करते हैं, रवींद्रनाथ सौंदर्य की। अगर तुम बुद्ध से पूछोगे, तो वे कहेंगे सौंदर्य तभी सुंदर है, जब वह सत्य हो। अगर तुम रवींद्रनाथ से पूछोगे तो वे कहेंगे, सत्य तभी सत्य है, जब वह सुंदर हो। बस, इतना फर्क होगा। रवींद्रनाथ सौंदर्य के आधार पर सब तौलेंगे; बुद्ध सत्य के आधार पर सब तौलेंगे।
महावीर का मार्ग शिवम का मार्ग है। वे पवित्र आचरण को निखारते चले जाते हैं। अगर तुम उनसे पूछोगे, तो वे कहेंगे जो शुभ है, वही सत्य है। इसलिए महावीर के मार्ग पर अहिंसा महत्वपूर्ण हो गई, सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गई। क्योंकि हिंसा ही अशुभ है। अहिंसा शुभ है। बुद्ध के मार्ग पर ध्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। जैन तो धीरे-धीरे भूल ही गए ध्यान करना। क्योंकि उसका कोई संबंध ही न रहा--आचरण... !
रवींद्रनाथ या खलील जिब्रान--सौंदर्य, रस, उसका स्वाद!
ये तीन तरह के लोग हैं दुनिया में। यह त्रिवेणी है। मगर ये तीनों उस तीर्थ पर मिल जाते हैं, जहां परमात्मा है। वहां संगम हो जाता है।
तो जो प्रतिभाजन्य कवि है, प्रतिभा-संपन्न कवि है, उसे तो कुछ साधने
का सवाल ही नहीं है। लेकिन अगर कोई तुकबंद है--अब इसे थोड़ा समझ लेना। अगर कोई तकनीकी रूप से कवि है, और ऐसा हो सकता है कि बड़ा कवि हो, सारी दुनिया को

धोखा दे दे, अपने को धोखा न दे पाएगा। और अगर दुनिया को धोखा देने के कारण भरोसा कर ले कि मैं कवि हूं, तो बड़ी भ्रांति में पड़ जाएगा।
क्योंकि या तो काव्य बहता है हृदय की रस-धार से, या मस्तिष्क से तुम काव्य का निर्माण करते हो। हृदय से तो होता है सृजन, क्रिएशन; और मस्तिष्क से होता है कंस्ट्रक्शन, निर्माण। इन दोनों में बड़ा फर्क है। क्रिएशन और कंस्ट्रक्शन का फर्क बड़ा भारी है।
सृजन का तो अर्थ होता है, शून्य से लाना अस्तित्व को। जहां कुछ भी न था, वहां अचानक शून्य से कुछ अवतरित होता है। तुम भी नहीं थे और शून्य से कुछ उतरता है, वहां तो काव्य है, असली काव्य है। और दूसरा एक काव्य है, जहां तुम्हारा मस्तिष्क काम करता है। तुम जमाते हो, खोजते हो, सुंदर शब्द बिठाते हो, व्याकरण, छंद का शास्त्र, सब तरह से मात्राएं, संगीत सब व्यवस्थित कर देते हो कि कोई तुम्हारे गीत को देखे, तुम्हारी कविता को देखे, तो एक भूल न निकाल पाए। लेकिन वह कविता वैसी ही है, जैसे किसी मुर्दे को कोई डाक्टर जांचे और एक भी बीमारी न खोज पाए। माना कि बीमारी बिल्कुल नहीं है, मुर्दा बिल्कुल स्वस्थ है, लेकिन मुर्दा है।
दुनिया में सौ कवियों में निन्यानबे तुकबंद होते हैं। उनमें से कई तो बहुत प्रसिद्ध हो जाते हैं क्योंकि तकनीकी ढंग से उनकी कुशलता बड़ी प्रगाढ़ होती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है, असली कवि उनके सामने फीका पड़ जाता है। क्योंकि असली कवि व्याकरण और छंद के पूरे नियम पालन नहीं कर पाता। असली कवि पूरी तरह अनुशासनबद्ध नहीं हो पाता। असली कवि के भीतर ऐसी धारा बह रही है बांध तोड़ कर बहने लगती है, सीमाएं छोड़ देती है। वह पूर आई नदी है। वह नियम नहीं मानती। इतने जोर से आती है धारा कि कवि खुद बह जाता है; कौन नियम को सम्हाले!
लेकिन जो नकली कवि है, वह नियम को बांध लेता है। वह एक-एक हिसाब से सारी चीज सजाकर रख देता है। उसके काव्य में तुम्हें भूल न मिलेगी--काव्य भी न मिलेगा। सब नियम पूरा होगा, प्राण न होंगे। लाश सजी हुई रखी हुई होगी-- बिल्कुल असली का धोखा दे। प्लास्टिक के फूल होंगे, जो कभी न मुर्झाएंगे। और कभी-कभी ऐसे लोग बहुत लोगों को धोखा दे देते हैं, क्योंकि साधारण आदमी की काव्य की पहचान कहां? साधारण आदमी का काव्य से संबंध क्या? लेकिन ऐसे लोग चाहे कितने ही महत्वपूर्ण हो जाएं, ज्यादा देर तक उनका महत्व टिकता नहीं, खो जाता है। पुच्छल तारों की तरह वे किसी रात में चमकते हैं और विलीन हो जाते हैं। ध्रुवतारा वे नहीं हो पाते, ऐसा अगर तुम्हारा काव्य हो कि तुम तुकबंदी कर रहे हो, तुम चेष्टा-आयोजन कर रहे हो, तुम अपनी तरफ से निर्माण कर रहे हो, तो फिर तुम्हें ध्यान की जरूरत पड़ेगी। ऐसा काव्य काफी नहीं होगा। ऐसा काव्य वस्तुतः काव्य है ही नहीं। वह एक उपक्रम है, अनायास नहीं है।
अंग्रेजी का महाकवि कूलरिज जब मरा, तो उसके घर में चालीस हजार कविताएं अधूरी पाई गई। उसने जीवन में कुल सात कविताएं पूरी कीं। उसके मित्रों ने सैकड़ों बार उससे कहा कि तुम सात कविताओं के बल पर महाकवि हो गए हो; अगर तुम्हारी ये सारी कविताएं पूरी हो जाएं तो संसार में तुम्हारा मुकाबला ही न रहेगा किसी भाषा में।
लेकिन कूलरिज कहता कि पूरा करना मेरे बस में नहीं है। ये सात भी मैंने पूरी नहीं की हैं। नहीं तो मैं तो फिर चालीस हजार पूरी कर देता। ये उतरी हैं। जितनी उतरती है, उतनी मैं लिख देता हूं। मैं तो केवल माध्यम हूं। कभी तीन पंक्तियां उतरती हैं, तो तीन लिख देता हूं। चौथी नहीं उतर रही है, मैं क्या करूं? राह देखता हूं, प्रतीक्षा करता हूं, कभी उतरती है, दो-चार साल बाद अचानक चौथी कड़ी आ जाती है, तब मैं लिख देता हूं। मैं अपनी तरफ से नहीं जोड़ता। चौथी मैं जोड़ सकता हूं। तीन तैयार हैं, चौथी जोड़ दूं, पद पूरा हो जाएगा, लेकिन वह मेरी होगी और वह थेगड़े की तरह अलग मालूम पड़ेगी। वह परमात्मा से नहीं आई है।
ऐसा हुआ कि रवींद्रनाथ ने जब गीतांजलि का अंग्रेजी में अनुवाद किया,
तो वे संदिग्ध थे। क्योंकि कविता मातृ-भाषा में ही पैदा हो सकती है। दूसरे की भाषा में आयोजन करना ही होगा। वह सहज नहीं हो सकता। तो उन्होंने सी.एफ.

एण्ड्रूज को अपना अनुवाद दिखलाया। एण्ड्रूज ने कहाः सब ठीक है, सब ठीक है, सिर्फ चार जगह व्याकरण की भूलें हैं। एण्ड्रूज पंडित थे, भाषा के ज्ञाता थे। रवींद्रनाथ ने अहोभाव माना कि उन्होंने भूलें बता दीं। उन्होंने वे भूलें सुधार लीं।
फिर लंदन में अंग्रेजी के बड़े कवि ईट्स ने एक छोटा सा मित्रों का समूह बुलाया था--कवियों की एक गोष्ठी; रवींद्रनाथ को सुनने के लिए। रवींद्रनाथ ने कविताएं अपनी सुनाईं। ठीक उन्हीं चार जगहों पर अंग्रेज कवि ईट्स ने कहा, और तो सब जगह ठीक है, नदी ठीक बहती है, चार जगह कुछ अड़चन आ गई। चार जगह ऐसा लगता है, चट्टान पड़ गई, कुछ बाधा है।
रवींद्रनाथ तो चौंके, क्योंकि वह तो उनके अतिरिक्त किसी को भी पता नहीं है कि चार जगह सी.एफ. एण्ड्रूज का हाथ है। फिर भी उन्होंने पूछाः वे कौन सी चार जगह हैं? ईट्स ने ठीक वे ही चार स्थान बता दिए, जो एण्ड्रूज ने सुधरवा दिए थे कि इनमें काव्य नहीं है। भाषा है, गणित पूरा बैठ गया, व्याकरण ठीक बैठ गई, लेकिन काव्य की धारा टूट गई। तो रवींद्रनाथ ने अपने शब्द जो उन्होंने पहले रखे थे वे बताए। ईट्स ने कहा कि ये ठीक हैं। भाषा की भूल है, लेकिन काव्य सरलता से बहता है। चलेगा! काव्य भाषा की फिकर नहीं करता। काव्य के पीछे भाषा आती है।
तो अगर तुम गणित में कुशल हो काव्य के, उतने से काफी न होगा, क्योंकि तुम उसमें डूब न पाओगे। वह तुम्हारे प्राणों की पूरी पूर्णता न बन पाएगी। तुम्हारे प्राण पूरे-पूरे नाच न सकेंगे उसमें। तुम दूर ही खड़े रहोगे।
तुम्हें बिना छुए तुम्हारा काव्य निकल जाएगा। स्नान न हो पाएगा। तो ध्यान कैसे होगा? तो तुम्हें ध्यान अलग से करना होगा।
इसलिए ठीक कवि को अपने भीतर सोच लेना चाहिए, काव्य मेरी चेष्टा तो नहीं है! क्योंकि अक्सर ऐसा होता है। जवानी में सभी कविताएं करते हैं। तुकबंदी कौन नहीं कर सकता है? फिर कुछ तो उससे छुट जाते हैं, झंझट से कुछ उलझ जाते हैं।
मेरे गांव में जब मैं छोटा था तो बहुत कवि थे, एक हवा आ गई थी काव्य की,
और घर-घर में कविता होती थी। और हर सात-आठ दिन में एक कवि-सम्मेलन गांव में होता। तो जो भी थोड़ी बहुत तुकबंदी कर सकता था, वह भी लिखने लगा। क्योंकि जब सभी कवि हो रहे थे तो कौन पीछे रह जाता! और बड़ी वाहवाही होती थी, क्योंकि गांव के लोग सुनने इकट्ठे होते। उनको कविता का कोई अ ब स तो पता नहीं, तुकबंदी का ही मजा था। तुकबंदी खूब गतिमान थी।
फिर धीरे-धीरे वे सब कवि खो गए। अभी मैं पीछे एक दफा गांव गया तो मैंने पता लगाया कि वे जो पंद्रह-बीस कवि थे गांव में, वे सब कहां हैं? सब नोन-तेल-लकड़ी में लग गए। उनमें से कोई कवि न बचा। वे कहां गए? उनमें से कोई कवि था भी नहीं। जवानी का एक उभार था।
काव्य भी जवानी का एक उभार है। जब तुम्हारे हृदय में प्रेम के अंकुर आने शुरू होते हैं, तब तुम्हें लगता है, तुम भी कविता कर सकोगे। तब तुम्हें लगता है, बिना कविता किए तुम न रह सकोगे। तब तुम भी गाना चाहते हो।
मगर वह गुनगुनाहट बाथरूम की गुनगुनाहट है, उसे तुम बाहर मत लाना। सभी कवि नहीं हैं, सभी कवि होने को नहीं है। अपने घर गुनगुनाना, कोई स्त्री तुम्हारी कविता सुनने को राजी हो, उसको सुना देना, लेकिन उसको बाहर मत ले आना। वह तुकबंदी है। और बाहर की प्रशंसा कभी-कभी अटका देती है।
मैंने एक कवि के संबंध में सुना है कि वह अपने जीवन के अंत में किसी को
कह रहा था कि मैं बड़ी उलझन में पड़ गया कविताएं करके। जिंदगी मेरी बरबाद हो गई इन कविताओं में। जब शुरू किया था तब तो मैं सोचता था कि मैं कवि हूं। दस साल लग गए यह बात समझने में कि मैं कवि नहीं हूं। तो उसके मित्र ने पूछाः अगर समझ गए थे कि कवि नहीं, तो फिर बंद क्यों न कर दिया? उसने कहाः तब तक मैं काफी प्रसिद्ध हो चुका था; फिर बंद करना मुश्किल था। फिर अहंकार दांव पर लग गया। पूरी जिंदगी बरबाद हो गई।
अक्सर ऐसा होता है, जब तुम भूल समझ पाते हो तब तक भूल के कारण ही तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो चुकी होती है कि अब तुम पीछे भी कैसे लौटो? लोग तुम्हें कवि मानने लगे, महाकवि मानने लगे, चित्रकार मानने लगे। कोई

तुम्हें साधु मानने लगा, कोई तुम्हें संन्यासी मानने लगा, अब ये लोग तुम्हें झंझट में डाल देते हैं। अब तुम लौट नहीं सकते।
अगर कविता केवल तुकबंदी हो--कोई हर्जा नहीं है शब्दों से खेलने में, मजे से खेलो! लेकिन तब ध्यान अतिरिक्त चाहिए। अकेला काव्य काम न दे सकेगा और तुम प्रभु के मंदिर में अतिथि की तरह प्रवेश न कर पाओगे।

तीसरा प्रश्नः आपने उस दिन कहा कि प्रभु-मिलन के लिए प्यास तीव्रतम
हो और साथ ही धैर्य भी असीम हो; क्या ये दोनों स्थितियां असंगत नहीं हैं?

असंगत दिखाई पड़ती हैं; है नहीं। उनमें बड़ी गहरी संगति है। थोड़ा समझना पड़े।
ऊपर-ऊपर असंगत मालूम पड़ती हैं, भीतर जुड़ी हैं, भीतर सेतु है। समझें; वस्तुतः अगर प्यास बहुत गहरी हो, तो धैर्य बहुत गहरा होगा ही। क्योंकि बहुत गहरी प्यास का अर्थ ही यही होता है--बहुत गहरा भरोसा। जब तुम बहुत गहरी प्यास से परमात्मा के लिए भरे हो तो गहरी प्यास तभी हो सकती है, जब तुम्हारा भरोसा है कि परमात्मा है। नहीं तो गहरी प्यास कैसे होगी?
अगर तुम्हें जरा भी संदेह है परमात्मा के होने में, तो प्यास होगी ही नहीं। या ऊपर से चिपकाई गई होगी। असली न होगी, प्राण उससे जुड़े न होंगे। बौद्धिक होगी, समग्र न होगी। एक खंड कहता होगा, ठीक है, खोज लो; शायद हो! लेकिन बाकी हिस्सा कहते रहेगा, व्यर्थ परेशानी में पड़े हो।
तो तुम घड़ी भर भी प्रतीक्षा न कर सकोगे। घड़ी भर भी तुम्हें बैठने को कहा जाए तो वह जो हिस्सा विरोध में है और जो कहता है मुझे भरोसा नहीं है, वह कहेगा, क्यों समय नष्ट कर रहे हो? एक घंटा भर खराब हुआ। इतनी देर में कितने नोट नहीं बनते, कितना बैंक में बैलेंस जमा नहीं हो जाता, इतनी देर में क्या नहीं कर गुजरते! क्यों बैठे नाहक समय खराब कर रहे हो?
अगर प्यास गहरी है, तो उसका अर्थ ही यह होता है कि भरोसा परम है। परम भरोसे के बिना प्यास गहरी नहीं हो सकती। "है परमात्मा"--ऐसी बड़ी गहन धारणा है। ऐसी धारणा धारणा नहीं रह गई है, तुम्हारे प्राणों का उच्छ्वास हो गया है। श्वास लेते हो, श्वास जाती है, आती है और वही परमात्मा का भाव डोलता रहता है।
तब तो तुम कितनी ही प्रतीक्षा कर पाओगे। तब तो तुम कहोगे जन्मों- जन्मों बैठा रहूं तब भी तुम यह कभी न कहोगे कि बहुत देर हो गई प्रतीक्षा करते। "बहुत देर" में शिकायत है। और "बहुत देर" में यह भाव है कि मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं। तुम इतनी देर प्रतीक्षा करने योग्य हो भी? घड़ी भर ठीक थी, दो घड़ी ठीक थी, दिनों बीत गए, महीनों बीत गए, जन्म बीत गए, तुम इतने योग्य भी हो कि तुम्हारे लिए इतनी प्रतीक्षा करूं?
अगर परमात्मा पर भरोसा उठ आए तो उसकी योग्यता का ऐसा भाव होता है कि अनंतकाल तक भी प्रतीक्षा करूं और फिर तुम मिलो, तब भी ऐसा ही लगेगा कि मुफ्त मिल गए, बिना कुछ किए मिल गए। क्या, किया क्या था? खाली बैठे रहे थे। हाथ में माला चला ली थी, राम-नाम की चदरिया ओढ़ ली थी; किया क्या था? बैठे- बैठे मिल गए। तब तुम कहोगे, प्रसाद रूप परमात्मा का मिलन हुआ है। अपनी पात्रता न थी और मिलना हुआ है। उसकी महाकरुणा से मिलना हुआ है, अपनी योग्यता से नहीं।
इसलिए ध्यान रखो, तीव्रतम प्यास और असीम ध्यान और असीम धैर्य दोनों में असंगति नहीं है, बड़ी गहरी संगति है। और जिसकी तीव्र प्यास है, वही प्रतीक्षा कर सकता है। अब यह बड़े मजे की बात है। लेकिन तुम्हारे मन में ऐसा नहीं होता, उलटा होता है।
एक और प्रश्न है, जिस प्रश्न में यह पूछा गया है कि मेरा धैर्य तो असीम है, लेकिन प्यास गहरी नहीं है।
अगर प्यास गहरी नहीं है, तो जिसे तुम धैर्य समझ रहे हो, वह धैर्य नहीं है। तुम असल में मांग ही नहीं रहे हो, तो प्रतीक्षा करने का सवाल ही क्या है? तुमने मांगा ही नहीं है, तुमने चाहा ही नहीं है, अभीप्सा ही नहीं जगी, तो धैर्य का सवाल कहां उठता है? जिस व्यक्ति ने मांगा नहीं, वह कह सकता है,

ठीक है, बहुत धैर्य है, हम प्रतीक्षा कर सकते हैं। वस्तुतः उसकी आकांक्षा नहीं है, इसलिए वह तटस्थ है, उदासीन है। वह कहता है, होगा जब हो जाएगा। उसे फिकर ही नहीं है। वह दो कौड़ी का मानता है इस बात को कि होगा कि नहीं होगा। इस उदासीनता को तुम धैर्य मत समझ लेना। धैर्य उदासी नहीं है। धैर्य नकारात्मक अवस्था नहीं है, धैर्य बड़ी पाजिटिव, बड़ी विधायक अवस्था है। दूसरा एक प्रश्न है कि "प्यास तो बहुत तीव्र है, लेकिन धीरज बिल्कुल नहीं है।"
तो भी प्यास प्यास नहीं है, वासना है। तो भी तुम भूल कर रहे हो। तब वह
भी तुम्हारा लोभ है। जैसे तुम संसार की और चीजें पाना चाहते हो, ऐसे ही परमात्मा को भी पाना चाहते हो। जैसे और सब चीजों पर तुमने कब्जा कर लिया है, मुट्ठी बांध ली, तुम दुनिया को दिखाना चाहते हो, मेरी मुट्ठी में बड़ी कार ही नहीं है, परमात्मा भी है। बड़ा मकान ही नहीं है, धन-दौलत ही नहीं है, परमात्मा को भी बांध दिया है खंभे से। ये भी मेरी सेवा में लगे हैं। तब तुम जिसे प्यास कह रहे हो वह प्यास नहीं है, वह लोभ है, वासना है।
क्या फर्क होता है प्यास और लोभ में? प्यास में तुम जलते हो, अहंकार गलता है। एक ऐसी घड़ी आती है कि प्यास की अग्नि में तुम बिल्कुल ही शून्य हो जाते हो। अहंकार बिल्कुल ही पिघल जाता है। वासना में अहंकार बढ़ता है, मजबूत होता है। जितनी वासना तृप्त होने लगती है, उतना अहंकार मजबूत होने लगता है। प्यास अहंकार की मृत्यु है और वासना अहंकार का भोजन है। उसे तुम गौर से देखना।
तुम परमात्मा को कहीं अहंकार की एक सजावट की तरह ही तो नहीं चाहते हो?
कि तुम छाती फैला कर सड़क पर चल सको कि देखो, परमात्मा को भी न छोड़ा!
लोग अजीब-अजीब हैं। कोई किसी स्त्री को प्रेम करता है, प्यास होती है किसी की। मगर हो सकता है, किसी की प्यास नहीं होती; सिर्फ सुंदर स्त्री को साथ सड़क पर लेकर चलने का भाव होता है कि देख लो सबसे सुंदर स्त्री मेरे पास है। वह स्त्री को भी सिर्फ अहंकार का एक प्रसाधन समझ रहा है।
बहुत लोग हैं, वे स्त्रियों के लिए गहने लाते हैं--स्त्रियां समझती हैं, वे उनके लिए गहने लाते हैं। वे गलती में हैं। वे स्त्रियों पर गहने चढ़ाते हैं, वे भी अपने अहंकार पर चढ़ाते हैं। उनकी स्त्री पर हीरे चढ़े हैं। क्लब में जब वे जाएंगे, तब देख ले सारी दुनिया कि उनकी स्त्री पर हीरे चढ़े हैं। मैंने चढ़ाए हैं! पुरुष बड़ा अदभुत है। वह खुद हीरे-जवाहरात नहीं पहनता, स्त्री को पहना देता है। स्त्री खूंटी है, जिस पर वह टांगे रखता है। सुंदर स्त्री, हीरे-जवाहरात चढ़े--यह सब अहंकार का ही प्रसाधन है। और स्त्रियां बड़ी मस्ती में उनके साथ चलती हैं। नासमझ हैं। वे समझती हैं, यह हार उन्हीं के लिए लाया गया है। ये हीरे-मोती उन्हीं के लिए जुटाए गए हैं। जरा भी उनके लिए नहीं जुटाए गए हैं। यह समाज की आंखों के लिए हैं और स्त्री के माध्यम से पुरुष अपने अहंकार को खड़ा कर रहा है।
क्या तुम परमात्मा को भी ऐसा ही चाहते हो कि वह भी तुम्हारे अहंकार में एक आभूषण बन जाए? अगर तुम ऐसे ही चाहते हो, तो तुम जिसे प्यास समझ रहे हो, वह प्यास नहीं है। और तब धैर्य नहीं हो सकता। वासना में कहां धैर्य? वासना बड़ी अधीर, बड़ी अधीर है। वासना कहती है, अभी, इसी वक्त चाहिए। प्यास बड़ी गंभीर हैं, प्यास बड़ी गहरी है। प्यास कहती है जब भी मिलोगे, तभी जल्दी है। वासना कहती है, जब भी मिलोगे, तभी देरी हो चुकी।
तो इस सब को छांटना जरूरी है तुम्हारे भीतर। अगर तुम मेरी बात समझ लो,
तो जब सच्ची प्यास होगी, तो सच्चा धैर्य भी होगा। प्यास के साथ धैर्य होता ही है। इसको तुम कसौटी समझ लो। इन दो में से एक हो, तो कुछ गड़बड़ है। अगर ये दोनों साथ हों, तो ही समझना कि ठीक-ठीक तार जुड़े; अब वीणा बज सकती है; अब परमात्मा के हाथ इस वीणा से संगीत उठा सकते हैं; अब साज बैठ गया। जैसे वीणा के तार दो तरफ खूंटियों में बंधे होते हैं, ऐसे तुम्हारी वीणा के तार जब दो खूंटियों में बंध जाएं--गहरी प्यास और गहरी प्रतीक्षा; तब समझना कि बस, अब वीणा तैयार है। अब संगीत पैदा हो सकता है।
असंगति जरा भी नहीं हैं। असंगति तुम्हें दिखाई पड़ती है क्योंकि तुम्हें दो में से कोई भी एक को साधना आसान मालूम पड़ता है। या तो तुम साध

सकते हो प्यास को, क्योंकि वासना बन जाए प्यास तो कोई दिक्कत नहीं है। या तुम साध सकते हो प्रतीक्षा को। अगर उदासीनता हो, तो तुम्हें मतलब ही नहीं। मिले, न मिले; तुम बड़े प्रतीक्षा कर रहे हो।
यह बड़ा गहरा संगीत है, दो विपरीत के बीच उठने वाली बड़ी गहरी लयबद्धता है। जहां एक तरफ तुम गहरे प्यास से भरे हो--और प्यास ऐसी कि एक क्षण खो न जाए; और साथ ही तुम प्रतीक्षा से भरे हो कि अनंतकाल भी अगर प्रतीक्षा करनी पड़े, तो भी मैं राजी हूं।
क्यों, ये दोनों का मेल हो सकता है? प्यास तुम्हारी है, तुम्हारे कारण है; प्रतीक्षा उसके कारण है। प्रतीक्षा उसके कारण है कि वह इतना विराट है कि जल्दी की मांग बचकानी होगी। वह इतना महान है कि यह कहना कि अभी आ जाओ, नासमझी होगी, मूढ़ता होगी। तैयार होना होगा, अपने पात्र को खाली करना होगा। प्रतीक्षा उसके स्वभाव के कारण, प्यास अपने स्वभाव के कारण। प्यास अपने अनुभव के कारण कि जीवन के सब घाटों से पानी पी लिया, प्यास नहीं बुझी। जब सब घाट छान डाले, प्यास नहीं बुझी। सब सरोवर छान डाले प्यास नहीं बुझी। ऐसा कोई जीवन-अनुभव न छोड़ा, जहां प्यास के बुझने की जरा भी आशा दिखाई पड़ी, सपना झलका, वही गए, लेकिन खाली हाथ लौटे। सारा जीवन मृग-मरीचिका सिद्ध हुआ, इसलिए प्यास! अब तुझसे ही बुझेगी।
लेकिन अधैर्य नहीं। क्योंकि अधैर्य का मतलब यह होता है कि मैं पात्र होऊं या न होऊं, तू अभी मिल। धैर्य का अर्थ होता है कि मेरी पात्रता सधेगी, तब तो तू मिल ही जाएगा। अगर देर होती है, तो तेरे कारण नहीं; देर होती है, तो मेरी पात्रता के कारण। प्यास को जगाऊंगा, पात्रता को सम्हालूंगा और प्रतीक्षा करूंगा। जिस दिन भी पात्रता हो जाती है, फिर क्षण भर की देर नहीं होती।
कहावत है भारत में--"देर है, अंधेर नहीं!" वह बड़ी बहुमूल्य है। देर है तुम्हारे कारण; और अंधेर नहीं हो सकता, क्योंकि वह है। उसके होने के कारण अंधेर नहीं हो सकता। देर हो सकती है तुम्हारे कारण। अगर अंधेर होता, तो उसके कारण होता। लेकिन अस्तित्व सदा राजी है। जिस दिन तुम राजी हो, उसी दिन तार मिल जाता है।
भरो प्यास से और भरो प्रतीक्षा से भी। प्यास और प्रतीक्षा को साध लो
एक साथ, एक लयबद्धता में। जिस दिन भी सब ठीक बैठ जाता है, उसी दिन तुम पाते हो, संसार बिदा हो गया। सब तरफ परमात्मा खड़ा है।

चौथा प्रश्नः मुझे ऐसा समझ में आया कि आपने परसों कहा कि सब मन के रोग प्रेम की कमी से पैदा होते हैं।

निश्चित ही मन के सभी रोग प्रेम की कमी से पैदा होते हैं। लेकिन इस सत्य को समझना पड़े। जीवन में तीन घटनाएं हैं, जो बहुमूल्य हैंः जन्म, मृत्यु और प्रेम। और जिसने इन तीनों को समझ लिया उसने सब समझ लिया। जन्म है शुरुआत, मृत्यु है अंत, प्रेम है मध्य। जन्म और मृत्यु के बीच जो डोलती लहर है, वह प्रेम है।
इसलिए प्रेम बड़ा खतरनाक भी है। क्योंकि उसका एक हाथ तो जन्म को छूता
है और एक हाथ मृत्यु को। इसलिए प्रेम में बड़ा आकर्षण है और बड़ा भय भी। प्रेम में आकर्षण है जीवन का, क्योंकि उससे ऊंची जीवन की कोई और अनुभूति नहीं है।
इसलिए जीसस ने तो परमात्मा को प्रेम कहा। वस्तुतः प्रेम को परमात्मा कहा। बड़ी ऊंची तरंग है उसकी। उससे ऊंची कोई तरंग नहीं। कोई गौरीशंकर प्रेम के गौरीशंकर से ऊपर नहीं जाता। इसलिए बड़ा उद्दाम आकर्षण है प्रेम का। क्योंकि प्रेम जीवन है। लेकिन बड़ा भय भी है प्रेम का, क्योंकि प्रेम मृत्यु भी है।
इसलिए लोग प्रेम करना भी चाहते हैं और बचना भी चाहते हैं। यही मनुष्य
की विडंबना है। तुम एक हाथ बढ़ाते हो प्रेम की तरफ और दूसरा खींच लेते हो। क्योंकि तुम्हें जहां जीवन दिखाई पड़ता है उसी के पास लहर लेती मृत्यु भी दिखाई पड़ती है।

जो लोग जीवन और मृत्यु का विरोध छोड़ देते हैं, वे ही लोग प्रेम करने में समर्थ हो पाते हैं; जो यह बात समझ लेते हैं कि जीवन और मृत्यु विरोधी नहीं है। मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, वरन जीवन की ही परिपूर्णता है, परिसमाप्ति है। मृत्यु जीवन की शत्रु नहीं है, वरन जीवन का सार है, निचोड़ है। मृत्यु जीवन को मिटाती नहीं, थके जीवन को विश्राम देती है। जैसे दिन भर के श्रम के बाद रात्रि का विश्राम है, ऐसे जीवन भर के श्रम के बाद मृत्यु का विश्राम है।
मृत्यु के प्रति शत्रुता का भाव अगर तुम्हारे मन में है, तुम कभी प्रेम न कर पाओगे क्योंकि प्रेम में मृत्यु भी जुड़ी है। प्रेम संतुलन है जीवन और मृत्यु का, जन्म और मृत्यु का।
तो आकर्षित तो तुम होओगे लेकिन डरोगे भी। बढ़ोगे भी; बढ़ोगे भी नहीं। चाहोगे भी, और इतना भी न चाहोगे कि कूद पड़ो, छलांग ले लो। हमेशा अटके रहोगे, झिझके रहोगे, खड़े रहोगे किनारे पर। नदी में न उतरोगे प्रेम की।
और जब तुम प्रेम से वंचित रह जाओगे, तो तुम्हारे जीवन में हजार-हजार रोग पैदा हो जाएंगे। क्योंकि जो प्रेम से वंचित रहा, उसका जीवन घृणा से भर जाएगा। वही ऊर्जा जो प्रेम बनती, सड़ेगी, घृणा बनेगी। जो प्रेम से वंचित रहा, उसके जीवन में एक चिड़चिड़ाहट और एक क्रोध की सतत धारा बहने लगेगी। क्योंकि वही ऊर्जा जो बहती है, तो सागर तक पहुंच जाती, बंद हो गई। डबरा बनेगी, सड़ेगी--बहाव चला गया।
जीवन का अर्थ हैः बहाव, सतत सातत्य, सिलसिला, बहते ही जाना। जब तक कि सागर ही द्वार पर न आ जाए तब तक रुकना नहीं। जो प्रेम से डरा, वह रुक गया।
वह सिकुड़ गया, उसका फैलाव बंद हो गया।
अब ऐसा व्यक्ति जिसने प्रेम नहीं जाना, जीवन को भी नहीं जान पाएगा। क्योंकि प्रेम ही जीवन का मध्य है। ऐसा व्यक्ति सिर्फ घसीटेगा, जीएगा नहीं। उसका जीवन पंगु और लंगड़ाता हुआ होगा। लकवा लग गया जैसे किसी आदमी के प्राण में। सरकता है बैसाखियों के सहारे। अगर तुम गौर से देख सको, तो संसार में सौ में निन्यानबे आदमियों को बैसाखियों पर पाओगे। बैसाखियां सूक्ष्म हैं।
कोई धन की बैसाखी लगाए हुए है। प्रेम से चूक गया, अब वह धन से प्रेम कर रहा है। क्योंकि जीवित प्रेम से तो खतरा था, धन से प्रेम करने में कोई खतरा नहीं है। अगर तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो, तो खतरा है। तुम खतरे में उतर रहे हो, सावधान! क्योंकि व्यक्ति एक जीवित घटना है। तुम बदलोगे, तुम वही न रह जाओगे, जो तुम प्रेम के पहले थे। कोई प्रेमी प्रेम के बाद वहीं नहीं रह सकता, जो प्रेम के पहले थे। प्रेम आमूल बदल देता है; दोनों को बदल देता है, जो भी प्रेम में पड़ते हैं। दोनों के अहंकार को मटियामेट कर देता है। दोनों के अहंकार को तोड़ देता है।
यही तो कलह है सारे प्रेमियों के बीच! क्योंकि दोनों अपने अहंकार को बचाना चाहते हैं। और इसके पहले कि दूसरा मेरे अहंकार को तोड़ दे मैं चाहता हूं, उसका अहंकार तोड़ दूं। और वह चाहता है मेरा अहंकार तोड़ दे। सारे प्रेमी एक दूसरे पर आधिपत्य करने की कोशिश में लगे रहते हैं। जैसी गहरी राजनीति प्रेमियों में चलती है, कहीं भी नहीं चलती। प्रतिपल चौबीस घंटे उठते-बैठते एक राजनीति--कौन मालिक है?
प्रेयसी कहती है, मैं तुम्हारी चरणों की दासी हूं। उसकी आंखों में यह भाव बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। शायद यह चरणों की दासी होना उसके ढंग है मालकिन होने का। वह तुमसे कह रही है कि मैं तुम्हारे चरणों की दासी, ताकि तुम कहो कि नहीं-नहीं, तू तो मेरे हृदय की मालकिन है! अगर तुमने यह न कहा, तो वह कभी भी इस बात को क्षमा न कर सकेगी। मतलब ही और था। चरणों की दासी अगर तुमने मान ही लिया कि बिल्कुल ठीक! बिल्कुल ठीक कह रही है, तू चरणों की ही दासी है; तो वह तुम्हें कभी क्षमा न कर पाएगी।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने प्रेयसी से कह रहा था कि आऊंगा कल सांझ। पूरे चांद की रात है। चाहे आग बरसे, चाहे पहाड़ मेरे रास्ते में खड़े हो जाएं, चाहे सारा संसार विरोध करे, मगर कल आऊंगा। बिना देखे तुझे नहीं रह सकता। जब उतरने लगा सीढ़ियां तो बोला, आऊंगा जरूर, अगर पानी न गिरा!

प्रेमी जो कहते हैं, उसको सीधा-सीधा मत समझ लेना। उनके कहने के प्रयोजन और होते हैं। वे जो कहते हैं, उसका शाब्दिक अर्थ मत लेना। भीतरी आकांक्षा कुछ और होती है। शायद मुल्ला नसरुद्दीन सुनना चाहता था कि प्रेयसी भी यही कहेगी कि पहाड़ रोके, आग की वर्षा रोके तो भी तुम्हें बिना देखे कल न रह सकूंगी। लेकिन वह कुछ न बोली। उसने स्वीकार कर लिया कि बिल्कुल ठीक कह रहे हो, मेरे बिना देखे रहोगे कैसे? आना ही पड़ेगा। सब बात उतर गई। अब पानी गिरा तो न आ सकेगा, क्योंकि छाते में भी छेद है और अभी सुधरवाया नहीं है।
जीवन वही नहीं है, जो तुम्हारे शब्दों से झलकता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछती थी कि तुम मुझे सदा प्रेम करोगे, जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी? शरीर जरा-जीर्ण हो जाएगा, सौंदर्य जा चुका होगा, वसंत एक स्मृति हो जाएगा और पतझड़ ही बचेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला ने कहाः सदा करूंगा प्रेम। प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़ी है, जो बदल जाए! सिर्फ एक बात पूछना चाहता हूं कि तू अपनी मां जैसी तो नहीं दिखाई पड़ने लगेगी?
फिर वे बूढ़े हो गए और एक दिन पत्नी कहने लगी कि तुमने कसम खाई थी मौलवी
के सामने कि सुख में या दुख में, हर हालत में तुम मुझे प्रेम करोगे; लेकिन अब तुम्हारा वह प्रेम न रहा। मुल्ला ने कहाः निश्चित कसम खाई थी कि सुख में और दुख में प्रेम करेंगे; लेकिन बुढ़ापे की तो कोई बात ही न उठी थी। शब्दों पर मत जाना। प्रेमी कह कुछ रहे हैं। उन्हें भी पता नहीं है, क्यों कह रहे हैं। शायद उनके अचेतन में ही डूबी होगी बात, उनके चेतन में भी खबर नहीं आई है। वे ही नहीं समझ पा रहे हैं कि क्या हो रहा है; लेकिन बड़ी गहरी राजनीति चल रही है। एक दूसरे पर कब्जा करने का भाव चल रहा है। उसी कब्जे में कलह है और संघर्ष है।
तो फिर इस भय से लोग व्यक्तियों को प्रेम करना ही बंद कर देते हैं। वस्तुओं को प्रेम करते हैं। धन को प्रेम करते हैं, मकान को प्रेम करते हैं, कार को प्रेम करते हैं, जानवरों को प्रेम करते हैं, कुत्ता-बिल्ली पाल लेते हैं। पश्चिम में बहुत लोग कुत्ता-बिल्ली पाले हुए हैं। आदमी से प्रेम करना कठिन हो गया है। कुत्ता सदा ठीक है। किसी तरह की राजनीतिक दांव-पेंच खड़े नहीं करता। मारो, तो भी पूंछ हिलाता है। डांटो, तो भी पूंछ हिलाता है। कुत्ता बिल्कुल कूटनीतिज्ञ है, डिप्लोमैट है।
और कुत्ते सब मन में सोचते होंगे कि आदमी भी कैसा बुद्धू है! सिर्फ पूंछ! और तुम उसे राजी कर लो। सिर्फ पूंछ को हिलाओ और उनका क्रोध नदारद हो जाता है। तुम कितनी ही भूल-चूक करो, सब क्षमा हो जाती है। आदमी भी कैसा बुद्धू है!
लेकिन कुत्ते समझ गए हैं। उन्होंने मेक्यावलि और कौटिल्य सबको समझ लिया है कि सार कितना है! सार इतना है, खुशामद में सार है। खुशामद करो और मालिक बन जाओ। वे अपनी राजनीति चला रहे हैं। लेकिन आदमी के लिए सुविधापूर्ण मालूम पड़ता है, कोई झंझट तो नहीं। कुत्ता सदा पूंछ हिलाता रहता है। सदा स्वागत के लिए खड़ा रहता है।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि सब जमाना बदल गया। वक्त खराब आ गया। पहले मैं घर आता था तो पत्नी चप्पल लेकर हाजिर होती थी, कुत्ता भूंकता था। अब हालत बिल्कुल बदल गई है, पत्नी भौंकती है कुत्ता चप्पल लेकर हाजिर होता है। तो मैंने उनसे कहाः तू नाहक परेशान हो रहा है। सेवा तो वही की वही है, चप्पल भी मिल रही है, भौंकना भी मिल रहा है। इसमें इतना परेशान होने की कोई जरूरत नहीं।
लोग डर जाते हैं, व्यक्तियों से प्रेम करने से, सिकुड़ जाते हैं। फिर वस्तुओं से प्रेम करते हैं, जानवरों से प्रेम करते हैं। इसलिए धन बड़ा बहुमूल्य हो जाता है। धन प्रेम है और सुरक्षित प्रेम है। रुपये से ज्यादा सुरक्षित और क्या है? जीवन में सब असुरक्षा है, रुपया सुरक्षा है। तिजोड़ी से ज्यादा स्थिर और कुछ भी नहीं मालूम होता। तिजोड़ी ही सनातन मालूम होती है, शाश्वत मालूम होती है।

पत्नी आज है, कल न हो; पति आज है, कल न हो; बेटा अभी है और कल श्वास टूट जाए! नहीं, यह सब धोखा है, इनमें से कोई कभी भी दगा दे जाता है। समझदार आदमी इन झंझटों में नहीं पड़ता। वह सीधा ऐसी चीज को प्रेम करता है, जो सदा रहेगी। वह असली गुलाब की तरह नहीं देखता क्योंकि सुबह तो खिलेगा, सांझ मुरझाएगा भी। इससे प्रेम करना ठीक नहीं। यह धोखा दे जाएगा सांझ को। तब तुम रोओगे। तो बेहतर है प्लास्टिक के फूल खरीद लाओ। वे सदा तुम्हारे साथ रहेंगे। वे कभी नष्ट न होंगे। तुम मर जाओगे, वे बने रहेंगे।
जब प्रेम जीवन में खो जाता है, या प्रेम की हिम्मत नहीं रह जाती, तो गलत प्रेम पैदा होते हैं, वे बैसाखियां हैं, जिन पर तुम लंगड़े होकर चलते हो। क्रोध, घृणा, झूठे प्रेम तुम्हारे जीवन को घेर लेते हैं; वही नरक है। और जब तक तुम उसके बाहर न आओ तब तक तुम्हारे जीवन में प्रार्थना तो पैदा ही न हो सकेगी; क्योंकि प्रार्थना तो प्रेम का नवनीत है। जिसने प्रेम जाना है--
अब इसे तुम थोड़ा समझ लो। जिसने प्रेम नहीं जाना, वह मनुष्य के प्रेम
से नीचे गिर जाता है। या तो पशुओं के प्रेम में, या वस्तुओं के प्रेम में। और भी नीचे गिर गया तो वस्तुओं के प्रेम में। जिसने प्रेम जाना वह ऊपर उठ जाता है। मनुष्यों से ऊपर, परमात्मा के प्रेम में। और अगर और भी गहरा प्रेम जाना, तो परमात्मा से भी ऊपर उठ जाता है--निर्वाण और मोक्ष; जहां कोई दूसरा व्यक्ति भी शेष नहीं रह जाता।
प्रेम का पतन--तो तुम कुत्ता बिल्ली को प्रेम करोगे। और पतन--तो तुम सामान को, कार को, मकान को, इनको प्रेम करोगे। प्रेम का आरोहण--तो परमात्मा को प्रेम करोगे। और आरोहण--तो परमात्मा भी शून्य हो जाएगा; सिर्फ निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य शेष रह जाएगा।
प्रार्थना नवनीत है प्रेम का। इसलिए मैं कहता हूं कि जिसके जीवन में प्रेम नहीं, हजार रोग पैदा हो जाते हैं। और रोग तो ठीक है, स्वास्थ्य की संभावना खो जाती है। रोग भी आदमी सह ले, अगर स्वास्थ्य की संभावना हो। बस, रोग ही रोग रह जाते हैं। स्वास्थ्य का कोई उपाय, व्यवस्था नहीं रह जाती। और तुम्हारे सारे धर्म तुम्हें प्रेम के संबंध में उलटा समझाते हैं। तुम्हारे सारे धर्म तुम्हें प्रेम का दुश्मन बनाते हैं। उनका ख्याल है कि अगर तुमने प्रेम किया तो तुम संसार में भटक जाओगे। और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुमने प्रेम न किया तो तुम संसार में सदा-सदा भटके रहोगे। तुमने अगर प्रेम किया तो तुम संसार के पार हो जाओगे।
क्यों? क्योंकि प्रेम में एक बड़ी कीमिया है; वह जन्म भी है और मृत्यु भी। तुम जब प्रेम में उतरोगे तो तुम पाओगे, जीवन भी अपनी चरम ऊंचाई पर पहुंच जाता है और मृत्यु भी--एक साथ! क्योंकि प्रेम में तुम इतने प्रफुल्लित होते हो, जितने कभी न थे। ऐसे खिलते हो जैसे कभी न खिले थे। और प्रेम में तुम्हारा अहंकार ऐसा मर जाता है, जैसा कभी न मरा था। तुम ऐसे मिट जाते हो जैसे कभी न मिटे थे।
यह अनूठी घटना, यह जगत का सबसे बड़ा रहस्यपूर्ण राज प्रेम में घटता है।
एक तरफ से तुम हो जाते हो, दूसरी तरफ से मिट जाते हो। एक तरफ से तुम विराट हो जाते हो, दूसरी तरफ से राख हो जाते हो। अहंकार तो बिल्कुल मिट जाता है। अहंकार के पार जो तुम्हारा सात्विक, शाश्वत, सनातन रूप है, वह अपनी परिपूर्ण प्रखरता में उग आता है।
प्रेम को जिसने जाना, उसने जन्म को भी जाना और मृत्यु को भी जाना। जो प्रेम में जीया और प्रेम में मरा, उसने जीवन के पूरे रहस्य को समझ लिया; तब उसे मृत्यु का कोई भय नहीं रहता क्योंकि उसने मर कर देख लिया। मर कर देख लिया कि मरना नहीं होता है। उसने मर कर देख लिया कि मैं तो बचा ही रहता हूं और प्रगाढ़ होकर बच जाता हूं। उसने मर कर देख लिया कि मैं अमृत हूं।
जिसने प्रेम में यह देख लिया, वह मृत्यु की प्रतीक्षा करता है। क्योंकि जब प्रेम की छोटी सी मृत्यु में इतना अपूर्व अमृत का स्वाद मिला, तो जब मृत्यु पूरी आएगी तब तो कहने ही क्या!
कबीर कहते हैंः कब मिटिहौं, कब भेटिहों, पूरन परमानंद! कब मिटूंगा, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। कब मिटूंगा, कब मिलूंगा, पूर्ण परमानंद से!

थोड़े से रस को जाना, अभी बूंद का स्वाद चखा, कब सागर का स्वाद चखूंगा।
बूंद से पता तो चल गया सागर के राज का। प्रेम से पता तो चल गया परमात्मा का, लेकिन बूंद एक कण भर! स्वाद मिल गया।
अब कब मिटिहौं, कब भेंटिहौं, पूरन परमानंद!
इसलिए मैं कहता हूं, प्रेम से बचना मत; प्रेम का अतिक्रमण करना है। प्रेम को नीचे मत उतारना पायदान पर; प्रेम को ऊपर ले जाना है। प्रेम से भागना मत, क्योंकि जो प्रेम से भागा, वह परमात्मा से भाग गया। प्रेम को जानना, प्रेम में प्रवेश कर जाना, क्योंकि जिसने प्रेम में प्रवेश किया-- प्रवेश करते वक्त तो वह प्रेम जैसा मालूम पड़ता था, जब तुम प्रवेश कर जाओगे तब तुम पाओगे, यह तो परमात्मा का द्वार था।
इसलिए जीसस ठीक कहते हैंः प्रेम परमात्मा है।
अप्रेम नरक है, प्रेम स्वर्ग है।

छठवां प्रश्नः आपने कल कहा है कि नचिकेता की तरह जीवन के द्वार पर दृढ़ होकर बैठ जाना। नचिकेता तो मृत्यु के द्वार पर बैठा था, पर आप हमें जीवन के द्वार पर दृढ़ होकर बैठने को किस भांति कहते हैं?

क्योंकि जीवन का द्वार ही मृत्यु का द्वार है।
जीवन मृत्यु दो हैं, इस भ्रांति को छोड़ो; अलग-अलग हैं, इस भ्रांति को छोड़ो; विपरीत हैं, इस भ्रांति को छोड़ो। जीवन-मृत्यु एक साथ हैं; जैसे पक्षी के दो पंख साथ हैं; तुम्हारा दायां और बायां पैर साथ हैं। दायां और बायां पैर दोनों के होने से तुम चलते हो। मृत्यु और जन्म दोनों से जीवन चलता है; वे दोनों पैर हैं।
यह बात ही छोड़ दो कि नचिकेता मृत्यु के द्वार पर बैठा था। वह जीवन के
ही द्वार पर बैठा था। जीवन का द्वार ही तो मृत्यु का द्वार है। अगर तुम गौर से देखोगे, तो प्रतिपल मृत्यु घटित होती है। ऐसा थोड़ा ही है कि सत्तर वर्ष बाद अचानक एक दिन मृत्यु आ जाती है! तो तुमने जीवन को समझा ही नहीं।
तुम जिस दिन से पैदा हुए हो, उसी दिन से मर भी रहे हो। प्रतिपल जीते हो, प्रतिपल मरते हो। मृत्यु तो श्वास की भांति है।
अगर तुम ठीक से समझो, बच्चा जब पैदा होता है, तो पहला काम करता है, श्वास भीतर लेने का। बाहर तो छोड़ने का कर ही नहीं सकता। क्योंकि श्वास भीतर है ही नहीं। तो पहला कृत्य है श्वास को भीतर लेना। श्वास को भीतर लेना जन्म है। उसके पहले बच्चा जीवित नहीं है।
इसलिए चिकित्सक और परिवार के लोग जल्दी करते हैं कि बच्चा चीखे, चिल्लाए, श्वास ले ले। अगर जरा देर हो गई और बच्चे ने रोना नहीं शुरू किया और श्वास नहीं ली--क्योंकि रोने के द्वारा ही बच्चा श्वास लेता है। सारा फेफड़ा अभी तो श्लेष्मा से भरा होता है क्योंकि श्वास का द्वार अभी बंद है। घरघराहट होती है छाती में। उसको ही हम रोना जैसा समझते हैं। उस घबड़ाहट और घरघराहट में ही बच्चा श्वास लेता है, जीवित हो उठता है। अगर पांच-सात मिनट तक श्वास न ले, तो गया।
तो जीवन का, जन्म की शुरुआत है श्वास के लेने से। फिर एक आदमी मरता है, यही बच्चा बूढ़ा होकर मरेगा, तो मरने का आखिरी काम क्या होगा? श्वास छोड़ना! लेना तो हो ही नहीं सकता आखिरी काम, क्योंकि अगर श्वास ले ली, तो मरोगे ही नहीं।
तो जन्म शुरू होता है श्वास भीतर लेने से, मृत्यु आती है श्वास बाहर जाने से। अगर वह बात तुम्हें समझ में आ जाए तो प्रतिपल तुम जन्म ले रहे हो, प्रतिपल तुम मर रहे हो, क्योंकि श्वास भीतर-बाहर आ रही है। जब तुमने श्वास भीतर ली तो तुम जीवित होते हो, जब तुमने श्वास बाहर छोड़ी तुम मरे।
पर यह इतनी तीव्रता से घट रहा है कि तुम्हें पता नहीं चलता। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि प्रतिपल जन्म है, प्रतिपल मृत्यु। पल का आधा हिस्सा जन्म है, पल का आधा हिस्सा मृत्यु। तुम एक दिन अचानक थोड़े ही मर जाओगे! रोज-रोज मर रहे हो। रोज-रोज मरते-मरते एक दिन मृत्यु का पलड़ा भारी हो जाएगा।

जन्म के समय जन्म का पलड़ा भारी था, मृत्यु के समय मृत्यु का पलड़ा भारी हो जाएगा।
भारी होने का केवल इतना ही अर्थ है कि जन्म के समय श्वास लेने का यंत्र मजबूत था, मृत्यु के समय श्वास लेने का यंत्र अब शिथिल हो गया, थक गया। अब श्वास और भीतर नहीं ली जा सकती। विश्राम में जाना चाहता है यंत्र। पंचतत्व लौट जाना चाहते हैं अपने पंचतत्वों में, थक गए! सत्तर वर्ष की दौड़-धूप--काफी थकान हो गई; अब लौट जाना चाहते हैं। फिर आने के लिए ताजे होंगे। जन्म और मृत्यु दो नहीं हैं। एक साथ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जहां भी तुम हो, मृत्यु के द्वार पर बैठे हो। और अगर ठीक समझ में आ जाए, तो तुम जहां बैठे हो, वहीं तुम नचिकेता हो। और वहीं से यम से तुम्हारी चर्चा शुरू हो सकती है।
यम से चर्चा तो प्रतीक है। यम से चर्चा का अर्थ ही यह है कि मृत्यु से संवाद करो। मृत्यु से संबंध जोड़ो। मृत्यु से थोड़ी बातचीत करो। डरो मत, भागो मत। मृत्यु से मुलाकात करो। इतना ही अर्थ है यम का। और मृत्यु तुम्हें कितने ही प्रलोभन दे, राजी मत होना। तुम तो कहना, अमृत से कम पर हम राजी नहीं हैं। मृत्यु से कहना कि तू हमें कुंजी बता दे अमृत की।
अब यह जरा मजे की बात है कि नचिकेता को अमृत की कुंजी चाहिए और पूछ रहा
है मृत्यु से; क्योंकि मृत्यु के पास कुंजी है। इसमें अचरज कुछ भी नहीं है। मृत्यु में ही प्रकट होता है अमृत।
क्यों ऐसा है? स्कूल में शिक्षक लिखता है काले ब्लैक बोर्ड पर सफेद खड़िया से। सफेद दीवाल पर नहीं लिखता; लिखेगा तो दिखाई ही न पड़ेगा। काला तख्ता चाहिए, सफेद, शुभ्र खड़िया चाहिए, तब लिखावट होती है तुम सफेद कागज पर लिखते हो, तो काली स्याही से लिखते हो। और सफेद रंग से लिखोगे, तो लिखना व्यर्थ ही चला जाएगा। विपरीत में चीजें प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती है। मृत्यु का जब ब्लैक-बोर्ड, काला तख्ता चारों तरफ से घेर लेता है, तभी तुम्हारे भीतर जो अमृत है वह अलग होकर दिखाई पड़ता है; उसके पहले दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई पड़ भी नहीं सकता।
जीवन से घिरे हो--वृक्ष, पक्षी, आकाश, मनुष्य; सब तरफ जीवन लहलहा रहा है, तुम भी जीवन हो; सब तरफ जीवन है। इस जीवन में तुम अपने जीवन को कैसे देख पाओगे? सफेद दीवाल पर सफेद अक्षर लिखे हैं। मृत्यु के क्षण में तुम्हारे चारों तरफ एक कालिमा घिर जाएगी। यम तुम्हें घेर लेगा। देखा है? यम की तस्वीर देखी, काली! भैंसे पर सवार, काले भैंसे पर सवार!
अब यह बड़े मजे की बात है। अगर यह गोरे लोगों ने किया होता, तो ठीक था। नीग्रो भी मृत्यु को काला ही मानते हैं। उनको तो मानना चाहिए बिल्कुल शुभ्र, सफेद चमड़ी! वे भी काला ही मानते हैं मृत्यु को। उनको समझ में आ जाएगी, तो वे बदल देंगे।
मैंने सुना है कि कुछ इस तरह का सिलसिला चलता है कि ईश्वर को काला चित्रित किया जाए क्योंकि नीग्रो ईश्वर काला होना चाहिए। यह तो सफेद चमड़ी वाले लोगों की करतूत है कि ईश्वर गोरा; और सफेद चमड़ी वालों की करतूत है कि शैतान काला। तो कुछ राजनीति चलती है। और कोई आश्चर्य न होगा कि नीग्रो तय कर लें कि हम तो अब मौत को सफेद रखेंगे; सफेद घोड़े पर सवार, सफेद।
मगर जंचेगी न! क्योंकि इससे कोई संबंध नीग्रो और सफेद चमड़ी का नहीं है। यह तो एक बहुत गहरा प्रतीक है कि जीवन एक श्वेत तरंग है, एक शुभ्र तरंग है, एक लहर है प्रकाश की।
तुमने कभी ख्याल किया? दीया जलता है, दीया बुझता है; अंधेरा सदा है। अंधेरे को न जलाना पड़ता है, न बुझाना पड़ता है। दीया आता है, जाता है, अंधेरा सदा है। जन्म आता है, जाता है, मृत्यु सदा है। जैसे ही तुम थक गए, मृत्यु की गोद तैयार है। वह सदा से तैयार है। अभी तुम चाहो, अभी लौट जाओ। मृत्यु का अंधकार सदा है।
और अंधकार का प्रतीक कीमती है क्योंकि अंधकार विश्राम है। प्रकाश में विश्राम मुश्किल है, इसीलिए तो दिन में नींद मुश्किल है। सूरज आकाश में हो, तो नींद मुश्किल है। रात भी कोई बल्ब जला कर सोए, तो मुश्किल है।

अंधेरे में विश्राम आसान है, अंधेरे में एक विश्राम है, अंधेरा बड़ा शांत है, विरामपूर्ण है।
इसलिए मृत्यु अंधकार है, क्योंकि वह विश्रांति है। सब चहल-पहल खो गई,
सब तरंगें जा चुकीं, कुछ दिखाई नहीं पड़ता, महा अंधकार ने घेर लिया। उस महा अंधकार के क्षण में ही अचानक चौंकते हो तुम कि मैं तो मरा ही नहीं! मैं तो हूं! और मैं इतना प्रगाढ़ता से हूं, जितनी प्रगाढ़ता से कभी भी न था। इस अंधेरे में तुम्हारी शुभ्र रेखा चमकती हुई दिखाई पड़ती है।
जैसे जितने काले बादल हों, उतनी ही बिजली चमकदार मालूम पड़ती है। जितनी अंधेरी रात हो, तारे उतने ही शुभ्र मालूम पड़ते हैं। दिन में भी तारे हैं आकाश में। तुम यह मत सोचना कि कहीं चले गए। जाएंगे कहां? दिन में भी हैं लेकिन दिखाई नहीं पड़ते; चारों तरफ प्रकाश है। अगर तुम किसी गहरे कुएं में चले जाओ तीन सौ फीट नीचे, तो वहां से तुम्हें दिन में भी तारे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि बीच में तीन सौ फीट की अंधकार की पर्त आ जाएगी।
मृत्यु के ही क्षण में अमृत दिखाई पड़ता है। इसलिए उपनिषद की कथा बड़ी मधुर है। नचिकेता को भेज दिया है मृत्यु के पास कि वह अमृत को जान ले। मृत्यु के पास भेजा है, पिता ने कहा, तुझे गुरु के पास भेजता हूं। क्योंकि मृत्यु के अतिरिक्त कोई गुरु नहीं हो सकता। मृत्यु गुरु है।
और इससे उलटा भी सही है कि हर गुरु मृत्यु है। वह तुम्हें मिटाएगा, काटेगा, तोड़ेगा। सिर्फ उतना ही बचने देगा, जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है; ताकि सब टूटे-फूटे खंडहर के बीच, अहंकार के खंडहर के बीच सपनों के खंडहर के बीच तुम उसे पहचान लो, जो सत्य है; जिसको कोई, तोड़ना चाहे, तोड़ नहीं सकता; छेदना चाहे, छेद नहीं सकता।
कृष्ण ने गीता में कहा हैः नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि। मुझे शस्त्र छेद नहीं सकते। नैनं दहति पावकः। मुझे आग जला नहीं सकती।
मगर आग में ही पता चलेगा कि जला सकती है या नहीं! शस्त्र छिदेंगे तभी पता चलेगा कि छिदते हैं या नहीं! मौत में आग भी जलेगी, शस्त्र भी छिदेंगे, अंधकार सब तरफ से घेर लेगा, उस क्षण अगर होश रहा, तो तुम देख लोगे कि तुम अमृत हो। इसलिए असली सवाल जीवन में होश को साध लेने का है। अन्यथा मरते तो सभी हैं, अमृत को बिना जाने मर जाते हैं, होश ही नहीं रहता। तो मृत्यु तो बार-बार आती है सिखाने, तुम बार-बार चूक जाते हो।
मृत्यु का गुरु बहुत बार तुम्हें घेरता है लेकिन तुम शिष्यत्व से ही वंचित हो। तुम सीखने से वंचित हो क्योंकि तुम होश में नहीं हो।
प्लेटो मर रहा था--यूनान का सबसे बड़ा विचारक। प्लेटो का विचार और प्लेटो की विचार की क्षमता इतनी प्रगाढ़ थी कि उसका नाम बुद्धिमानी का प्रतीक हो गया।
मैं छोटा था, मेरे दादा गैर-पढ़े-लिखे आदमी थे। उन्होंने प्लेटो का तो कभी नाम भी नहीं सुना था, लेकिन प्लेटो का जो भारतीय नाम है--अफलातून--वे जब मुझ पर नाराज होते थे तो वे कहते थे, बड़े अफलातून के बेटा बने हो! मैं उनसे पूछता, अफलातून कौन? तो वे कहते, होगा कोई! उनको पता नहीं कि अफलातून कौन है; लेकिन अफलातून प्लेटो का नाम है। प्लेटून से आया--अफलातून। इतना प्रगाढ़ विचारक था प्लेटो कि अफलातून प्रतीक ही हो गया कि बड़े विचारक के बेटे बने हो! वे जब बहुत ही नाराज हो जाते तब वे अफलातून का उपयोग करते थे। यह प्लेटो मर रहा था, मरणशय्या पर पड़ा था, मित्र इकट्ठे थे; किसी ने पूछा कि एक आखिरी सवाल और! तुमने जीवन भर जो कुछ कहा, जो कुछ समझाया, जो कुछ सिखाया, उसे सार में कह दो। क्योंकि तुम्हारे शास्त्र तो बड़े हैं और जटिल हैं और हम समझ पाएं, न समझ पाएं, भूल जाएं, भटक जाएं, तुम हमें सार में कह दो। एक ही वचन में कह दो, दो-चार शब्दों में कह दो, ताकि हम कंठस्थ कर लें और सूत्र को याद रखें।
प्लेटो ने आंख खोली और उसने कहाः सारे जीवन मैंने एक ही बात सिखाई, वह हैः मरने की कला, द आर्ट टु डाइ। उसने आंख बंद कर ली और मर गया। ये उसके आखिरी वचन थे--"मरने की कला।"

सारा धर्म मरने की कला है, सारा ध्यान मरने की कला है। मरने की कला का मतलब यह है कि तुम होश से मरना। मगर होश से तुम तभी मर सकोगे, जब तुम होश से जीओ। क्योंकि होश कोई ऐसी चीज नहीं है कि अचानक मरने लगे और साध लिया। तुमने मोमिन का प्रसिद्ध वचन सुना होगाः
"उम्र तो गुजरी इश्के बुता में, मोमिन, अब मरते वक्त क्या खाक मुसलमां होंगे।"
--कि जिंदगी भर तो मूर्ति-पूजा में गुजरी उम्र। मोमिन का मतलब है कि जिंदगी भर तो खूबसूरत स्त्रियों को पूजते रहे, वह मूर्ति-पूजा है। सौंदर्य को पूजते रहे। "उम्र तो गुजरी इश्के बुता में, मोमिन, अब मरते वक्त क्या खाक मुसलमां होंगे!" और अब मरते वक्त तुम कहते हो, मूर्तियां छोड़ दो, परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं। न, अब यह न हो सकेगा।
अगर जीवन भर होश को न साधा, तो मरते वक्त तुम न साध सकोगे। अभी साध लो, अभी समय है; तो मौत जब आए, तुम्हें जागा हुआ पाए। और जिसको भी मौत ने जागा हुआ पाया, मौत उससे हार जाती है। जिसको भी मौत ने जागा हुआ पाया, उसकी मौत होती ही नहीं। उस तरह के आदमी के मरण को ही हम मुक्ति कहते हैं, मोक्ष कहते हैं। वह मरता नहीं है, वह मुक्त होता है। उस तरह के आदमी की मृत्यु को हम मृत्यु नहीं कहते, समाधि कहते हैं। उसका तो समाधान हो गया मृत्यु के आने से।
अब तक की जो चिंता थी कि जीवन क्या है, क्या है रहस्य जीवन का, क्या है लक्ष्य, क्या है गंतव्य, और जीवन बचता है या नहीं, यह क्षणभंगुर है, या शाश्वत है--सारी समस्या मृत्यु के आने से समाधान हो जाती है, उसकी, जो जागा हुआ है। इसलिए जागे हुए की मृत्यु को हम समाधि कहते हैं।
जागा हुआ आदमी जब मर जाता है, तो उसकी कब्र को भी हम समाधि कहते हैं। साधारण आदमी की कब्र को हम समाधि नहीं कहते, वह तो कब्र ही है! ये तो फिर आएंगे। ये तो अभी थोड़ी देर विश्राम कर रहे हैं कब्र में; लौट आएंगे। ये अभी गए नहीं हैं। इनका एक पैर अभी यहीं है। ये जल्दी ही लौटने की तैयारी करेंगे। ये जरा सो गए हैं, थोड़े थक गए थे, फिर वापस आ जाएंगे।
हम उस व्यक्ति की कब्र को समाधि कहते हैं, जो अब लौटेगा नहीं। क्योंकि जिसने मृत्यु का राज समझ लिया, उसे लौटने की जरूरत ही न रही। जिसने मृत्यु को जान लिया, उसने जन्म को भी जान लिया। जिसने जन्म और मृत्यु को जान लिया, उसको अब कुछ जानने को बाकी न रहा।
तो तीन महत्वपूर्ण घटनाएं हैं; जन्म और मृत्यु, और प्रेम। जन्म तुम्हारे बस में नहीं है। तुम पैदा हो गए। अब लौट कर कुछ किया नहीं जा सकता।
प्रेम तुम्हारे बस में है, कुछ किया जा सकता है। लेकिन शायद संस्कृति, सभ्यता, समाज तुम्हें प्रेम न करने दे, अड़चन डाले, बाधा खड़ी करे। समाज, सभ्यता, संस्कृति विवाह में भरोसा करती है, प्रेम में नहीं। उसके कारण हैं। क्योंकि विवाह ज्यादा सुरक्षित सुविधापूर्ण मालूम पड़ता है।
प्रेम खतरनाक है। प्रेम ऐसा है, जैसे तूफान आए समुद्र में नाव को छोड़ना; अनजाने वन-पथ पर पगडंडियों से यात्रा करना।
विवाह राजपथ पर चलना है। सीमेंट-पटा मार्ग है, करोड़ों लोग साथ चल रहे हैं, कहीं कोई भय नहीं। दोनों तरफ पुलिसवाले भी चल रहे हैं, मजिस्ट्रेट भी साथ है, सब व्यवस्थित है। जरा गड़बड़ हुई तो अदालत है। प्रेम झंझट है, विवाह सुविधा है। सुविधा के कारण लोग प्लास्टिक के फूल खरीद लिए हैं। असुविधा से बचने के लिए असली फूलों से बच गए हैं।
इसलिए जन्म में तो तुम कुछ अब कर नहीं सकते, हो गया! प्रेम भी करने में तुम्हें बड़ी बाधाएं पड़ेंगी, लेकिन कुछ कर सकते हो। बड़ी अड़चनें होगी, लेकिन कुछ कर सकते हो।
पर मृत्यु के संबंध में तो सब कुछ कर सकते हो। कोई अड़चन नहीं, कोई बाधा नहीं। इसलिए जन्म की भी फिकर छोड़ दो अगर, तो चलेगा। अगर प्रेम में भी पाओ कि अब बहुत उलझन है, समय जा चुका, अब कुछ करना उलझन ही बढ़ाएगा--जाने दो! मृत्यु को साध लो। होश को साधो। और मरते वक्त एक ही बात अगर तुम बचा लो कि

तुम जागे हुए मर जाओ; मौत आए, तुम्हें बेहोश न पाए, सब हो जाएगा। जागा हुआ जो मरता है, वह मरता ही नहीं। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
लेकिन अगर प्रेम की कोई भी संभावना हो--क्योंकि कुछ आश्चर्य नहीं कि तुम्हें अपनी पत्नी से ही प्रेम हो, तुम्हें अपने बच्चे से प्रेम हो; लेकिन तुम उससे भी डर रहे हो।
मैं एक मित्र के घर में रहता था। मैंने उन्हें कभी उनके बच्चों से बात करते नहीं देखा, पत्नी को कभी पास बैठे नहीं देखा। चलते थे तो इतनी तेजी से, नौकरों की तरफ यहां वहां नहीं देखते थे। बड़े धनपति थे। मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है? उन्होंने कहाः अगर जरा बच्चों से पूछो, क्या हाल है? पैसे के लिए हाथ बढ़ाते हैं। पत्नी से पूछो, क्या हाल है? वह कहती है, हार, बाजार में गई थी, बड़ा अच्छा है, लौटते में ले आना। नौकर की तरफ देखा, तनख्वाह फौरन बढ़ाओ! तो मैं सीख ही गया हूं, किसी के तरफ देखना ही नहीं, तेजी से चलना। और किसी के पास बैठना नहीं, हमेशा अखबार पढ़ना। पत्नी वहां है, तो बीच में अखबार! क्योंकि जरा ही कुछ करो, महंगा पड़ता है।
अब यह आदमी मर गया। इस आदमी के जीवन में प्रेम की कोई सुगंध ही न रही।
यह सड़ गया, वह लाश है। यह पैसा बचा लेगा, खुद को गंवा देगा।
अगर प्रेम की कोई संभावना हो, तो उसे खिलने देना। डरो मत। खोने को कुछ
भी नहीं है, सिर्फ पाने को है। और जो खोने का तुम्हें डर है, वह खो जाने दो क्योंकि उसे तुम बचा भी न सकोगे। जो खोने को है, वह खोएगा ही। जो बच सकता है, वही केवल बचेगा। तुम्हारे उपाय कुछ काम नहीं आते।
इस भाव-दशा को ही मैं समर्पण कहता हूं, तुम जीवन के प्रति समर्पित हो जाओ। और तुम पाओगे कि तुम धन्यभाग से भर गए हो। तुम पर आशीर्वादों की वर्षा हो गई। तुम्हारे प्राण पुलकित हो गए हैं। अब तुम उदास नहीं, थके- मांदे नहीं। जीवन की धार सागर से जुड़ गई। अब तुम उलीचो कितना ही, चुकता नहीं है; बढ़ता है।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
सातवां प्रवचन

ल्यौ लागी तब जाणिए

ओशो, संत श्रेष्ठ दादूदयाल जी की वाणी हैं--

जोग समाधि सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।।
ल्यौ लागी तब जाणिए, जेवा कबहूं छूटि न जाइ।
जीवन यौं लागी रहे, मूवा मंझि समाइ।।
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगाम।
सबद गुरु का ताजना, कोई पहुंचे साधु सुजान।।
आदि अंत मध एक रस, टूटे नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा।
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यो लाई।।

ओशो, हमारे लिए इसे बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करें।

संसार का गणित तथा सत्य का गणित न केवल भिन्न है बल्कि विपरीत थी।
संसार में जो सीढ़ी है, वही सत्य में पतन हो जाता है। संसार में जो सहारा है, सत्य में वही बाधा हो जाती है। संसार में जिसके सहारे तुम सफल होते हो, सत्य में उसके ही कारण असफल हो जाते हो।
और जीवन की सारी शिक्षा-दीक्षा संसार में सफल होने की है। इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा में असफल होने का पूरा आयोजन पूरा संस्कार तुम्हारे जीवन के चारों तरफ तैयार कर दिया जाता है। संसार में सफल होना हो तो, संघर्ष वहां सूत्र है; समर्पण वहां भूल; संघर्ष वहां सूत्र है। अगर समर्पण किया तो संसार में तुम कभी भी न जीत पाओगे। हारते ही चले जाओगे। अगर संघर्ष किया तो ही जीतने की संभावना है।
लेकिन कठिनाई और भी बढ़ जाती है। संसार में जीत भी जाओ तो जीत हाथ नहीं लगती। क्योंकि जीत तो केवल सत्य की ही है। अगर संसार में जीतना हो, तो संघर्ष; लेकिन जीत कर तुम पाओगे कि जीवन संघर्ष में व्यतीत हुआ, पाया कुछ नहीं। जीत कर ही पाओगे कि हार गए। संसार में हारा हुआ आदमी तो हारता है; जीता हुआ भी अंत में पाता है कि हार गया।
संसार में कभी कोई जीता नहीं। लेकिन संसार का सूत्र संघर्ष है; हिंसा, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, क्रोध--पूरी फौज है; वह संसार में सहारा देती है।
हम प्रत्येक बच्चे को संसार के लिए तैयार करते हैं। वही तैयारी परमात्मा में बाधा बन जाती है। तो जब तक तुम उस तैयारी को तोड़ने को राजी न हो जाओ तब तक परमात्मा का द्वार जो कि सदा ही खुला हुआ है, तुम्हारे लिए बंद रहेगा। वह "तुम्हारे" लिए बंद रहेगा। द्वार बंद नहीं है, द्वार तो खुला ही हुआ है। लेकिन तुम्हारी आंखों पर एक दीवाल है, उसके कारण खुला द्वार भी दिखाई नहीं पड़ता।
एक स्कूल में एक शिक्षक ने पूछा एक होटल-मालिक के बेटे से कि पचास बाराती आए हों, तो जितनी दाल लगती है, तो यदि डेढ़ सौ बाराती हों, तो उससे कितने गुना ज्यादा दाल लगेगी? उसके बेटे ने कहाः दाल तो उतनी ही लगेगी; सिर्फ मिर्च और पानी की मात्रा बढ़ानी पड़ेगी। होटल मालिक का होनहार बेटा है। शिक्षित हो रहा है, दीक्षित हो रहा है।
संसार में भरोसा भूल है। भरोसा किया कि भटके। संदेह सार है। संसार में मान कर ही चलना कि सभी दुश्मन है, कोई मित्र नहीं। क्योंकि जिसको भी मित्र माना वहीं से संसार में गिराव शुरू हो जाएगा। संसार को तो शत्रु मानना। अगर किसी को मित्र कहो भी, तो कहना भर; मानना कभी नहीं।

यही तो कौटिल्य और मैक्यावेली की शिक्षा है--किसी को मित्र मत मानना। मित्र को भी शत्रु की तरह ही जानना, ऊपर-ऊपर मित्रता दिखाना, भीतर शत्रुता मानना। क्योंकि अगर मित्र मान लिया, तो भरोसा कर लिया। जिसका भरोसा किया, वही धोखा देगा।
ठीक उलटी शिक्षा है जीसस की कि शत्रु को भी मित्र मानना। तो जिसने पहली शिक्षा में काफी पारंगत कुशलता पा ली है, उसे दूसरी शिक्षा बड़ी मुश्किल हो जाएगा। सत्य की तरफ जाना हो तो श्रद्धा चाहिए। संसार की तरफ जाना हो तो जितनी ज्यादा संदिग्ध मन की दशा हो, उतना ही सहयोगी है। और संसार के लिए हम तैयार करते हैं।
तो अश्रद्धा का तो हमारे पास बड़ा निष्णात, कुशल आयोजन होता है। श्रद्धा का कोई अंकुर भी नहीं होता। इसलिए जब हम परमात्मा की तरफ भी मुड़ते हैं, तो वही शंकालु हृदय लेकर मुड़ते हैं, जो संसार में काम आता था। फिर वही बाधा बन जाता है। द्वार तो सदा खुला है उसका। अगर बंद है, तो तुम्हारा हृदय बंद है। आंख बंद है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी डाक्टर के पास गई थी। बीमार थी। वह उसे भीतर के कक्ष में ले गया, जहां जांच-पड़ताल करेगा। टेबल पर लेटते वक्त उसने कहा, एक बात; इसके पहले की बात मेरी जांच करें, नर्स को भीतर बुला लें। डाक्टर थोड़ा नाराज हुआ। उसने कहाः क्या मतलब? क्या मुझ पर तुम्हारा भरोसा नहीं?
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा कि आप पर तो पूरा भरोसा है। बाहर बैठे मेरे पति पर भरोसा नहीं। नर्स को भीतर ही बुला लें। पति और नर्स बाहर अकेले छूट गए हैं।
प्रतिपल--जिनसे तुम्हारा प्रेम है और जिनसे तुम कहते हो कि हमारा प्रेम है, उन पर भी भरोसा नहीं।
संसार में प्रेम पाप है, घृणा गणित है। और यही तुम्हारी शिक्षा- दीक्षा है; इसकी ही पर्त दर पर्त तुम्हारे चारों तरफ जमी है। इसलिए जब तुम किसी दिन संसार से थक कर परमात्मा के द्वार पर दस्तक देते हो, दस्तक व्यर्थ चली जाती है। क्योंकि द्वार तो बंद ही नहीं है; द्वार तो खुला ही है। तुम जिस पर दस्तक दे रहे हो वह तुम्हारी ही खड़ी की हुई दीवाल है। तुम अपनी ही दीवाल पर दस्तक दे रहे हो। परमात्मा का द्वार बंद कैसे हो सकता है? तुम्हारा ही संस्कारों का जाल तुम्हें चारों तरफ से घेरे है। तुम ही गलत हो गए हो।
और जब तब यह गलत होना ठीक न हो जाए तब तक लाख सिर पटकें दादू, कबीर, तुम्हें लगे भी कि तुम समझ गए, फिर भी तुम समझ न पाओगे। तुम्हारी समझ भी कोई काम न आएगी। क्योंकि तुम्हारी जो जीवन-स्थिति है, जो ढांचा तुमने बना लिया है, वह मूलतः सत्य-विरोधी है।
इसे ठीक से समझ लो। इसीलिए जीसस ने कहा है कि जब तक तुम पुनः बच्चों की भांति न हो जाओ, तब तक तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश न पा सकोगे। क्या मतलब है, पुनः बच्चों की भांति न हो जाओ? सीधा सा मतलब है, उस दशा में न पहुंच जाओ जहां संसार और समाज और संस्कृति ने तुम्हें प्रभावित नहीं किया था; उस पूर्व दशा में न पहुंच जाओ, जहां तुमने कुछ भी सीखा न था, जहां संसार का जहर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट न हुआ था, जहां तुमने संसार का अनुभव न लिया था, उस दशा में तुम जब तक न पहुंच जाओ, तुम जब तक पुनः कुंआरे न हो जाओ। संसार में तुम्हें व्यभिचारी कर दिया है। जब तक तुम फिर से वापस उस प्राथमिक सरलता को न पा लो, तब तक तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश न पा सकोगे। और तुम बहुत जटिल हो गए हो। तुम बहुत चालाक हो गए हो। तुम बहुत हिसाबी-किताबी हो गए हो। तुमने दुकान की भाषा सीख ली, प्रेम का हिसाब ही तुम्हें भूल गया। तुम प्रेम से अपरिचित ही हो गए हो, और तुम प्रार्थना करने आ जाते हो।
प्रार्थना करने आना तो ऐसा है, उस व्यक्ति का, जो प्रेम से अपरिचित हो गया, जैसे कोई व्यक्ति लकवे से लगा पड़ा हो, चल भी न सकता हो और दौड़ने के इरादे कर रहा हो। तुम चल भी नहीं सकते हो, दौड़ोगे कैसे?

तुम प्रेम भी नहीं कर सकते; तुम प्रार्थना कैस करोगे? तुम किसी व्यक्ति के लिए भी अपना हृदय नहीं खोल सकते, तुम समष्टि के लिए कैसे अपना हृदय खोलोगे? एक के लिए नहीं खोल सकते, अनंत के लिए कैसे खोलोगे?
यह पहली बात ख्याल में ले लें, तब ये सूत्र बहुत आसान हो जाएंगे। अन्यथा समझना मुश्किल होगा। और वह बात यह है कि यहां परमात्मा के द्वार पर श्रद्धा सहयोग है, संदेह बाधा है। भरोसा, अनन्य भरोसा, अनंत भरोसा यहां द्वार है। जरा सा शक, जरा सा संशय--द्वार बंद हो जाता है; दीवाल है। फिर द्वार नहीं। यहां सरलता, चालाकी नहीं; होशियारी नहीं, सरलता, निर्दोषता, सहयोगी है। तुम्हारी होशियारी, तुम्हारी कुशलता संसार में पाई गई तुम्हारी उपाधियां संसार में उपाधियां होंगी, बड़ा उनका सम्मान होगा, यहां वे उपाधियां हैं, बीमारियां हैं। यह उपाधि शब्द बड़ा अच्छा है। इसके दो अर्थ होते हैं। एक तो अर्थ होता है सम्मानित पद और दूसरा अर्थ होता है बीमारी। सब पद बीमारियां हैं। सब उपाधियां, उपाधियां हैं।
संसार में तुम्हारी जो ऊंचाइयां हैं, वही परमात्मा के जगत में तुम्हारी नीचाइयां हैं। संसार के जो शिखर हैं, वही परमात्मा के जगत में अंधेर खाइयां हैं। संसार में जो तुम्हारी उपलब्धि है, परमात्मा के जगत में वही तुम्हारी अपात्रता है।
मैंने सुना है, एक झेन फकीर के द्वार पर एक दिन जापान का गवर्नर मिलने आया। उसने अपना कार्ड भेजा, अपना नाम लिखा। नीचे लिखाः गवर्नर ऑफ टोकियो, टोकियो का गवर्नर।
जिस शिष्य को द्वार पर खड़े होने की ड्यूटी थी, वह कार्ड लेकर भीतर गया। गुरु ने कार्ड देखा और कहा, फेंको। भगाओ इस आदमी को। यहां इसकी क्या जरूरत है, हटाओ इस आदमी को। शिष्य आया और उसने कहा, गुरु ने कहा है, हटाओ इस आदमी को। गर्वनर तो बड़ा हैरान हआ! यह द्वार इसके लिए बंद है। यहां इसकी क्या जरूरत है?
गवर्नर निश्चित ही बहुत समझदार रहा होगा। गवर्नरों से इतने समझदार होने की आशा की नहीं जा सकती। बड़ा अनूठा रहा होगा। साधारणतः यह होता नहीं। गवर्नर होते-होते आदमी बिल्कुल गधा ही हो जाता है। वह यात्रा ऐसी है। अरब में एक कहावत है कि गधे घोड़े नहीं हो सकते; लेकिन गवर्नर हो सकते हैं।
पर यह गवर्नर अनूठा रहा होगा। बड़ा प्रतिभा-सजग। तत्क्षण समझ गया।
कार्ड वापस लिया, गवर्नर ऑफ टोकियो काट दिया, कार्ड वापस दिया, कहा, एक बार और कृपा करो, इसे वापस ले जाओ।
गुरु ने देखा कहाः अरे! यह है। बुलाओ भीतर। हम समझे गवर्नर हैं।
गवर्नर की यहां क्या जरूरत है? यह तो अपने पुराने परिचित हैं, आने दो। परमात्मा के मार्ग पर तुम्हारी उपाधियां, तुम्हारी सफलताएं, तुम्हारा नाम यश, सभी पत्थर की दीवालें बन जाते हैं। उन्हें तुम छोड़ कर ही जाना, तो ही जा सकोगे। अगर उनको ले जाने का मन हो, तो जाने का ख्याल ही छोड़ दो। तुम अपने घर भले, परमात्मा अपने घर भला। नाहक झंझट न करो। अभी संसार को और जी लो। अभी बीमारियों में रस है, थोड़े और बीमार रह लो। कोई जल्दी भी नहीं अनंत काल पड़ा है, लेकिन ठीक से मुक्त हो जाओ संसार से, तो ही तुम परमात्मा की तरफ चल पाओगे। जरा सा भी रस वहां लगा रहा।
मुक्त होने का यह अर्थ मत समझ लेना कि भाग जाओ जंगल में। जो भी भगोड़े हैं, वे तो भागते ही इसीलिए हैं क्योंकि मुक्त नहीं है। मुक्त ही हो गए होते तो भागना कहां है? भागना किससे है? भाग कर जाओगे भी कहां? जहां भी जाओगे, वही संसार है। और जहां भी जाओगे, कम से कम तुम तो वही रहोगे। भागना कहीं भी नहीं है, सिर्फ जागना है। भागो नहीं, बदलो। और बदलने का केवल मतलब इतना है कि सोए से जागो। व्यर्थ का समझो, असार को देखो, सार को पहचानो। कहते हैं दादूः
जोग समाधि सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।
बड़ा अनूठा वचन है।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।
जीसस कहते हैंः खटखटाओ, द्वार खुलेंगे; मांगो, मिलेगा।

दादू जीसस से भी गजब की बात कह रहे हैं। वे कहते हैं--मुक्ता द्वारा महल का। यह द्वार तो खुला ही है, मुक्त है खटखटाओगे कहां? मांगना क्या है? मिला ही हुआ है। परमात्मा दूर थोड़े ही है! सामने खड़ा है। परमात्मा तुमसे भी ज्यादा तुम्हारे पास है।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।
भक्त का तो यही भाव है कि द्वार खुला है। इसे खोलना भी नहीं है। खोलने
का भी जरूरत नहीं है। खोलने का भी यत्न करना पड़े, तो अहंकार आ जाएगा। तुम यत्न करोगे, तुम्हारा अहंकार मजबूत हो जाएगा।
तुम कुछ करोगे; तुम्हारे करने से परमात्मा नहीं मिलता है। तुम जब न करने की दशा में होते हो, तभी मिलता है। तुम जब बिल्कुल ही शांत अकर्म ही अवस्था में होते हो, तभी मिलता है। तुम तो खोलने को कोशिश भी, खटपट करोगे तो चिंता पैदा होगी। इसलिए अक्सर यह हो जाता हैं, जो परमात्मा का दरवाजा खोलने को बहुत ज्यादा चिंता बना लेते हैं, उनका दरवाजा सदा के लिए भटक जाता है।
ऐसा हुआ एक बहुत अदभुत जादूगर हुआः हुदिनी। और उसके जीवन में उसने बड़े चमत्कार किए, जैसा की कोई दूसरा जादूगर कभी नहीं कर पाया है। और वह आदमी बड़े गजब का आदमी था। और उसने सदा यह स्वीकार किया है कि ये सिर्फ हाथ की सफाइयां हैं। उसने कभी धोखा न दिया। उसने ऐसी हजारों बातें कीं कि जिनको अगर वह चाहता तो दुनिया का सबसे बड़ा अवतारी पुरुष हो जाता। तुम्हारे साईं बाबा इत्यादि सब फीके हैं, दो कौड़ी के हैं। हुदिनी की कला बड़ी अनूठी थी। दुनिया में ऐसा कोई ताला नहीं है जो उसने सेकेंड में न खोल दिया हो। उसके ऊपर जंजीरें बांधी गई, हथकड़ियां बांधी गईं, पानी में सागर में फेंका गया। सेकेंड न लगे और वह बाहर आ गया, सब जंजीरें अलग। जेलखानों में डाला गया; इंग्लैंड के जेलखानों में, अमेरिका के जेलखानों में, स्पेन के जेलखानों में, सख्त से सख्त जहां पहरा है, क्षण भर बाद वह बाहर खड़ा है। कोई समझ नहीं पाए कि वह कैसे बाहर आता? क्या होता? उसने सब व्यवस्था तुड़वा दी। लेकिन उसने कभी कहा नहीं कि मैं कोई सिद्ध पुरुष हूं। उसने इतना ही कहा कि सब हाथ की सफाई है।
लेकिन एक बार वह मुश्किल में पड़ गया। फ्रांस में पेरिस में वह प्रयोग
कर रहा था। सारी दुनिया में वह सफल हुआ, वहां आकर हार गया। एक जेलखाने में उसे डाला गया, जहां से उसे निकल कर आना था। जिंदगी भर में वह बड़े से बड़े जेलखानों से निकल गया। और कैसी भी जंजीरें हों, उसने खोल लीं बिना किसी चाबियों के। क्या थी उसकी कला, बड़ा कठिन है कहना। और कभी उसने दावा किया नहीं कि मैं कोई चमत्कारी हूं, या कोई ईश्वरी व्यक्ति हूं, कुछ भी नहीं। मगर वहां वह हार गया। जो आदमी तीन सेकेंड में बाहर आ जाता और ज्यादा
से ज्यादा तीन मिनट लेता, उसको तीन घंटे लग गए और वह बाहर न आया। लोग घबड़ा गए। बाहर हजारों लोगों की भीड़ थी देखने। क्या हो गया?
मामला यह हुआ कि मजाक की थी पुलिस अधिकारियों ने। ताला लगाया ही न था, दरवाजा खुला छोड़ दिया था; और वह ताला खोज रहा था। ताला हो तो खोल ले। ताला था नहीं वह घबड़ा गया। उसे यह ख्याल भी न आया घबड़ाहट में कि दरवाजा सिर्फ अटका है। वह इतना परेशान हो गया कि ताला छिपा कहां है? कहीं न कहीं ताला होगा। सब कोने-कातर छान डाले। कमरे के दूसरी तरफ छान डाला। हो सकता है, कोई धोखे का दरवाजा लगा है जो दिखाई न पड़ता हो दरवाजा और वह यह दरवाजा न हो। दीवाल का कोना-कोना छान गया लेकिन कहीं कोई ताला हो, तो मिल जाए। और जब ताला ही न हो, तो तुम्हारे पास कोई भी चाबी हो, तो क्या खाक काम आएगी?
तीन घंटे बाद भी वह न निकलता। निकलने का कारण तो यह हुआ कि वह इतना थक गया और पसीने-पसीने हो गया कि बेहोश होकर गिर पड़ा। धक्का लगने से दरवाजा खुल गया। वह बाहर पड़े थे। पहली दफा जिंदगी में वह असफल हुआ। मजाक के सामने जादू हार गया।
और कारण? कारण वही है, जो हर आदमी की जिंदगी में घट रहा है। तुम परमात्मा के दरवाजे पर अगर हार रहे हो, तो कारण यह है कि तुम ताला खोज रहे हो। और ताला वहां है नहीं।
मुक्ता द्वार महल का, ...

उस महल का द्वार मुक्त है, खुला है। अटका भी नहीं है। उतनी भी जरूरत नहीं है कि तुम बेहोश होकर गिरो, धक्का लगे, जब कहीं द्वार खुले। दरवाजा खुला ही है।
जोग समाधि सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।
और इतनी सहजता से परमात्मा में प्रवेश हो जाता है कि तुम नाहक ही बड़े जतन कर-कर के अपने को थका रहे हो, पसीना-पसीना कर रहे हो। कोई शीर्षासन लगाए खड़ा है, कोई उलटी-सीधी कवायद कर रहा है शरीर से, कोई योग साध रहा है, कोई नाक बंद किए श्वास को रोके हुए है, कोई कानों में अंगुलियां डाले हुए है, कोई आंखों को दबा कर प्रकाश देख रहा है।
हजार तरह की नासमझियां, सारे संसार में प्रचलित हैं। वे सब कुंजियां हैं खोलने की उस ताले को, जो ताला है ही नहीं; उस द्वार को खोलने के उपाय, जो खुला ही है। तुम्हारे उपाय ही तुम्हारे द्वार को खुलने न देंगे।
भक्ति सहज मार्ग है। सहज का अर्थ होता हैः जहां कुछ भी न करना पड़े, अपने से हो जाए।
जोग समाधि--वह जो योग की समाधि है, वह जो योग का परम समाधान है, जहां सभी समस्याएं गिर जाती हैं, सभी प्रश्न तिरोहित हो जाते हैं, जहां मात्र समाधान का संगीत बजने लगता है, जहां एक का स्वर गूंजने लगता है।
जोग समाधि--वह जो योग की समाधि है; योग का अर्थ होता है, मिलन जहां व्यक्ति समष्टि से मिलता है, जहां कण अनंत से मिलता है, जहां बूंद सागर से मिलती है, वह घड़ी है योग। जहां तुम मिटोगे और परमात्मा से मिलोगे, वह आलिंगन है योग। जोग समाधि; इधर मिले कि सब समस्याएं गईं। मिले नहीं कि समस्याएं मिटी नहीं।
समस्याओं की समस्या एक ही है--वह तुम हो। तुम्हारे कारण ही सारी समस्या है। तुम्हारे अहंकार के कारण ही सारी समस्याएं पैदा हुई हैं। वह तुमने पैदा की है, वह तुम से पैदा हुई है। तुम सारी समस्याओं के केंद्र हो। मिले, तुम मिटे। क्योंकि मिलन का अर्थ ही यह है कि जब तक मिटो न, तब तक मिलोगे न। बूंद अगर सागर से मिलेगी, तो मिलने के ही क्षण में मिट जाएगी। मिटने की तैयार होगी, तो ही सागर की तरफ जाएगी। नहीं तो दूर-दूर भागेगी। जोग समाधि; वह मिलन जब घटता है, तब सब समाधान हो जाता है। करोड़ों करोड़ों जन्मों में न मालूम कितने प्रश्न और समस्याएं उठी थीं; उस मिलन के क्षण में उठती ही नहीं। चाहा होगा तुमने कि परमात्मा अगर मिलेगा तो पूछ लेंगे। हजार तरह के प्रश्न तुम्हारे मन में उठते हैं। लेकिन जिस दिन परमात्मा मिलेगा उस दिन पूछने को कोई प्रश्न न बचेगा, उस दिन तुम अचानक पाओगे कि प्रश्न है ही नहीं; जीवन निष्प्रश्न है।
जीवन में कोई प्रश्न नहीं है। प्रश्न तुम्हारी चिंताओं से पैदा होते हैं। जीवन में प्रश्न है ही नहीं। जीवन तो एक रहस्य है, एक रस है। भोगो, पूछो मत। पूछे कि चूके। क्योंकि जैसे ही पूछना तुमने शुरू किया, तुमने भोगना बंद कर दिया। तुम जीवन के रस का स्वाद नहीं लेते अब; अब तुम पूछ रहे हो। और पूछने का कोई अंत नहीं है। पूछने से पूंछ बढ़ती ही चली जाती है। प्रश्न बड़े ही होते चले जाते हैं। एक प्रश्न पूछो, उत्तर मिल भी नहीं पाता कि दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं। ऐसी शाखा प्रशाखाएं फैलने लगती हैं। अस्तित्व में कोई प्रश्न नहीं है। अस्तित्व तो उनके लिए है, जो निष्प्रश्न होकर जीना जानते हैं।
जोग समाधि का अर्थ है--समाधि शब्द का अर्थ बड़ा अर्थपूर्ण है। उसका अर्थ होता है, परिपूर्ण समाधान। जहां पूछने को कुछ न बचा, सब शांत हो गया। तुम खोजो भी प्रश्न, तो मिलते नहीं।
बुद्ध के पास कोई भी आता तो वे यही कहते थे, एक साल रुक जाओ। जो भी पूछना हो, पूछ लेना। सभी प्रश्नों के जवाब दूंगा, अभी भाग नहीं जा रहा हूं कहीं। लेकिन एक वर्ष रुक जाओ। एक वर्ष जो मैं कहूं, वह तुम कर लो। फिर तुम जो पूछोगे मैं जवाब दूंगा।
एक वर्ष बीत जाता। अगर व्यक्ति इतना रुकने को राजी हो जाता, और बुद्ध
जो कहते, करने को राजी हो जाता; बहुत से तो लौट जाते, कि जो आदमी हमारे सवालों का जवाब ही नहीं दे सकता उसके पास रहने का क्या सार है? जो हमारे

प्रश्न हल नहीं कर सकता, उसके पास समय क्यों बर्बाद करें? बहुत से लौट जाते। बहुत से सोचते कि बुद्ध को पता नहीं, इसलिए उत्तर नहीं देते। बहुत से सोचते कि यह बुद्ध कोई ज्ञानी नहीं है, क्योंकि ज्ञानी तो सदा ही उत्तर दे देते हैं; यह चुप क्यों है?
लेकिन जो रुक जाते, जो हिम्मतवर होते, जो जीने को राजी होते, जो बुद्ध
के इशारे पर चलने को राजी होते, रुक जाते। साल बीत जाता, बुद्ध उनसे पूछते कि अब तुम पूछ लो। तो वे हंसते और कहते कि आपने धोखा दे दिया। अब तो पूछने को कुछ न बचा। आपकी मान कर शांत होते गए, शांत होने के साथ-साथ प्रश्न भी झड़ गए; जैसे पतझड़ में पत्ते झड़ जाते हैं। अब कोई प्रश्न नहीं उठता।
तो बुद्ध कहते अगर उस दिन, जिस दिन तुम पूछने आए थे, मैं जवाब देता, तो
हर जवाब के बाद प्रश्न उठते चले जाते। कोई अंतर न आता। आज प्रश्न नहीं उठता, मैं जवाब देने को तैयार हूं; और तुम पूछने को तैयार नहीं। तब तुम पूछने को तैयार थे, मैं जवाब देने को तैयार नहीं था।
जिसने पूछा, वह कितना ही सोचने में उतर जाए, लेकिन जितना तुम सोचोगे, अस्तित्व से उतना ही दूर निकल जाते हो। अपने पास आना है, तो विचार को छोड़ना है, खोना है, विचार को शांत हो जाने देना है। ऐसी लहर बन जाओ जहां कोई लहर न उठती हो। ऐसी शांत झील बन जाओ, जहां कोई लहर न उठती हो जहां कोई कंपन न उठता हो प्रश्न का; उस अवस्था का नाम समाधि है।
जोग समाधि सुख सुरति सों, ...
और यह कैसे घटेगी जोग समाधि? यह समाधान कैसे आएगा? कैसे तुम प्रश्नों
के पार उठोगे? कैसे विचारातीत होओगे? कैसे होगा अतिक्रमण मन का? कैसे अमनी दशा पदा होगी? कैसे नो-माइंड की शुरुआत होगी?
सूत्र हैः सुख सुरति सों--सुखपूर्वक स्मरण को साधो। मगर बड़ी साफ बात है--सुखपूर्वक। दुख देने की चेष्टा मत करना अपने को। अन्यथा ऐसा रोज हो रहा है।
दुनिया में दो तरह के दुष्ट हैं। एक, जो दूसरों को सताते हैं; दूसरे,
जो खुद को सताते हैं। दोनों दुष्ट हैं। पहले तरह के दुष्टों को तो तुम पकड़ लेते हो, दूसरे तरह के दुष्टों की तुम पूजा करते हो। दूसरे तरह के दुष्ट ज्यादा कुशल है। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी दूसरे प्रकार के दुष्ट हैं, हिंसक हैं।
इसे तुम समझो। यह सीधी सी बात है। अगर तुम किसी दूसरे आदमी को भूखा मारो, सारे लोग कहेंगे कि यह आदमी दुष्ट है। और तुम खुद उपवास करो, सब कहेंगे, यह आदमी बड़ा त्यागी है।
अब यह बड़े मजे की बात है। बात वही ही वही है। इसमें तुम अपने को भूखा मार रहे हो, तो तुम त्यागी। और दूसरे को भूखा मारे तो तुम दुष्ट। अगर उपवास से लाभ होता है तो सभी को भूखा मारो। लोगों को तुम्हारी प्रशंसा करनी चाहिए कि यह आदमी अकेले ही उपवास नहीं कर रहा है, कई को करवा रहा है।
जो आदमी दूसरे को सताए, उसे हम हिंसक और पापी कहते हैं। हिटलर, सिकंदर मालूम पड़ते हैं--दूसरों को काटते हैं मारते हैं। लेकिन जो अपने को काटते हैं, मारते हैं, उन्हें तुम सिर पर उठाए घूमते हो। कांटों पर सोए हैं, तुम उनके चरणों पर सिर रखते हो, क्योंकि कैसा महातपस्वी है। कांटों पर सो रहा है। यह दुष्ट है, हिंसक है। कुछ फर्क नहीं है, इसकी हिंसा अपने पर लौट आई है।
मनोविज्ञान दो तरह की हिंसाएं मानता है। और मनोविज्ञान की इस संबंध में सूझ बहुत साफ है। और दुनिया में आने वाले भविष्य में धर्म को इस बात को समझ ही लेना होगा। नहीं तो धर्म वास्तविक धर्म नहीं हो पाता। मनोविज्ञान कहता है, दो तरह के हिंसक लोग हैं।
एक, जिनको मनोविज्ञान कहता है, सैडिस्ट; जो दूसरों को सताने में रस लेते हैं। दी सादे हुआ फ्रांस में एक बहुत बड़ा लेखक; उसके नाम पर सैडिज्म पैदा हुआ। क्योंकि वह सताता था दूसरों को; वही उसका रस था। कि वह जिन स्त्रियों को प्रेम भी करता था, उनको भी द्वार-दरवाजे बंद करके कोड़ों से मारता था, लहूलुहान कर देता था। वह जब प्रेम करने आता था तो ऐसे आता था जैसे डाक्टर एक बैग लेकर आता है। उसके बैग में सब चीजें होती थीं--कोड़ा,

कांटे, चुभाने के लिए लोहे के नाखून कि वह हड्डी-मांस-मज्जा में भीतर चला जाए। वह पीटता, मारता, सताता। स्त्री चीखती, चिल्लाती; पुकारती। वही उसका आनंद था, फिर वह प्रेम करता।
थोड़ी बहुत ऐसी हिंसा तुम भी अपने में पाते होओगे। तुमने अगर किसी स्त्री को प्रेम किया है, तो कभी तुमने उसके शरीर को काट भी लिया है। तब उसमें थोड़ी हिंसा है। दी सादे का थोड़ा-बहुत परिमाण तुम में भी है।
अगर तुम वात्स्यायन का काम-सूत्र पढ़ो, तो वात्स्यायन कहता है, प्रेम
की अनेक विधियों में नख-छेदन, स्त्री में नख से लहूलुहान कर देना। तो अपने नख से करो कि लोहे के नख से करो। वह थोड़ा टेक्नीकल है। और तो कोई खास मामला नहीं है। वह ज्यादा होशियार है। नख भी क्या उलझाओ अपना? और लोहे से जो काम ज्यादा ठीक से हो सकता है, वह नख से उतने ठीक से हो न पाएगा।
लेकिन वात्स्यायन कहता है कि नख से छेदो, दांत से काटो। ये प्रेम के लक्षण हैं। तो फिर घृणा का लक्षण और क्या होता है? आमतौर से अगर तुम किसी जोड़े को प्रेम करते देखो, शायद इसीलिए जोड़े अंधेरे में प्रेम करते हैं छिप कर कि कोई देख न सके। अगर तुम देखो, तो तुम पाओगे कि उनके प्रेम में लड़ाई जैसा तत्व ज्यादा है। शायद इसीलिए स्त्रियां आंखें बंद कर लेती हैं प्रेम करने के क्षण में कि कौन देखे झंझट! वह पुरुष जो है, भयानक मालूम होता है; जैसे कि जान ले लेगा।
सैडिज्म पैदा हुआ है सादे के नाम पर। उसका अर्थ है, दूसरे के दुख में सुख, पर-दुखवादी।
दूसरा एक लेखक हुआ है, उसका नाम है मैसोच। वह स्व-दुखवादी था। उसके नाम पर मैसोचिस्ट शब्द बना, कुछ लोग हैं, जो अपने को सताते हैं। वह अपने को ही सताता था। कोड़े खुद को ही मारता था, छाती पीटता था, लहूलुहान कर लेता था--अपने को ही! और उससे कहता था, बड़ा रस आता है।
दुनिया में ये दो तरह के लोग हैं। और दूसरे तरह के आदमी ने, वह मैसोचिस्ट जो आदमी है--स्वयं को सताने वाला, उसने बड़ा धोखा दिया है धर्म के नाम पर। वह उपवास करता है, कांटों पर सोता है, उसने क्या क्या नहीं किया? तुम हैरान होओगे; उसने आंखें फोड़ ली हैं, जननेंद्रियां काट दी हैं, और उसको पूजा मिली है, आदर मिला है। वह आत्महत्या करता है। जिसको तुम तपश्चर्या कहते हो, वह उसका आत्मघात है--धीमा-धीमा।
और स्मरण रहे, जो दूसरों को दुख देता है, वह तो थोड़ा हिम्मतवर भी है, इसीलिए दूसरे को दुख देता है। क्योंकि दूसरे को दुख देना जरा झंझट है। दूसरा कुछ ऐसे ही नहीं बैठा रहेगा। कुछ तो करेगा ही। इसीलिए डर है कि दूसरा तुम्हें सता सकता है। अगर मजबूत हुआ तो तुम्हें सताएगा ही। लेकिन जो कायर है, वे अपने को सताते हैं। डर भी नहीं है कोई। खुद को सताओगे, तो बदला लेने को भी कोई नहीं है, प्रतिशोध करने को भी कोई नहीं है।
तो दुनिया में जो थोड़े हिम्मतवर हैं, वे दूसरों को सताते हैं। जो कायर हैं, कमजोर हैं, वे खुद को सताते हैं। और ये कायर तुम्हें संत मालूम होते हैं।
नहीं; दादू कहते हैंः सुख सुरति सों। जानने वाले तो कहते हैं कि सुख
से पाया जाता है। दुख की कोई जरूरत ही नहीं। न दूसरे को देने की जरूरत है न खुद को देने की जरूरत है। दुख से परमात्मा का क्या लेना-देना? सुख सुरति सौ। वह तो सुख की ही भाव-दशा से उत्पन्न होगा। और इसमें अर्थ भी मालूम पड़ता है क्योंकि वह महासुख है। दुख देने से कैसे उपलब्ध होगा? दुख देने से तो और दुख उपलब्ध होगा। दुख का अभ्यास करोगे, तो नरक जाओगे; स्वर्ग कैसे जाओगे?
स्वर्ग का अगर अभ्यास करना हो, अगर जाने की तैयारी करनी हो, तो सुख में लीनता साधनी चाहिए, सुख की कुशलता साधनी चाहिए। दादू ठीक कहते हैं, सुख सुरति सों। सुख को साधो।
सुख को साधने का मतलब यह नहीं है कि सुख के पीछे दौड़ो। क्योंकि जो दौड़ता है, वह तो सुख को कभी पाता नहीं। सुख को अगर साधना है, तो एक ही रास्ता है--सुरती सौ। जागो! स्मरण पूर्वक जीओ।

सुरति संस्कृत के स्मृति शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है; लेकिन बिगड़ कर शब्द बड़ा मधुर हो गया है। कई बार ऐसा हो जाता है। स्मृति में तो थोड़ी सी धार है, सुरति में बड़ी गोलाई है। स्मृति शब्द तो बड़ी चोट करता है, सुरति मिठास की तरह हृदय में उतर जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि पंडितों के शब्द जब लोक-भाषा में आ जाते हैं, तब बड़े प्यारे हो जाते हैं। स्मृति पंडितों का शब्द है। सुरति गैर पढ़े-लिखे लोगों का। मतलब वही है, लेकिन मतलब गहन हो गया। स्मृति से तो एक चोट लगती मालूम पड़ती है। धार है, शब्द में पैनापन है। सुरति में धार नहीं है, गोलाई है, माधुर्य है।
सुख सुरति सों--सुखपूर्वक परमात्मा का स्मरण साधो। जोग समाधि उपलब्ध होगी। सुख से जीने का अर्थ है, दुख को पालो-पोसो मत।
मैं देखता हूं, मेरे पास रोज लोग आते हैं। जब वे अपनी दुख की कथा कहते हैं, तो मुझे सदा ऐसा लगता है कि उस दुख की कथा कहने में भी बड़ा रस ले रहे हैं। अगर दुख की कथा न होती, तो कहने को उनके पास कुछ भी न होता। उनके चेहरे पर देखो, तो एक रौनक आ जाती है जब वे दुख की कथा कहते हैं। और दुख की कथा वह बढ़ा-बढ़ा कर कहते हैं। जितना दुख उन्होंने पाया नहीं, उतना बना कर बताते हैं। खुद भी भरोसा करते होंगे कि इतना ही पाया।
अगर तुम ऐसे आदमियों के दुख पर भरोसा न करो और टालने की कोशिश करो, तो
वे और भी दुखी हो जाते हैं। अगर उनको कहो कि ये सब तुम्हारे मानसिक ख्याल हैं, तो उनको बड़ी चोट पहुंचती है। दुख में उन्हें बड़ा रस है। वे दुख कह कर तुमसे सहानुभूति मांग रहे हैं। वे कहते हैं कि थपथपाओ हमारे सिर को जरा। आशीर्वाद दो। हम बड़े दुखी हैं। जैसे दुखी होना बड़ी गुणवत्ता है! जैसे दुखी होना बड़ी पात्रता है कि आप बड़ी योग्यता लेकर आए हैं! दुखी होना कोई योग्यता नहीं है। दुखी होना तो सिर्फ मूढ़ता है।
और इसको नियम मान लो कि अगर तुम दुखी हो, तो तुम्हारी ही भूल होगी। तुम संसार को ठहराते हो कि संसार दुखी कर रहा है। कोई किसी को दुखी कर नहीं सकता। तुम्हें संसार दुखी करता मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम दुखी होना चाहते हो। तुम बहाने खोज लेते हो। और उन बहानों को तुम इकट्ठा करते रहते हो और फिर तुम दुखी हो जाते हो। फिर दुख को तुम छोड़ने को भी राजी नहीं। फिर दुख से तुम चिपटते हो, जैसे वह संपदा है। दुख को बहुत लोगों ने संपदा बना लिया है। उसके ही सहारे जीते हैं; नहीं तो जीएंगे कैसे? अगर दुख न होगा तो इनके जीवन की कथा ही बंद हो जाएगी। उनकी आत्म-कथा ही खो जाएगी। दुख से ही अपना ताना-बाना बुनते हैं। और दुख में एक तरह का रस लेते हैं।
वह रस वैसा ही है, जैसे कोई खाज को खुजलाता है। खाज हो जाए तो तुम जानते हो कि खुजलाने से और पीड़ा होगी, लहूलुहान हो जाएगा शरीर, चमड़ी उखड़ जाएगी, मगर फिर भी एक मीठा सुख मिलता है, तुम खुजलाए चले जाते हो। जानते हो कि भूल हो रही है; फिर भी रोक नहीं पाते। दुख को तुमने खाज बना लिया है। और जितना तुम खुजलाओगे दुख को, जितनी उसकी चर्चा करोगे, जितना उस पर ध्यान दोगे, उतने ही दुख को भोजन दे रहे हो।
ध्यान भोजन है। अगर तुमने दुख को दिया, दुख पनपेगा, बढ़ेगा। अगर तुमने सुख को दिया, सुख पनपेगा, बढ़ेगा। ध्यान तो वर्षा है जल की; जिस पौधे पर पड़ेगा, वही बढ़ने लगेगा।
और तुम दुख ही दुख की चर्चा कर रहे हो। सुबह से उठते ही से बस, तुम दुख खोजना शुरू करते हो। हर चीज में दुख पाते हो, हर चीज का दुख इकट्ठा कर रहे हो। धीरे-धीरे तुम दुख का एक अंबार हो गए, एक संग्रह हो गए हो। अब तुम्हारा सिर्फ एक ही सुख है कि कोई तुम्हारा दुख सुन ले।
पश्चिम में पूरा धंधा पैदा हो गया है मनोविश्लेषण का। कुछ नहीं करता मनोविश्लेषक; इतना ही करता है, वह तुम्हारा दुख सुनता है। पश्चिम में कोई दूसरा सुनने को राजी है भी नहीं। लोगों के पास इतना समय नहीं है। पूरब जैसी बात नहीं है कि तुम किसी के भी घर पहुंच जाओ और अपना दुख सुनाने लगो। समय नहीं है लोगों के पास। किसी के पास मिलने आना हो, तो पहले से पूछना पड़ता है, पहले से समय लेना पड़ता है। ऐसे किसी के घर भी सिर उठाया और पहुंच गए! समय नहीं है। पति के पास समय नहीं है कि पत्नी की कहानी सुन ले; पत्नी के पास समय नहीं कि पति की कहानी सुन ले। किसी के पास कोई समय नहीं बचा है।

तो प्रोफेशनल सुनने वाला, धंधेबाज, जो सिर्फ सुनने का ही धंधा करता है
वह मनोविश्लेषक है, साइकोएनालिस्ट है। उसका काम इतना है कि तुम लेट जाओ कोच पर। वह पीछे बैठ जाता है, तुम जो भी बकवास करनी है, करो। वह सुनता है। इससे भी राहत मिलती है। मनोविश्लेषण कुछ भी सहारा नहीं पहुंचाता, लेकिन तुम अपनी बकवास कह कह कर हलके हो जाते हो। कोई तुम्हें इतने ध्यान से सुनता है, यह बात ही बड़ा मजा देती है। तुम और दुख बढ़ा-बढ़ा कर लाने लगते हो। और उसको तो ध्यान से सुनना ही पड़ता है क्योंकि वह पैसा ले रहा है सुनने के। यह कभी अतीत के दिनों में किसी ने सोचा भी न होगा कि कभी प्रोफेशनल धंधेबाज सुनने वालों की जरूरत पड़ेगी। जिनका कुल काम उतना होगा कि तुम्हारी बकवास वे सुनें उतना समय उन्होंने दिया, उतना पैसा तुम दे दो।
पूरब की हालत उलटी है, अभी भी उलटी है। अभी भी कोई किसी की छाती पर जाकर बैठ जाए, तो वह कितना ही उसको उबाए, कितना ही उसको सताए, मगर वह कहता है, बड़ी कृपा की, अतिथि देवता है। आप आए, अच्छा हुआ।
मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा था स्टेशन की तरफ। एक आदमी ने रोका। मित्र पुराने परिचित, कि बड़े मियां, कहां जा रहे हो?
उसने कहाः बंबई जा रहा हूं। ट्रेन पकड़नी है।
तो उस आदमी ने कहाः अभी बजा क्या है? ट्रेन तो पांच बजे जाती है बंबई की। और तुम अभी से भागे जा रहे हो? अभी बजा क्या है?
तो मुल्ला ने कहाः अभी बजा तीन है।
उसने कहाः हद हो गई! तीन बजे से भागे जा रहे हो पांच बजे की ट्रेन पकड़ने के लिए?
मुल्ला ने कहाः भाई साहब! अभी तुम जैसे कई बेवकूफ रास्ते में मिलेंगे। पांच बजे तक भी पहुंच जाऊं तो बहुत है।
अभी पूरब में यही चल रहा है। लेकिन पश्चिम में हालात बदल गई हैं। किसी
के पास कोई समय नहीं है। तो धंधेबाज सुनने वाला चाहिए। बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि आने वाली सदी में मनोविश्लेषण सबसे बड़ा व्यवसाय होगा। इक्कीसवीं सदी में हर मोहल्ले में दो-चार मनोवैज्ञानिकों की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि कोई किसी को सुनने को राजी नहीं होगा। क्यों कोई किसी की सुने?
और मनोवैज्ञानिक सुनता है। पता है, मनोवैज्ञानिक काफी महंगी फीस लेता है। एक बैठक के सौ, दो सौ, पांच सौ रुपये, या हजार रुपये--मनोवैज्ञानिक की प्रतिष्ठा पर निर्भर होता है। एक घंटा बकवास सुनता है, हजार रुपये लेते है। लोग सालों मनोविश्लेषण करवाते हैं। तीन साल, चार साल, पांच साला ऐसे मरीज हैं, जो दसों साल से इलाज करवा रहे हैं। हजार रुपया प्रति घंटे का चुका रहे हैं।
और मनोवैज्ञानिक उनको कैसे सुधार पाएगा, वह मैं जानता नहीं। क्योंकि यहां मेरे पास मनोवैज्ञानिक आते हैं अपने इलाज के लिए। पश्चिम से आ रहे हैं। जो हजारों मरीजों का इलाज कर रहे हैं, वे फिर खुद अभी इलाज के लिए चले आ रहे हैं कि उनके मन में शांति नहीं है।
मगर वह मरीज को राहत मिल रही है कि कोई सुन रहा है, बस! सुनने से कितनी सांत्वना मिलती है! तुम्हारा दुख कोई ध्यान दे रहा है।
लेकिन तुम्हें पता नहीं कि जब भी तुम्हारे दुख को तुम ध्यान दो या कोई
भी ध्यान दे--ध्यान वर्षा है। तुम्हारे दुख का पौधा और बड़ा होगा। सुख को ध्यान दो, दुख की उपेक्षा करो। एक कांटा गड़ जाए तो उसके लिए हाय-तोबा मत बचाओ। जीवन में बहुत फूल हैं, उनको देखो। जरा सी पीड़ा आ जाए, तो उसको सिर पर लिए मत घूमो। अनुगृहीत होने के लिए बहुत परमात्मा ने दिया है, थोड़ा उस तरफ स्मरण करो--सुख सुरति सों।
एक मुसलमान बादशाह हुआ। उसका नौकर उसे बड़ा प्रिय था--एक नौकर। इतना प्रिय था कि रात उसके कमरे में भी वह नौकर सोता ही था। उससे बड़ी निकटता थी, बड़ी आत्मीयता थी। दोनों जंगल जा रहे थे। शिकार पर निकले थे। एक वृक्ष के नीचे खड़े हुए। सम्राट ने हाथ बढ़ाया और फल तोड़ा। जैसे उसकी सदा आदत थी, कुछ भी उसे मिले तो वह नौकर को भी देता था। वह मित्र जैसा था नौकर। उसने उसे काटा, एक कली नौकर को दी। उसने खाई और उसने कहाः अहोभाग्य! एक और दें।

दूसरी भी ले ली, वह भी खा ली। बड़ा प्रसन्न हुआ। कहाः एक और दें। एक ही बची, एक टुकड़ा ही बचा सम्राट के हाथ में; तीन उसे दे दिए।
सम्राट ने कहाः यह तो तू हद कर रखा है। अब एक मुझे भी चखने दे। और तेरा भाव देख कर, तेरी प्रसन्नता देख कर ऐसा लगता है, कोई अनूठा फल है। उसने कहा कि नहीं मालिक। फल निश्चित अनूठा है मगर खाऊंगा मैं ही, आप नहीं। छीन-झपट करने लगा। सम्राट नाराज हुआ उसने कहाः यह भी सीमा के बाहर की बात हो गई। दूसरा फल भी नहीं है वृक्ष पर। सम्राट ने छीन-झपटी में ही अपने मुंह में फल का टुकड़ा रख लिया--जहर था! थूक दिया; उसने कहा कि नासमझ! और तू मुस्कुरा रहा है? तूने कहा क्यों नहीं?
उस नौकर ने कहाः जिन हाथों से बहुत मीठे फल खाए, एक जहरीले फल के लिए क्या बात उठानी, क्या चर्चा करनी! जिन हाथों से बहुत मिष्ठान्न मिले, जिस प्रसाद से जीवन भरा है, उसके हाथ से एक अगर कड़वा फल भी मिल गया, तो उसकी बात ही क्यों उठानी? उसको कहां रखना तराजू पर? इसलिए जिद कर रहा था कि एक टुकड़ा और दे दें कि आपको पता न चल जाए। क्योंकि वह पता चल जाए आपको, तो भी जाने- अनजाने शिकायत हो गई। अगर आपके हाथ में एक टुकड़ा छोड़ दिया मैंने, कुछ न कहा कि कड़वा है, सिर्फ छोड़ दिया, और आप जान गए कि कड़वा है, तो मैंने कह ही दिया। बिना कहे कह दिया। इसलिए छीन-झपट कर रहा था मालिक, माफ कर दे। चाहता था, यह पता न चले। अनुग्रह अखंड रहे, शिकायत की बात न उठे, इसलिए छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। आप माफ कर दें।
भक्त का यही भाव है परमात्मा के प्रति। जिस हाथ से इतना मिला है, जिसके दान का कोई अंत नहीं है, जिसका प्रसाद प्रतिपल बरस रहा है, श्वास-श्वास में जिसकी सुवास है, धड़कन धड़कन में जिसका गीत है, क्या शिकायत करनी उसकी? क्या दुख की बात उठानी?
छोड़ो! दुख की चर्चा बंद करो, अन्यथा दुख बढ़ेगा। दुख की उपेक्षा करो, दुख में रस मत लो। घाव में अंगुली डाल कर मत चलाओ। नहीं तो घाव हरा है, हरा ही बना रहेगा। वह कभी भरेगा कैसे? यह खुजलाहट बंद करो।
सुख सुरति सों--परमात्मा का स्मरण करो सुखपूर्वक। और इतना सुख है कि कोई कारण नहीं कि क्यों तुम सुखपूर्वक परमात्मा का स्मरण न कर सको। तुम्हारा होना ही इतना बड़ा सुख है, श्वास का चलना ही इतना बड़ा सुख है। तुम हो, यह कोई छोटी घटना है? इससे बड़ी घटना तुम कल्पना कर सकते हो? होने से बड़ा और क्या हो सकेगा?
तुम हो, होशपूर्ण हो, तुम्हारे भीतर एक जगमगाती चेतना का एक दीया है
और इससे बड़ा क्या चाहते हो? सच्चिदानंद की तुम्हारी पूरी संभावना है, और तुम्हारी क्या मांग है? किसलिए भिखारी बने हो?
द्वार खुला है, थोड़े सुखपूर्वक बैठ जाओ, थोड़ा सुखपूर्वक उसकी सुरति
से भरो। जैसे-जैसे सुख समाएगा, जैसे-जैसे सुख की भनक तुम्हारे चारों तरफ गूंजने लगेगी, जैसे-जैसे सुख नाचेगा, जैसे-जैसे सुख में तुम डूबोगे, सुख तुम में डूबेगा? जैसे-जैसे तुम सुख के साथ एक होने लगोगे--और उसका स्मरण एक महासुख बन जाएगा। आंख खोलोगे, पाओगे, द्वार खुला है। द्वार खुला ही है। सुख सुरति सों--दुख को मत पोसो, दुख को मत अपने ऊपर रोपो। दुख को मत ढोओ। सुख की तरफ मुड़ो। ध्यान सुख की तरफ ले जाओ, और दोनों संभावनाएं हैं-- सदा हैं।
मैंने सुना है कि एक कारागृह में दो व्यक्ति बंद थे वे दोनों ही पहले
ही दिन कारागृह में आए थे। दोनों ही सींखचों को पकड़ कर खिड़कियों की खड़े थे। एक ने देखा, सींखचों के बाहर ही गंदा डबरा। वर्षा के दिन होंगे, मच्छर डबरे पर बैठे, बदबू उठती, कूड़ा-करकट इकट्ठा; उसका मन शिकायत से भर गया। और उसने कहा कि जेलखाना, और ऊपर से यह बदबू और यह गंदगी। जीवन नरक है। इससे मर जाना बेहतर है।
दूसरा भी उसी के पास खड़ा था उन्हीं सींखचों को हाथ में पकड़े हुए। उसने आकाश की तरफ देखा, यह पूरे चांद की रात थी। आकाश अपूर्व ज्योत्स्ना से भरा था। अदभुत संगीत था आकाश में। चांद-तारों की गूफ्तगू थी। वह अहोभाव से भर गया और नाचने लगा।
पहले आदमी ने कहाः तू पागल है। यहां नाचने योग्य कुछ भी नहीं।

दूसरे आदमी ने कहाः भला मैं पागल होऊं। तुम्हारी बुद्धिमानी तुम अपने पास रखो। क्योंकि तुम्हारी बुद्धिमानी सिवाय कूड़े-करकट को, कचरों को, डबरों को और कुछ दिखाती भी तो नहीं। पागल सही, मगर मेरे पागलपन से चांद दिखा है। मेरे पागलपन में मैंने खुले आकाश को देखा है, और मेरे पागलपन ने मुझे आनंद से भर दिया है। भला मेरे शरीर को उन्होंने कारागृह में डाल दिया हो, लेकिन चांद को देखने के क्षण में मैं कारागृह में नहीं था। उस घड़ी जो लौ लग गई, चांद की रोशनी के साथ जो संबंध जुड़ गया, उस घड़ी में मेरे हाथ पर जंजीरें नहीं थी; मैं तुमसे कहता हूं। और ये सींखचे मुझे घेरते नहीं थे। शरीर को भला उन्होंने कारागृह में डाल डाल दिया हो, मेरी आत्मा को कारागृह में डालने का कोई उपाय नहीं।
और उस दूसरे आदमी ने कहा कि तुम अगर बाहर भी होते हो तो भी तुम कारागृह में होते। तुम्हारी समझदारी तुम्हारा कारागृह है। तुम्हें यह डबरा फिर भी दिखाई पड़ता; तुम इतने ही दुखी होते।
तुम कहां हो, इससे फर्क नहीं पड़ता, तुम्हारे देखने का ढंग क्या है? ढंग
को बदलो। सुख सुरति सौ--सुख को खोजो, बहुत सुख है। चारों तरफ भरा है। शायद इसीलिए दिखाई नहीं पड़ता है। कितना मिला है! उसकी कोई सीमा है? जरा हिसाब लगाओ, हिसाब लग न पाएगा। अनंत मिला है। तुम्हारे छोटे से आंगन में कितना बरसा है!
जोग समाधि सुख सुरति सों...
वह जो समाधान की समाधि है, वह जो मिलन है परमात्मा से, सुख से, स्मरणपूर्वक करने से घटता है।
... सहजै सहजै आव।
और परमात्मा सहज-सहज चला आता है। जरा भी अड़चन नहीं होती।
ऐसा मैं तुम्हें अपने अनुभव से कहता हूं। मैं गवाह हूं, जो कहता हूं।
दादू के कारण नहीं कह रहा हूं। दादू की बात ठीक है। यह इसलिए कह रहा हूं कि मैं भी वैसा ही जानता हूं--सहजै सहजै आव।
सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।।
द्वार तो खुला है, यही भक्त का भाव है। द्वार बंद नहीं है। परमात्मा मौजूद है, तुम्हारी आंख के सामने खड़ा है। तुम से भी तुम्हारे ज्यादा पास है। इहै भगति का भाव।
ल्यौ लागी तब जाणिए, जेवा कबहूं छूटि न जाइ।
और जल गई तुम्हारे भीतर लो भक्ति की, यह तभी जानना, जब वह कभी छूटे न।
सातत्य बहे धारा। रहे एक सिलसिला भीतर। कभी सूख न जाए, कभी टूट न जाए, कभी बंद न हो जाए।
ल्यौ लागी तब जाणिए, जेवा कबहूं छूटि न जाइ।
कुछ भी हो जाए जीवन में। दुख आए, लेकिन लौ न छूटे; दुख मिट जाएगा।
आपत्ति आए, लौ न छूटे; आपत्ति नष्ट हो जाएगी। नरक आ जाए। लौ न छूटे; नरक खो जाएगा।
उस लौ से बड़ा कुछ भी नहीं है। अगर तुम उसको ही सम्हाल लो, सब सम्हल गया। और वही अगर चूक गई, तो सब चूक गया। सम्हाले रहो, जो भी तुम सम्हाल रहे हो; कुछ सार न आएगा। आखिर में सब कचरा, कंकड़-पत्थर सिद्ध होंगे।
ल्यौ लागी तब जाणिए, जेवा कबहूं छूटि न जाइ।
वह लौ भी क्या, जो लगे और छूटे! वह तो मन का ही खेल रहा होगा।
इसे थोड़ा समझो। जो लगे और छूटे, वह एक विचार ही रहा होगा। विचार आते हैं, चले जाते हैं। लौ तो वही है, जो निर्विचार में लग जाए; फिर आना-जाना नहीं है। फिर छूटेगा क्या? फिर तो तुम्हारा स्वभाव बन गई लौ। विचार की तरंगें तो आती हैं, जाती हैं। आज हैं, कल नहीं हैं। लगती हैं, छूट जाती हैं। क्षण भर को रहती हैं, चली जाती हैं। विचार के लिए तो तुम एक धर्मशाला हो। वे रुकते हैं। धर्मशाला इसलिए कि कुछ देते भी नहीं; मुफ्त रुकते हैं, भीड़-भड़क्का किए रहते हैं तुम्हारे भीतर, फिर चले जाते हैं। तुम तो बीच का एक पड़ाव हो।

इसलिए अगर यह लौ भी एक यात्री की तरफ ही तुम्हारे पास आए, रात भर रुके
और सुबह चली जाए, तो यह लौ ही नहीं है। दादू कहते हैं, इसको तुम लौ मत कहना। लौ तो वही है--ल्यौ लागी तब जाणिए, जेवा कबहूं छूटि न जाइ। वह उसका लक्षण है। असली लौ का लक्षण है कि वह छूटे न।
तब इसका अर्थ हुआ कि असली लौ तभी लग सकती है जब विचार से ज्यादा गहरे
तल पर उसकी चोट हो; निर्विचार में लगे। क्योंकि निर्विचार आता न जाता; सदा है। निर्विचार तुम्हारी वह अवस्था है, जो आती-जाती नहीं; वह तुम्हारा स्वभाव है।
जीवत यौं लागी रहे, मूवा मंझि समाइ।
और जीते जी तो लगी ही रहेगी, मर कर भी नहीं मिटती। तुम मिट जाओगे, लौ अनंत में समा जाएगी।
यह बड़ी प्यारी बात है। भक्त जब खोता है, तो भक्त तो खो जाता है, उसकी लौ
का क्या होता है? लौ तो सारे संसार में लग जाती है। भक्त की लौ भटकती रहती है संसार में। और न मालूम कितने सोयों को जगाती है, न मालूम कितने अंधों की आंखें खोलती है, न मालूम कितने बंद हृदयों को धड़काती है, न मालूम कितनों को प्रेम में उठाती है, प्रार्थना में जगाती है। भक्त तो खो जाता है; पर उसकी लौ संसार में बिखर जाती है। वह भटकती है, घूमती है।
बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र तो खो जाते हैं; लेकिन उनकी आग-- उनकी आग आज भी जलती है। तुम बुद्ध को तो न पा सकोगे अब, वह बात गई। वह बूंद तो समा गई सागर में। बुद्ध में जो जली थी प्यास, बुद्ध में जो जला था ज्ञान, वह अब भी मौजूद है, वह अब भी संसार में समाया हुआ है। तुम्हारे पास अगर थोड़ी भी समझ हो, तुम उससे आज भी जुड़ सकते हो अगर तुम्हारा प्रेम हो तो आज भी तुम बुद्ध से उतना ही लाभ ले सकते हो, जितना बुद्ध के साथ उनके जीवन में उनके शिष्यों ने लिया होगा। लौ तो समा जाती है संसार में, अस्तित्व में।
जीवत यौं लागी रहे, मूवा मंझि समाइ।
और मरने पर समष्टि में समा जाती है।
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगाम।
सबद गुरु का ताजना, कोइ पहुंचे साधु सुजान।।
मन ताजी--मन है घोड़ा। चेतन चढ़ै--और चेतन है सवार।
अभी उलटी है हालत। घोड़ा चढ़ा सवार पर। अभी तो घोड़ा जहां ले जाता है, वही तुम जा रहे हो। अभी तो घोड़ा जहां बताता है, वहीं तुम्हारी आंखें मुड़ जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा था अपने गधे पर। बाजार में लोगों ने रोका कि कहां जा रहे हो बड़ी तेजी में?
उसने कहाः मुझसे मत पूछो, इस गधे से पूछो।
लोगों ने कहाः क्यों? तुम जा रहे हो, गधे से क्यों पूछे?
उसने कहाः मैं समझ गया अनुभव से कि मैं जहां ले जाना चाहूं, यह गधा तो वहां जाता नहीं। तो अब मैं जहां यह गधा ले जाता है, वहीं जाता हूं। अब यह कहां ले जा रहा है, कुछ पता नहीं। तेजी से जा रहा है, इतना पक्का है। कहीं पहुंचेगा--जरूर पहुंचेगा। जा रहा है, तो कहीं न पहुंचेगा और जब मैं चेष्टा करके इसको कहीं ले जाता था, तो बड़ी फजीहत होती थी। कहीं बाजार में अड़ गया, तो लोग हंसी-मजाक करते कि गधा भी नहीं मानता इसकी। अब कोई हंसी-मजाक नहीं करता। अब लोग समझते हैं कि देखो। गधा बिल्कुल इसके पीछे चलता है, कभी अड़ता नहीं। हालत बिल्कुल उलटी है। अब अड़ने का सवाल ही नहीं। अब जहां यह जाता है, हम इसके साथ जाते हैं।
तुमने मन के साथ चलना शुरू कर दिया है। तुम जन्मों से मन के साथ चल रहे हो। अगर कोई तुमसे पूछे, कहां जा रहे हो? तो तुम्हें भी यही कहना पड़ेगा, पूछो गधे से। तुम्हें भी पता नहीं, कहां जा रहे हो? मन जहां ने जाए।
मन कहां ले जाएगा, कहना मुश्किल है। मन कहीं ले जाता नहीं। अक्सर तेजी
से जाता है। मगर कहीं ले जाता नहीं। दौड़ता है। पहुंचाता नहीं। और मन की गति वर्तुलाकार हैं। वह कोल्हू के बैल की तरह चलता रहता है। गोल घेरे में घूमता रहता है--वहीं--वहीं फिर वहीं।

तुम गौर से देखो अपने मन को; तो तुम वर्तुल को पहचान लोगे। एक महीने तक अपने मन की डायरी रखो। लिखते जाओ मन क्या क्या करता है। सोमवार को सुबह क्रोध किया, फिर सोमवार को शाम बड़ी दया की, फिर दान किया, फिर बड़े नाराज हुए। फिर बड़े कठोर हो गए। सब लिखते जाओ। एक महीना तुम डायरी बनाओ, तुम बड़े हैरान होओगे, यह तो वर्तुल है। वैसा का वैसा घूमता चला जाता है। फिर वही करते हो, फिर सोमवार आ गया, फिर नाराज। अगर तुम ठीक से निरीक्षण करोगे, तो तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारी जिंदगी यंत्रवत है।
जैसे स्त्रियों का मासिक धर्म ठीक अट्ठाइस दिन के बाद आ जाता है, वैसे
ही तुम्हारी मन की स्थितियां भी ठीक अट्ठाइस दिन के घेरे में घूमती रहती हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर तुम कभी जाग कर उसको सोचते भी नहीं, देखते भी नहीं। इस वर्तुल में भटकने से कैसे पहुंचोगे?

मन ताजी--दादू कहते हैंः मन को घोड़ा करो। वह सवार बन कर बैठ गया है। मन
पर चढ़ो--चेतन चढ़ै--चढ़ाओगे कैसे चेतन को मन पर? अगर चेतन जग जाए, तो चढ़ जाता है। जागना, चढ़ना है। अगर तुम होश से भर जाओ, अगर तुम मन को देखने वाले बन जाओ, अगर मन के साक्षी बन जाओ, चेतन चढ़ जाता है। जब तक तुम्हारा साक्षी नहीं है मौजूद, तब तक मन चढ़ा रहेगा, तुम गुलाम रहोगे। मन चलाएगा। तुम पीछे- पीछे घसीटोगे।
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगाम।
और वह जो लौ है परमात्मा की, उसको बना लो लगाम। उस लौ से ही चलाओ मन को।
बड़ा प्यारा वचन है। उस लौ से ही चलाओ मन को। मन की गतिविधि में वह लौ ही समा जाए। मनुष्य लौ की मान कर चले वहीं जाओ, जहां जाने से परमात्मा मिले। वही करो, जिसे करने से परमात्मा मिले। वही होओ, जो होने से परमात्मा मिले।
बाकी सब असार है।
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगाम।
खाओ तो परमात्मा को पाने के लिए। पीओ तो परमात्मा को पाने के लिए। जगो
तो परमात्मा को पाने के लिए। सोओ तो परमात्मा को पाने के लिए--ल्यौ की करे लगाम।
सबद गुरु का ताजना, ...
और गुरु के शब्द को कोड़ा बन जाने दो--सबद गुरु का ताजना। वह तुम्हें चोट करे तो भयभीत मत हो जाओ। वह प्यार करता है, इसीलिए चोट करता है। वह तुम्हें मारे तो घबड़ाओ मत, तो शत्रुता मत पाल लो। क्योंकि वह तुम्हें मारता है सिर्फ इसीलिए कि उसकी करुणा है, वह तुम्हें खींचे तुम्हारे रास्तों से, तो संदेह मत करो। क्योंकि अगर संदेह किया तो वह खींच न पाएगा। भरोसा चाहिए। भरोसा होगा तो ही खींचे जा सकोगे।
सबद गुरु का ताजना, ...
और वह जो गुरु का शब्द है, उसे तुम कोड़ा बना लो। और जब भी मन तुम्हारा यहां-वहां जाए, लौ की न माने, लगाम की मान ले, तब तो कोड़े की कोई जरूरत नहीं। अगर सब तरफ से परमात्मा पर पहुंचने का आयोजन चलता रहे, तब तो कोड़े को कोई जरूरत नहीं। लेकिन कभी-कभी लगाम की न माने, घोड़ा जिद्दी हो, जैसे कि सब घोड़े हैं, सभी मन हैं, तो फिर कोड़े की जरूरत पड़े। तो फिर तुम अपने हाथ में निर्णय मत लो, निर्णय गुरु के हाथ में दे दो। फिर वह जो कहे, वही करो। उस पर ही छोड़ दो। उसका अर्थ होता हैः सबद गुरु का ताजना।
बुद्ध ने कहा है कि दुनिया में चार तरह के लोग हैं। एक तो उन घोड़ों जैसे हैं, जिनको तुम मारो, ठोको, पीटो, तब बामुश्किल चलते हैं। और वह भी घड़ी दो घड़ी में भूल जाते हैं, फिर खड़े हो जाते हैं। दूसरी तरह के लोग उन घोड़ों की तरह हैं, जिनको तुम मारो, तो याद रखते हैं, चलते हैं, जल्दी भूल नहीं जाते। तीसरे उन घोड़ों की तरह हैं, जिनको मारने की ज्यादा जरूरत नहीं; सिर्फ कोड़े को फटकारो, मारो मत, और घोड़ा सावधान हो जाता हैं कि अब अगर चूके तो कोड़ा पड़ेगा। वह चलने लगता है। और चौथे, बुद्ध ने कहा है कि वे बड़े अनूठे लोग हैं, वे वे हैं, जिनको फटकारने की भी जरूरत नहीं पड़ती। कोड़े की छाया दिखाई पड़ जाए कि कोड़ा उठ रहा है। छाया दिखाई पड़ जाए घोड़े को, बस काफी है। घोड़ा रास्ते पर आ जाता है।

तुम इन चार घोड़ों में कहां हो, ठीक से अपने को पहचान लो। और चौथा घोड़ा बनने की कोशिश करो। सिर्फ सबद गुरु का ताजना, तुम्हारे लिए कोड़ा बन जाए, तो धीरे-धीरे उसकी छाया भी तुम्हें चलाने लगेगी। उसका स्मरण तुम्हें चलाने लगेगा। यादभर आ जाएगी गुरु के शब्द की, तुम रुक जाओगे कहीं जाने से, कहीं और चलने लगोगे।
कोई पहुंचे साधु सुजान, ...
तो इन तीन बातों को पूरा कर लेते हैं ऐसे कुछ साधु पुरुष, जागे हुए पुरुष पहुंच पाते हैं।
आदि अंत मध एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा।।
वह तो परमात्मा का आनंद है, वह सदा समस्वर है। शुरू में भी वैसा, मध्य में भी वैसा, अंत में भी वैसा। उसमें कोई परिवर्तन नहीं है, वह शाश्वत है।
उसमें कोई रूपांतरण नहीं है। वह बदलता नहीं है। वह सदा एक-रस है।
आदि अंत मध्य एक रस, टूटै नहिं धागा।
जब तुम्हारा धागा इस एकरसता से जुड़ जाए और टूटे न, तभी समझना मंजिल आई। उसके पहले विश्राम मत करना। उसके पहले पड़ाव बनाना पड़े, बना लेना।
लेकिन जानना कि यह घर नहीं है। रुके हैं रात भर विश्राम के लिए। सुबह होगी, चल पड़ेंगे। जब तक ऐसी घड़ी न आ जाए कि उस एकरसता से धागा बंध जाए पूरा का पूरा--टूटै नहिं धागा--तब तक मत समझना मंजिल आ गई।
बहुत बार पड़ाव धोखा देते हैं मंजिल का। जरा सा मन शांत हो जाता है, तुम सोचते हो, बस हो गया! जल्दी इतनी नहीं करना जरा रस मिलने लगता है, आनंद-भाव आने लगता है, सोचते हो, हो गया। इतनी जल्दी नहीं करना। ये सब पड़ाव हैं। प्रकाश दिखाई पड़ने लगा भीतर, मत सोच लेना कि मंजिल आ गई। ये अभी भी मन के ही भीतर घट रही घटनाएं हैं। अनुभव होने लगे अच्छे सुखद, तो भी यह मत सोच लेता कि पहुंच गए।
क्योंकि पहुंचोगे तो तुम तभी--दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा--तब जानेंगे, दादू कहते हैं कि तुम जाग गए जब एक ही रह जाए। तुम और परमात्मा दो न रहो। अगर परमात्मा भी सामने खड़ा दिखाई पड़ जाए, तो भी समझना कि अभी पहुंचे नहीं, फासला कायम है। अभी थोड़ी दूरी कायम है। एक ही हो जाओ। दादू एकै रहि गया--अब दो न बचे। जब जाणै जागा--तभी जानना कि जाग गए। तभी जानना कि घर आ गया।
अर्थ अनूपम आप है--और दादू कहते हैंः मत पूछो कि उस घड़ी में कैसे अर्थ
के फूल खिलेंगे? मत पूछो कि कैसी अर्थ की सुवास उठेगी?
अर्थ अनुपम आप है--वह अर्थ अनुपम है। उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती।
इस संसार में वैसा कुछ भी नहीं है जिससे इशारा किया जा सके। इस संसार के सभी इशारे बड़े फीके हैं। इस संसार के इशारों से भूल हो जाएगी। अर्थ अनुपम-- अद्वितीय है वह, बेजोड़ है। वैसा कुछ भी नहीं है।
अर्थ अनुपम आप है--बस, वह अपने जैसा आप है।
और अनरथ भाई--और उसके अतिरिक्त जो भी है, सब अर्थहीन है।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई।
और ऐसा जान कर उसमें ही लौ को लगा दो। दादू कहते हैंः मैंने ऐसा जान कर उसमें ही लौ लगा दी। दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई। उसमें ही लौ लगा दी।
लौ शब्द समझ लेने जैसा है। दीये में लौ होती है। तुमने कभी ख्याल किया
कि दीये की लौ, तुम कैसा भी दीये को रखो, वह सदा ऊपर की तरफ जाती है। दीये को तिरछा रख दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। लौ तिरछी नहीं होती। दीये को तुम उलटा भी कर दो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लौ फिर भी ऊपर की तरफ ही भागी चली जाती है। पानी का स्वभाव है। नीचे की तरफ जाना; अग्नि का स्वभाव है ऊपर की तरफ जाना। लौ का प्रतीक कहता है, तुम्हारी चेतना जब सतत ऊपर की तरफ जाने लगे, शरीर की कोई भी अवस्था हो--सुख की हो कि दुख की हो, पीड़ा की हो, जीवन की हो कि मृत्यु की हो; जवानी हो कि बुढ़ापा; सौंदर्य हो कि कुरूपता; सफलता हो कि असफलता; कोई भी अवस्था में रखा हो दिया, इससे कोई फर्क न पड़े। लौ सदा परमात्मा की तरफ जाती रहे, ऊपर की तरफ जाती रहे।

दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई।

ये एक-एक शब्द प्यारे हैं। मैं फिर दोहरा देता हूं--

जोग समाधि सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।।
ल्यौ लागी तक जाणिए, जवो कबहूं छूटि न जाइ।
जीवत ज्यौं लागी रहे, मूवा मंझि समाइ।।
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगाम।
सबद गुरु का ताजना, कोई पहुंचे साधु सुजान।।
आदि अंत मध एक रस, टूटैं नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा।।
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई।।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
आठवां प्रवचन

जिज्ञासा-पूर्तिः चार

पहला प्रश्नः जब आप प्रवचन कर रहे होते हैं, उस समय यदि आपका मुख निरखता हूं, तो शब्द सुनाई नहीं देते, और शब्द सुनता हूं तो बेचैनी सी मालूम होती है। ऐसा क्यों?

शब्द का मूल्य भी कोई ज्यादा नहीं है। शब्द न भी सुनाई पड़े, तो चलेगा, शब्द सुनाई भी पड़ जाए तो कोई लाभ नहीं है। मेरी तरफ देखोगे तो ध्यान बन जाएगा। अगर ध्यान ठीक बन गया, अगर तार जुड़ गया, तो शब्द सुनाई पड़ने बंद हो जाएंगे। क्योंकि शब्द सुनने के लिए भी एक बेचैन मन चाहिए। उद्विग्न मन चाहिए, अशांत मन चाहिए।
उस घड़ी में, तार-बंधी घड़ी में निःशब्द सुनाई पड़ने लगेगा; वही असली सत्संग है। मैं क्या कहता हूं वह सुनाई पड़े, इसका बहुत मूल्य नहीं है। मैं क्या हूं वही सुनाई पड़ जाए, तो ही कोई मूल्य है। बोलना तो बहाना है, शब्द तो उपाय हैं, पहुंचना तो निःशब्द पर है। जागना तो मौन में है।
अगर ऐसा होता हो तो शब्द की बिल्कुल फिकर ही छोड़ दो; फिर मेरी तरफ देखते रहो। बंध जाने दो लौ को। भूल ही जाओ कि मैं बोल रहा हूं। कोई जरूरत नहीं है याद रखने की। शब्द को इकट्ठा करके भी कुछ पा न सकोगे। निःशब्द में जो सुन लोगे, निःशब्द को सुन लोगे, तो सब पा लिया। मौन में ही जुड़ सकते हो मुझ से। बोलने से तो टूट पैदा होती है। बोल बोल कर तो कभी कोई संवाद होता नहीं। बोलने में तो विवाद छिपा ही है। शून्य में ही संवाद है।
तो अच्छा ही हो रहा है। इससे नाहक चिंता मत लो, होने दो। अपने को बिल्कुल छोड़ दो उसमें। और अगर परेशानी पैदा करोगे, चिंता लोगे कि यह तो शब्द सुनाई नहीं पड़ता, शून्य पकड़ लेता है, और सुनने की चेष्टा करोगे देखना बंद करके--तो बेचैनी मालूम होगी। बेचैनी मालूम होगी, क्योंकि महत्वपूर्ण को छोड़ कर, गैर-महत्वपूर्ण को पकड़ते हो; चेतना भीतर बेचैन होगी। हीरों को छोड़ कर कंकड़-पत्थर बीनते हो, बेचैनी स्वाभाविक है। उचित ही हो रहा है। सत्संग का अर्थ ही हैः गुरु के पास मौन में बैठ जाना।
मैं बोलता हूं इसी जगह लाने को कि किसी दिन तुम मौन में बैठने के योग्य हो जाओगे। बोलना लक्ष्य नहीं है। तुम्हें समझाने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। समझाने को कुछ संसार में है भी नहीं। सब शब्द हैं, कोरे शब्द हैं। कितने ही सौंदर्य से उन्हें जमा दो, पानी के बबूलों पर आए हुए इंद्रधनुष हैं। अभी हैं, अभी मिट जाएंगे। उन्हें संपदा मत समझ लेना। संपदा तो तुम्हारे भीतर है। जो शून्य में ही दिखाई पड़ेगी, जब मन की सब तरंगें बंद हो जाएंगी।
तो देखो। मन भर कर देखो। इसलिए तो गुरु के पास जब हम जाते हैं तो उस जाने की घटना को हम दर्शन कहते हैं। दर्शन का मतलब होता हैः देखेंगे गुरु को। उसे हम श्रवण नहीं कहते। सुनेंगे गुरु को, ऐसा नहीं कहते; देखेंगे। मन भर कर देखेंगे। आकंठ भर जाएंगे, इतना देखेंगे। बाढ़ आ जाए देखने की, इतना देखेंगे।
उस देखने में ही वह चिनगारी सुलगेगी, जिसको दादू लौ कहते हैं जगेगी लौ। गुरु की भागती हुई अग्नि, तुम्हारी राख में दबी अग्नि को भी पुकार लेगी। गुरु की ऊपर जाती हुई अग्नि तुम्हारी अग्नि को भी ऊपर जाने के लिए दिशा-निर्देश बन जाएगी। गहराई गहराई को पुकारेगी, अंतस अंतस को पुकारेगा। शब्द तो दीवाल बन जाते हैं। शब्दों की दीवाल बन जाएगी। तुम मुझे सुन लोगे, तुम मुझे समझ भी लोगे और तुम मुझसे चूकते भी रहोगे। यह तो मजबूरी है कि तुम अभी शून्य नहीं समझ पाते, इसलिए मुझे शब्द बोलना पड़ रहा है। जिस दिन तुम शून्य समझने लगोगे, शब्द का आयोजन व्यर्थ है।
और अगर ऐसा हो रहा है कि मुझे देखते-देखते सुनना बंद हो जाता है, अहोभागी हो। अनुगृहीत हो जाओ। धन्यवाद दो परमात्मा को। सुनने की कोई जरूरत नहीं। देखो, जी भर कर देखो। दर्शन की ऊर्जा को बहने दो।

उसी घड़ी बंध जाओगे गुरु के साथ। तुम्हारी राख झड़ जाएगी। आग तो तुम्हारे भीतर भी छिपी है; राख जम गई है। मेरे शब्द इकट्ठे कर लोगे, क्या होगा? और राख जम जाएगी। ऐसे ही तुम काफी ज्ञानी हो। मेरे शब्दों का संग्रह तुम्हें और ज्ञानी बना देगा।
और ध्यान रखो, परमात्मा को उपलब्ध करना कोई परिमाण, क्वांटिटी की बात नहीं है कि कितना तुम जानते हो। परमात्मा को उपलब्ध करना गुण-रूपांतरण की बात है, क्वालिटी की बात है। तुम सौ तथ्य जानते हो कि हजार कि करोड़, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम्हारे होने का गुण बदल जाए, तो तुम परमात्मा को जानते हो। पांडित्य से कोई कभी जानता नहीं।
मैंने सुना है, स्वर्ग के द्वार पर ऐसा एक दिन हुआ कि दो सीधे-सादे साधु--सरल-चित्त--द्वार पर दस्तक दिए, तभी एक पंडित ने भी द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुला। पंडित के लिए तो बड़ा स्वागत-समारंभ किया गया। मखमली पायदान बिछाए गए, बाजे बजे, फूलों की वर्षा की गई। उन दो साधुओं के लिए कोई खास स्वागत-समारोह न हुआ। लगा उन्हें कि उनकी उपेक्षा की जा रही है। वे थोड़े हैरान हुए।
जब समारोह पूरा हो गया तब उन्होंने द्वारपाल को पूछा कि बात हमारी समझ में न आई। हमने तो सदा सुना था कि साधुता कि गरिमा है वहां। यहां भी साधुता की कोई गरिमा नहीं मालूम होती। हमने तो सुना था, सरल का स्वीकार है, यहां भी सरल के लिए कोई स्वीकार नहीं। हमने तो सुना था, जीसस के वचन सुने थे कि जो दरिद्र हो रहे अपने भीतर वही परमात्मा से समृद्ध हो जाएंगे। हम दरिद्र होकर आए हैं, लेकिन लगता है, यहां भी हमारी उपेक्षा है।
उस द्वारपाल ने कहा कि तुम व्यर्थ ही चिंता में मत पड़ो। तुम जैसे साधु-पुरुष तो रोज ही आते हैं, यह पंडित पहली दफा आया है। इसका स्वागत-समारंभ करना उचित है। सरल-चित्त व्यक्ति तो रोज ही स्वर्ग आते रहते हैं। यह उनका घर है। अपने ही घर कोई आता है, क्या स्वागत-समारंभ करना होता है? मगर यह पंडित पहली दफा आया है। ऐसा सदियों में कभी घटता है। इसका स्वागत-समारंभ उचित है। तुम नाहक चिंता मत लो।
तुम कितने ही पंडित हो जाओ, इससे तुम नहीं पहुंचोगे। सुनने से नहीं, स्मृति के भर लेने से नहीं, आंख के खुलने से। इसीलिए तो हमने भारत में तत्वविद्या को दर्शनशास्त्र कहा है। सारी दुनिया उसे फिलासफी कहती है, फलसफा कहती है, और दूसरे नाम हैं, हमने उसे "दर्शन" कहा है। क्योंकि हमने यह जाना है कि केवल सोचने-विचारने से कोई सत्य उपलब्ध नहीं होता, आंख के खुलने से उपलब्ध होता है। इसलिए ज्ञानियों को हमने द्रष्टा कहा है, देखने वाला कहा है। सोचने वाला नहीं कहा, विचारक नहीं कहा, द्रष्टा कहा है। उन्होंने देखा है सत्य को।
तो अगर तुम भरपूर आंख मुझे देखते हो, इससे ज्यादा शुभ और कुछ भी नहीं है। वही तुम कर पाओ, पर्याप्त है। सत्संग हुआ। तो मैं जो कह रहा हूं, वह भला तुम्हारे भीतर न पहुंचे--जरूरत भी नहीं है--मैं तुम्हारे भीतर पहुंचना शुरू हो जाऊंगा। मेरे शब्दों पर बहुत ध्यान मत दो, मेरे निःशब्द को सुनो। वहीं सत्य का संगीत है।

दूसरा प्रश्नः महानिर्वाण को उपलब्ध हो जाने के बाद भी, ज्ञानी और गुरुजन समष्टि में मिल कर किस प्रकार हमारी सहायता करते हैं? इसे अधिक स्पष्ट करें।

सहायता करते हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं। सहायता होती है। करने वाला तो बचता नहीं। नदी तुम्हारी प्यास बुझाती है, ऐसा कहना ठीक नहीं, नदी तो बहती है। तुम अगर पी लो जल, प्यास बुझ जाती है। अगर नदी का होना प्यास बुझाता होता, तब तो तुम्हें पीने की भी जरूरत न थी, नदी ही चेष्टा करती। नदी तो निष्क्रिय बही चली जाती है। नदी तो अपने तई हुई चली जाती है; तुम किनारे खड़े रहो जन्मों-जन्मों तक, तो भी प्यास न बुझेगी। झुको, भरो अंजुली में, पीओ, प्यास बुझ जाएगी।

ज्ञानीजन समष्टि में लीन हो जाने के बाद ही या समष्टि में लीन होने के पहले तुम्हारी सहायता नहीं करते। क्योंकि कर्ता का भाव ही जब खो जाता है तभी तो ज्ञान का जन्म होता है। जब तक कर्ता का भाव है, तब तक तो कोई ज्ञानी नहीं, अज्ञानी है।
मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर रहा हूं, और न तुम्हारी कोई सेवा कर रहा हूं। कर नहीं सकता हूं। मैं सिर्फ यहां हूं। तुम अपनी अंजुली भर लो। तुम्हारी झोली में जगह हो, तो भर लो। तुम्हारे हृदय में जगह हो, तो रख लो। तुम्हारा कंठ प्यासा हो, तो पी लो। ज्ञानी की सिर्फ मौजूदगी, निष्क्रिय मौजूदगी पर्याप्त है। करने का ऊहापोह वहां नहीं है, न करने की आपाधापी है। इसलिए ज्ञानी चिंतित थोड़े ही होता है। तुमने उसकी नहीं मानी, तो चिंतित थोड़े ही होता है। उसने जो तुम्हें कहा, वह तुमने नहीं किया, तो परेशान थोड़े ही होता है। अगर कर्ता भीतर छिपा हो, तो परेशानी होगी। तुमने नहीं माना, तो वह आग्रह करेगा, जबरदस्ती करेगा अनशन करेगा कि मेरी मानो, नहीं तो मैं उपवास करूंगा, अपने को मार डालूंगा अगर मेरी न मानी... । सत्याग्रह शब्द बिल्कुल ही गलत है। सत्य का कोई आग्रह होता ही नहीं।
सब आग्रह असत्य के हैं। आग्रह मात्र ही असत्य है। सत्य की तो सिर्फ मौजूदगी होती है, आग्रह क्या है? सत्य तो बिल्कुल निराग्रह है। सत्य तो मौजूद हो जाता है, जिसको लेना हो, ले ले। उसका धन्यवाद, जो ले ले। जिसे न लेना हो, न ले, उसका भी धन्यवाद, जो न ले। सत्य को कोई चिंता नहीं है कि लिया जाए, न लिया जाए; हो, न हो।
सत्य बड़ा तटस्थ है। करुणा की कमी नहीं है, लेकिन करुणा निष्क्रिय है। नदी बही जाती है, अनंत जल लिए बही जाती है, लेकिन हमलावर नहीं है, आक्रमक नहीं है। किसी के कंठ पर हमला नहीं करती। और किसी ने अगर यही तय किया है कि प्यासे रहना है, यह उसकी स्वतंत्रता है। वह हकदार है प्यासा रहने का। संसार बड़ा बुरा होगा, बड़ा बुरा होता, अगर तुम प्यासे रहने के भी हकदार
न होते। संसार महागुलामी होती, अगर तुम दुखी होने के भी हकदार न होते। तुम्हें सुखी भी मजबूरी में किया जा सकता, तो मोक्ष हो ही नहीं सकता था फिर। तुम स्वतंत्र हो; दुखी होना चाहो, दुखी। तुम स्वतंत्र हो; सुखी होना चाहो, सुखी। आंख खोलो तो खोल लो। बंद रखो, तो बंद रखो। सूरज का कुछ लेना- देना नहीं है। खोलोगे, तो सूरज द्वार पर खड़ा है। न खोलोगे, तो सूरज कोई अपमान अनुभव नहीं कर रहा है।
जीते-जी, या शरीर के छूट जाने पर ज्ञान एक निष्क्रिय मौजूदगी है।
इसको लाओत्सु ने "वुईवेई" कहा है। "वुईवेई" का अर्थ होता हैः बिना किए करना। यह जगत का सबसे रहस्यपूर्ण सूत्र है। ज्ञानी कुछ करता नहीं, होता है। ज्ञानी बिना किए करता है। और लाओत्सु कहता है कि जो कर-कर के नहीं किया जा सकता, वह बिना किए हो जाता है। भूल कर भी, किसी के ऊपर शुभ लादने की कोशिश मत करना, अन्यथा तुम्हीं जिम्मेवार होओगे उसको अशुभ की तरफ ले जाने के।
ऐसा रोज होता है। अच्छे घरों में बुरे बच्चे पैदा होते हैं। साधु बाप बेटे को असाधु बना देता है। चेष्टा करता है साधु बनाने की। उसी चेष्टा में बेटा असाधु हो जाता है। और बाप सोचता है कि शायद मेरी चेष्टा पूरी नहीं थी। शायद मुझे जितनी चेष्टा करनी थी उतनी नहीं कर पाया इसीलिए यह बेटा बिगड़ गया। बात बिल्कुल उलटी है। तुम बिल्कुल चेष्टा न करते तो तुम्हारी कृपा होती। तुमने चेष्टा की, उससे ही प्रतिरोध पैदा होता है।
अगर कोई तुम्हें बदलना चाहे, तो न बदलने की जिद पैदा होती है। अगर कोई तुम्हें स्वच्छ बनाना चाहे, तो गंदे होने का आग्रह पैदा होता है। अगर कोई तुम्हें मार्ग पर ले जाना चाहे, तो भटकने में रस आता है। क्यों? क्योंकि अहंकार को स्वतंत्रता चाहिए, और इतनी भी स्वतंत्रता नहीं!
जो लोग जानते हैं, वह बिना किए बदलते हैं। उनके पास बदलाहट घटती है। ऐसे ही घटती है, जैसे चुंबक के पास लोहकण खिंचे चले आते हैं। कोई चुंबक खींचता थोड़े ही है! लोह-कण खिंचते हैं। कोई चुंबक आयोजन थोड़े ही करता है, जाल थोड़े ही फेंकता है। चुंबक का तो एक क्षेत्र होता है। चुंबक की एक

परिधि होती है, प्रभाव की जहां उसकी मौजूदगी होती है, तुम उसकी प्रभाव-परिधि में प्रविष्ट हो गए कि तुम खिंचने लगते हो, कोई खिंचता नहीं। ज्ञानी तो एक चुंबकीय क्षेत्र है। उसके पास भर आने की तुम हिम्मत जुटा लेना, शेष होना शुरू हो जाएगा। इसीलिए तो ज्ञानी के पास आने से लोग डरते हैं। हजार उपाय खोजते हैं न आने के। हजार बहाने खोजते हैं न आने के। हजार तरह के तर्क मन में खड़े कर लेते हैं न आने के। हजार तरह अपने को समझा लेते हैं कि जाने की कोई जरूरत नहीं।
पंडित के पास जाने से कोई भी नहीं डरता, क्योंकि पंडित कुछ कर नहीं सकता। अब यह बड़े मजे की बात है कि पंडित करना चाहता है और कर नहीं सकता।
ज्ञानी करते नहीं, और कर जाते हैं।
सत्संग बड़ा खतरा है। उससे तुम अछूते न लौटोगे, तुम रंग ही जाओगे। तुम बिना रंगे न लौटोगे; वह असंभव है। लेकिन ज्ञानी कुछ करता है यह मत सोचना। हालांकि तुम्हें लगेगा, बहुत कुछ कर रहा है। तुम पर हो रहा है, इसलिए तुम्हें प्रतीति होती है कि बहुत कुछ कर रहा है। तुम्हारी प्रतीति तुम्हारे तईं ठीक है, लेकिन ज्ञानी कुछ करता नहीं।
बुद्ध का अंतिम क्षण करीब आया, तो आनंद ने पूछा कि अब हमारा क्या होगा?
अब तक आप थे, सहारा था; अब तक आप थे, भरोसा था; अब तक आप थे आशा थी कि आप कर रहे हैं, हो जाएगा। अब क्या होगा?
बुद्ध ने कहाः मैं था, तब भी मैं कुछ कर नहीं रहा था। तुम्हें भ्रांति थी। और इसलिए परेशान मत होओ। मैं नहीं रहूंगा तब भी जो हो रहा था, वह जारी रहेगा। अगर मैं कुछ कर रहा था तो मरने के बाद बंद हो जाएगा।
लेकिन मैं कुछ कर ही न रहा था। कुछ हो रहा था। उससे मृत्यु का कोई लेना-देना नहीं, वह जारी रहेगा। अगर तुम जानते हो कि कैसे अपने हृदय को मेरी तरफ खोलो, तो वह सदा-सदा जारी रहेगा।
ज्ञानी पुरुष जैसा दादू कहते हैं, लीन हो जाते हैं, उनकी लौ सारे अस्तित्व पर छा जाती है। उनकी लौ फिर तुम्हें खींचने लगती है। कुछ करती नहीं, अचानक किन्हीं क्षणों में जब तुम संवेदनशील होते हो, ग्राहक क्षण होता है कोई, कोई लौ तुम्हें पकड़ लेती है, उतर आती है। वह हमेशा मौजूद थी। जितने ज्ञानी संसार में हुए हैं, उनकी किरणें मौजूद हैं। तुम जिसके प्रति भी संवेदनशील होते हो, उसी की किरण तुम पर काम करना शुरू कर देती है। कहना ठीक नहीं कि काम करना शुरू कर देती है, काम शुरू हो जाता है।
इसलिए तो ऐसा होता है कि कृष्ण का भक्त ध्यान में कृष्ण को देखने लगता है। क्राइस्ट का भक्त ध्यान में क्राइस्ट को देखने लगता है। दोनों एक ही कमरे में बैठे हों, दोनों ध्यान में बैठे हों, एक क्राइस्ट को देखता है, एक कृष्ण को देखता है। दोनों की संवेदनशीलता दो अलग धाराओं की तरफ हैं। कृष्ण की हवा है, क्राइस्ट की हवा है, तुम जिसके लिए संवेदनशील हो, वही हवा तुम्हारे तरफ बहनी शुरू हो जाती है। तुमने जिसके लिए हृदय में गड्ढा बना लिया है वही तुम्हारे गड्ढे को भरने लगता है।
अनंतकाल तक ज्ञानी का प्रभाव शेष रहता है। उसका प्रभाव कभी मिटता नहीं क्योंकि वह उसका प्रभाव ही नहीं है, वह परमात्मा का प्रभाव है। अगर वह ज्ञानी का प्रभाव होता तो कभी न कभी मिट जाता। लेकिन वह शाश्वत सत्य का प्रभाव है, वह कभी भी नहीं मिटता।
तुम थोड़े से खुलो। और तुम्हारे चारों तरफ तरंगें मौजूद हैं जो तुम्हें उठा लें आकाश में; जो तुम्हारे लिए नाव बन जाएं और ले चलें भवसागर के पार। चारों तरफ हाथ मौजूद हैं जो तुम्हारे हाथ में आ जाएं, तो तुम्हें सहारा मिल जाए। मगर वे हाथ झपट्टा देकर तुम्हारे हाथ को न पकड़ेंगे।
तुम्हें ही उन हाथों को टटोलना पड़ेगा। वे आक्रमक नहीं हैं, वे मौजूद हैं। वे प्रतीक्षा कर रहे हैं। लेकिन आक्रमक नहीं हैं। ज्ञान अनाक्रमक है। ज्ञान का कोई आग्रह नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लो। ज्ञान का निमंत्रण तो है, आमंत्रण तो है, आग्रह नहीं है। आक्रमण नहीं है। जिसने सुन लिया आमंत्रण, वह जगत के अनंत स्रोतों से जलधार लेने लगता है। जिसने नहीं सुना आमंत्रण, उसके पास ही जलधाराएं

मौजूद होती हैं। और वह प्यासा पड़ा रहता है। तुम किनारे पर ही खड़े-खड़े प्यासे मरते हो; जहां सब मौजूद था।
लेकिन कोई करने वाला नहीं है। करना तुम्हें होगा। बुद्ध ने कहा हैः बुद्धपुरुष तो केवल इशारा करते हैं, चलना तुम्हें होगा।

तीसरा प्रश्नः जन्मों-जन्मों से हमने दुख का अनुभव जाना है। लेकिन किस कारण हमें हमारी भूल नहीं दिख पाती?

पहली तो बात; जन्मों-जन्मों की बात ही तुमने सुनी है, जानी नहीं, यह तुम्हारा बोध नहीं है कि तुम जन्मों-जन्मों से यहां हो।
और जन्मों की तो तुम बात ही छोड़ो, इस जन्म का भी तुम्हें बोध है? तुम
जब पैदा हुए थे, तुम्हें कुछ याद है? कुछ भी तो याद नहीं। वह भी लोग कहते हैं कि यह तुम्हारी मां है, ये तुम्हारे पिता हैं। तुम फलां-फलां तारीख को फलां-फलां समय पैदा हुए थे। ज्योतिषी सर्टिफिकेट देते हैं, या म्युनिसिपल कारपोरेशन के रजिस्टर में लिखा है। बाकी तुम्हें कुछ याद है?
तुम नौ महीने इस जन्म में गर्भ में रहे हो, तुम्हें उन नौ महीने की कुछ याद है? तुम पैदा हुए हो उसकी तुम्हें कुछ याद है? पीछे लौटोगे, तो बहुत पीछे गए तो बस, चार साल की उम्र तक जा पाओगे। उसके बाद फिर स्मृति तिरोहित हो जाती है। फिर कुछ याद नहीं आता; फिर सब धुंधला है; फिर अंधकार है। कभी कोई फुटकर एकाध दो याददाश्तें मालूम होती हैं, वह चार-पांच साल की उम्र की आखिरी--उसके बाद फिर अंधेरी रात है। और बात तुम करते हो जन्मों-जन्मों की। इस जन्म का भी तुम्हें पूरा पता नहीं है। इस जन्म में भी तुम पैदा हुए
कि नहीं यह भी तुम्हारा अनुभव नहीं है। यह भी लोग कहते हैं। यह भी सुनी- सुनाई बात है। तुम्हारा जन्म भी, तुम्हारे प्रमाण पर नहीं है, वह भी लोग-प्रमाण से है। अब और इससे ज्यादा झूठा जीवन क्या होगा! अपने जन्म का ही पता नहीं। अगर समाज तय कर ले धोखा देने का, तो तुम कभी अपने असली पिता या मां को न खोज पाओगे। और कई बार आदमी, जो पिता नहीं हैं, उसे पिता माने चला जाता है। मैंने सुना है इक्कीसवीं सदी में सौ वर्ष भविष्य में कंप्यूटर बन चुके। उनसे तुम कुछ भी पूछो, वे जवाब दे देते हैं। एक आदमी थोड़ा संदिग्ध है। उसने जाकर कंप्यूटर को पूछा कि मेरे पिता इस समय क्या कर रहे हैं? तो कंप्यूटर ने कहा, वे समुद्र के तट पर मछलियां मार रहे हैं। वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा, सरासर झूठ। मेरे पिता को तो मैं अभी घर बिस्तर पर सोया हुआ छोड़ कर आया हूं। कंप्यूटर ने कहा, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं जिनको तुम घर पर छोड़ आए हो। उसने कहा कि तुम्हारे पिता तो समुद्र के किनारे मछलियां मार रहे हैं।
पिता होने तक का कुछ पक्का भरोसा नहीं है कि जिनको तुम पिता मानते हो
वे तुम्हारे पिता हों; जिनको तुम मां मानते हो वह तुम्हारी मां हो। तुम जन्मों-जन्मों की बात कर रहे हो? तुमने सुन लिया। सुन-सुन कर धीरे-धीरे, तुम इतनी बार सुन चुके हो यह बात कि तुम यह भूल ही गए कि तुम्हारा यह बोध नहीं है। इस देश में तो जन्मों-जन्मों की बात इतने काल से चल रही है, और तुमने इतनी बार सुनी है कि तुम्हारे भीतर लकीर खिंच गई है।
ध्यान रखो, जितना अपना बोध हो, उससे आगे मत जाओ; अन्यथा झूठ शुरू हो जाता है। महावीर, बुद्ध कहते हैं कि और भी जन्म थे क्योंकि उन्हें उन जन्मों की याद आ गई है। तुम मत कहो। तुम अपनी सीमा में रहो, मैं नहीं कहता कि तुम यह कहो कि नहीं होते। क्योंकि यह भी सीमा के बाहर जाना होगा। होते हैं, नहीं होते, तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुम कृपा करके ठहरो उतने ही तक जहां तक तुम्हें याद है। और चेष्टा करो कि किस भांति याद गहरी हो सके। और कैसे तुम्हें स्मृति कीशृंखला का बोध हो सके, कैसे तुम्हारी जीवनधारा प्रकाशित हो सके और तुम पीछे की तरफ जान सको।
सिद्धांतों को चुपचाप स्वीकार कर लेने से कुछ हल नहीं होता, उनसे और उलझनें खड़ी होती हैं। अब तुम पूछते हो, जन्मों-जन्मों से हमने दुख का अनुभव किया है। पहली तो बात जन्मों-जन्मों की झूठ। वह कभी बुद्ध, किसी महावीर को होता है स्मरण। तुम्हें है नहीं स्मरण।

दूसरी बात, तुम कहते होः "हमने दुख को जाना है।"
वह भी गलत। दुख जब चला जाता है, तब तुम जान पाते हो। जब होता है, तब तुम नहीं जान पाते। तुम्हारा सब जानना जब समय जा चुका होता है तब होता है। समझो, क्रोध आया, तब तुम जानते हो, क्रोध आया? नहीं, जब तुमने किसी का सिर तोड़ दिया और किसी ने तुम्हारा सिर तोड़ दिया, तुम बैठे हो अपने कमरे में पट्टियां बांधे; और सोच रहे हो कि क्रोध आया, क्रोध बुरा है, बड़ा दुखदायी है, अब कभी न करूंगा। इसको तुम अनुभव कहते हो। लेकिन जब क्रोध आया था जिस क्षण में, उस समय तुम होश में थे कि क्रोध को तुमने सीधा देख लिया हो आमने सामने? अगर देख ही लेते तो ये सिर पर पट्टियां न बंधती। अगर देख ही लेते तो पश्चात्ताप का समय ही न आता। जो साक्षात्कार कर लेता है क्षण का, वह कभी भी पछताता नहीं। उसके जीवन में प्रायश्चित्त जैसी बात ही नहीं होती।
तुमने क्रोध को देखा है उस क्षण में जब क्रोध सामने खड़ा होता है? नहीं,
तब तो तुम बेहोश होते हो; तब तो तुम क्रोध के नशे में होते हो, तब तक क्रोध के जहर में दबे होते हो; तब तो तुम जो करते हो, वह तुम अपने बस से नहीं करते हो, क्रोध के प्रभाव में कर रहे हो।
हां, जब क्रोध जा चुका, आंधी जा चुकी, झाड़-झंखाड़ उखाड़ गई, मकान का छप्पर, उड़ा गई, दीवालें तोड़ गई, तब तुम बैठे रो रहे हो। तुमने जो भी जाना है, वह क्षण में जाना है, या क्षण के बीत जाने पर जानते हो? इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो।
तुम्हारा सब जानना अतीत का है। वर्तमान से तुम्हारा संबंध ही नहीं जुड़ता। जुड़ जाए तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ। तो कुछ करने को नहीं है, फिर कोई दुख नहीं है। तुम्हें पता ही तब चलता है, जब बात जा चुकी होती है। तुम सदा स्टेशन पर पहुंचते हो, जब ट्रेन छूट गई होती है।
एक मित्र मेरे पास कुछ दिन पहले पूछते थे कि मुझे एक सपना बार-बार आता
है कि मैं ट्रेन पकड़ने जा रहा हूं और ट्रेन छूट जाती है; इसका मतलब क्या है? मतलब साफ है कि ट्रेन रोज-रोज छूट रही है, हर घड़ी छूट रही है, हर क्षण छूट रही है। तुम जब भी पहुंचते हो, पाते हो, स्टेशन खाली है। कुली बताते हैं, जा चुकी।
इस तरह के सपने बहुत लोग देखते हैं। यह सपना कोई एकाध आदमी देखता है, ऐसा नहीं। चूक जाने के सपने बहुत लोग देखते हैं। वे सपने तुम्हारे यथार्थ की छाया हैं। वे प्रतिबिंब हैं, जो तुम्हारे जीवन की कहानी कह रहे हैं कि तुम हमेशा देर से पहुंचते हो। क्षण जा चुका होता है, तब आप मौजूद होते हैं। जब क्षण होता है, तब आप मौजूद नहीं होते।
मौजूद हो जाना क्षण में; तभी तुम जान सकोगे। अन्यथा तुम्हारे जानने
का क्या मूल्य है? तुम्हारा जानना भी झूठा है। क्योंकि जो बीत चुका, उसको तुम कैसे जानोगे? तुम उसे वैसा तो जान ही नहीं सकते, जैसा वह था। वह अब है ही नहीं। उसकी भनक रह गई है।
ऐसा ही समझो कि रात तुम सपना देखते हो, सुबह जाग कर जानते हो कि सपना देखा; लेकिन तब तक सपने के बहुत से खंड तो भूल ही जाते हैं। तब तक सपने की बहुत सी बातें तो बदल ही जाती हैं। रंग और हो जाते हैं। और वह भी तुम जागने के बाद कोई मिनट दो मिनट तक तुम्हें याद रहती हैं, फिर वह भी भूल जाती हैं। लेकिन जब सपना चलता होता है, तब तुमने सपना जाना है? अगर तुम जान लो, तो सपना टूट जाए, जागरण आ जाए। बुद्धत्व कुछ और नहीं है, इस सोएपन से जागने का नाम है। क्षण की नाव को वहीं पकड़ लेना है, जब वह चूकती है।
हमेशा चूकते रहते हो और फिर भी तुम कहते हो कि जाना है दुख का अनुभव।
वह भी जाना नहीं है, वह भी सुना है। बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है, जरा दुख है, जन्म दुख है, मरण दुख है, सब दुख है। और बुद्धपुरुष बड़े प्रभावी हैं। स्वभावतः उनके एक-एक वचन में बड़ी गरिमा है, गौरव है। उनके एक-एक वचन में बड़ा बल है; प्रभाव है। उनके वचन की चोट तुम्हारे भीतर पड़ती है, प्रतिध्वनि होती है--तुम सोचते हो यह तुम्हारी आवाज है। यह ऐसे ही है, जैसे पहाड़ों में तुम जाओ, और जोर से आवाज लगाओ, और घाटियों में आवाज गूंजे, और घाटियां सोचती हों यह उनकी आवाज है।

तुम घाटियों की तरह हो। बुद्धपुरुषों के वचन तुममें गूंजते चले जाते हैं। तुम धीरे-धीरे भूल ही जाते हो कि ये वचन हमारे नहीं; सुने हैं। ध्यान रखो, दुख का अनुभव भी तुमने जाना नहीं है। अगर जान ही लेते तो दुख बंद हो जाता। ज्ञान का दीया जल गया हो और दुख बच रहे, तो ऐसा ही हुआ कि घर में तुमने रोशनी कर ली और अंधेरा जाता ही नहीं।
ऐसा कहीं होता है कि तुमने बिजली जला ली, दीये जला लिए और अंधेरा बना
ही हुआ है, अंधेरा कहता है हम जाएंगे ही नहीं; अंधेरा हठयोग साध कर वहीं बैठा हुआ है? न; तुमने दीया जलाया, अंधेरा गया। वह जलाते ही चला जाता है। अगर तुम जान लो दुख को, तो दुख गया। दुख अंधेरा है, जानना दीया है।
तुम कहते होः "जन्मों-जन्मों से हमने दुख का अनुभव जाना है, लेकिन किस कारण हमें हमारी भूल नहीं दिख पाती?"
अगर जाना होता तो दिख जाती। भूल तुम वहीं कर रहे हो जो तुमने जाना नहीं है उसको जाना हुआ मान रहे हो। अगर जान लो, तो भूल बिल्कुल सीधी है। क्या है भूल? इतनी सीधी-साफ है--
दुख में बार-बार गिरने का अर्थ यही है कि तुम अब तक यह नहीं जान पाए कि दुख पहले सुख का आश्वासन देता है। और आश्वासन में तुम फंस जाते हो। आश्वासन हर बार गलत सिद्ध होता है। हर बार सुख की चाह से जाते हो और दुख पाते हो। मैं निरंतर कहता हूं कि नरक के द्वार पर स्वर्ग की तख्ती लगी है। शैतान में इतनी अक्ल तो है ही कि अगर नरक की तख्ती लगाएगा, तो कौन भीतर प्रवेश करेगा? उसने स्वर्ग की तख्ती लगा रखी है। लोग प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा हुआ कि एक राजनेता मरा। होशियार आदमी था, जिंदगी के दांव-पेंच जानता था। जिंदगी भर दिल्ली में बिताई थी। मरा, तो उसने जाकर कहा कि मैं दोनों देख लेना चाहता हूं; स्वर्ग भी और नरक भी। तभी मैं चुनाव करूंगा कि कहां मुझे रहना है। द्वारपाल ने कहाः आपकी मर्जी। आप स्वर्ग देख लें, नरक देख लें।
स्वर्ग दिखाया; राजनेता को कुछ जंचा नहीं। दिल्ली में जो जीया हो, उसे स्वर्ग बिल्कुल उदास मालूम पड़ेगा। दिल्ली की उत्तेजना, घेराव, आंदोलन, सभाएं, नेताओं की टकराहट, सब तरह का उपद्रव! दिल्ली तो एक पागल बाजार है। सारे मुल्क के पागल वहां इकट्ठे हैं। जो वहां रह लिया एक दफा, पागलखाने में जो रह लिया, उसे मंदिर जंचेगा नहीं। उसे मंदिर में ऐसा सन्नाटा मालूम पड़ेगा कि जी टूटता है, उदासी मालूम होती है। यह भी कोई जगह है! न कोई शोरगुल न कुछ।
सब जगह घूमा, फिर उसने पूछाः अखबार वगैरह निकलते हैं?
यहां कोई घटना ही नहीं घटती। लोग अपनी-अपनी सिद्धशिला पर आंख बंद किए बैठे रहते हैं। न कोई झगड़ा, न झांसा, न कोई किसी का सिर तोड़ता, न कोई हत्या, न कोई किसी की पत्नी को लेकर भाग जाता कुछ यहां होता ही नहीं। अखबार निकालो भी, तो क्या छापो? यहां कोई खबर ही नहीं है। अखबार वगैरह कुछ नहीं निकलता।
उसने कहाः बेकार है। जब अखबार ही नहीं निकलता, जिंदगी क्या? जब सुबह
से अखबार ही न हो पढ़ने को, तो यहां करेंगे क्या? ये लोग ऐसे बैठे रहते हैं झाड़ों के नीचे? ऊब नहीं जाते होंगे? तो मैं तो नरक भी देख लेना चाहता हूं, फिर तय करूंगा।
तो वह नरक देखने गया। बड़ा स्वागत किया गया उसका। बैंड-बाजे बजे, सुंदर स्त्रियां नाचीं, शराब ढाली गई। वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने कहाः दुनिया में बिल्कुल गलत खबरें फैलाई जा रहा हैं कि स्वर्ग में बड़ा आनंद है और नरक में बड़ा दुख है। और सदियों से ये पंडित-पुरोहित और मंदिरों के पुजारी यह धोखा दे रहे हैं लोगों को। स्वर्ग तो बिल्कुल नरक जैसा है और यह नरक तो बिल्कुल स्वर्ग जैसा है। कहीं कोई भूल-चूक हो रही है।
शैतान ने कहा कि मामला ऐसा है कि प्रचार के सब साधन परमात्मा के हाथ में हैं। हमारी कोई सुनता ही नहीं। हम लोगों को समझाते हैं, तो भी वे कहते हैं, शैतान, तू दूर रह! परमात्मा ने सबको भड़काया हुआ है, एकपक्षीय प्रचार चल रहा है। हमारा न कोई मंदिर है, न कोई बाइबिल, न कुरान, न हमारा कोई संत है

जो हमारा प्रचार करे। यह सब विज्ञापन का करिश्मा है। आप तो जानते ही हैं कि विज्ञापन से क्या नहीं हो सकता!
राजनेता ने कहा कि बात ठीक है। तो मैं तो यहीं रहने का चुनाव करता हूं। उसने कह दिया स्वर्ग के द्वारपाल को कि तू वापिस जा। मैंने निर्णय कर लिया कि मैं यहीं रहूंगा।
द्वार बंद हुआ, और जैसे ही वह लौटा, देख कर दंग रह गया। वहां तो दृश्य बदल गया। वे जो बैंड-बाजे और खूबसूरत स्त्रियां वहां थीं, वे वहां नहीं हैं। नर-कंकाल नाच रहे हैं। और बड़ी आग जल रही है और कड़ाहे चढ़ाए जा रहे हैं, और लोग फेंके जा रहे हैं। शैतान की तरफ देखा, तो प्राण छूट गए। शैतान उसकी गर्दन दबा रहा है, छाती पर चढ़ा है। बोला, यह क्या मामला है? अभी तो सब ठीक था। उसने कहाः अगर शुरू में ठीक न हो, तो यहां कोई आएगा ही कैसे? वह जो दृश्य दिखाया, वह तो टूरिस्टों के लिए था। अब यह असली नरक शुरू होता है। इतनी सुविधा हम भी देते हैं चुनाव की।
नरक के द्वार पर स्वर्ग लिखा है। हर दुख के द्वार पर सुख लिखा है। और कितनी बार तुम सुख की आकांक्षा में जाते हो और दुख में उलझ जाते हो। जाते हो आशा में, निराशा हाथ लगती है। जाते हो पाने, सिर्फ खोते हो। सपना बड़ा मालूम पड़ता है शुरुआत में, पीछे दुःस्वप्न हो जाता है। दुख की परिभाषा ज्ञानियों ने यह की है, जो प्रथम सुख जैसा मालूम पड़े और अंत में दुख हो जाए। तुम इसी तरह तो कटे हो। तुम्हारे पंख कट गए हैं, हाथ-पैर कट गए हैं, लूले-लंगड़े हो, अंधे हो बहुत आश्वासनों में। फिर भी तुम कहते हो, हमने दुख जाना है। अगर तुम दुख जान लेते तो तुम यह जान लेते कि जहां-जहां सुख लिखा है, वहां-वहां दुख है। "दुख" जिसे तुम सुख कहते हो उसकी परिणति है। दुख, जिसे तुम सुख मानते हो, उसका अंतिम फल है।
बीज तो तुम सोच सकते हो कि तुमने आम के बोए थे, लेकिन जब फल लगते हैं,
तब कड़वे नीम के लगते हैं। अगर तुम जान लो; तो तुम यह भी जान लो कि बीज जो आम के मालूम पड़ते थे, वे आम के थे नहीं। अन्यथा आम में कैसे नीम लग जाती? वे बीज ही नीम के थे। लेकिन बीज के आस-पास जो प्रचार था, बीज ने खुद तुम्हें जो समझाया था, वह यह था कि मैं आम हूं। जिसने दुख का अनुभव जान लिया, उसने यह जान लिया कि सभी दुख, सुख का आश्वासन देकर जाते हैं। नहीं तो तुम उन्हें भीतर ही कैसे आने दोगे? एक बार आ जाते हैं तो फिर घर में अड्डा जमा कर बैठ जाते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ कि जो दुख को जान लेता है वह सुख से मुक्त होने की कोशिश करता है, दुख से मुक्त होने की नहीं। अगर तुमने दुख से मुक्त होने की कोशिश की, तो तुमने दुख जाना ही नहीं। दुख से तो सभी मुक्त होना चाहते हैं। यह तो सीधी बात है। सभी सुख पाना चाहते हैं सभी दुख छोड़ना चाहते हैं और सभी दुख पाते हैं। सुख किसी को मिलता नहीं।
जब गणित में कहीं कठिनाई है। इसे थोड़ा समझ लेना पड़े। साफ कर लेना पड़े। सुख मत चाहो, दुख न मिलेगा। सुख चाहोगे, दुख मिलेगा। अज्ञानी सुख मांगता है, दुख में फंसता है। ज्ञानी सुख मांगना बंद कर देता है, दुख का द्वार ही बंद हो गया। और जब ज्ञानी सुख मांगना बंद कर देता है, औार दुख का द्वार बंद हो जाता है। तब जो घड़ी आती है जीवन में उसको शांति कहो, आनंद कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, जो कहना हो। लेकिन वह सुख-दुख दोनों के पार है। "जन्मों-जन्मों से हमने दुख का अनुभव जाना, लेकिन किस कारण हमें हमारी भूल नहीं दिख पाती!"
नहीं, न तो जन्मों-जन्मों से कुछ जाना है, न तुमने दुख जाना है, अन्यथा भूल दिख जाती। यही भूल है कि तुम समझ रहे हो कि तुमने जाना है, और जाना नहीं। अब यह भूल छोड़ो। अब फिर से अ ब स से शुरू करो। अभी तक तुम्हारा जाना हुआ किसी काम का नहीं। अब फिर से आंख खोलो और देखो। हर जगह, जहां तुम्हें सुख की पुकार आए, रुक जाना। वह दुख का धोखा है। मत जाना! कहना, सुख हमें चाहिए ही नहीं। शांति को लक्ष्य बनाओ। सुख को लक्ष्य बना कर अब तक रहे हो और दुख पाया है। अब शांति को लक्ष्य बनाओ।

शांति का अर्थ हैः न सुख चाहिए, न दुख चाहिए। क्योंकि सुख-दुख दोनों उत्तेजनाएं हैं। और शांति अनुत्तेजना की अवस्था है। और जो व्यक्ति शांत होने को राजी है, उसके जीवन में आनंद की वर्षा हो जाती है। जैसा मैंने कहा, सुख दुख का द्वार है। ऐसा शांति आनंद का द्वार है।
साधो शांति, आनंद फलित होता है। आनंद को तुम साध नहीं सकते। साधोगे तो शांति को। और शांति का कुल इतना ही अर्थ है कि अब मुझे सुख-दुख में कोई रस नहीं। क्योंकि मैंने जान लिया, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब मैं सुख-दुख दोनों को छोड़ता हूं--यही संन्यास है। यह भाव-दशा संन्यास है कि मैं सुख-दुख दोनों को छोड़ता हूं। जो दुख को छोड़ता है, सुख को चाहता है, वह संसारी है। जो सुख को मांगता है, दुख से बचना चाहता है, वह संसारी है। जो सुख-दुख दोनों को छोड़ने को राजी है, वह संन्यासी है।
संन्यासी पहले शांत हो जाता है। लेकिन संन्यासी की शांति संसारी को बड़ी उदास लगेगी; मंदिर का सन्नाटा मालूम होगा। वह कहेगा, यह तुम क्या कर रहे हो? जी लो, जीवन थोड़े दिन का है। यह राग-रंग सदा न रहेगा, कर लो, भोग लो। उसे पता ही नहीं, शांति का जिसे स्वाद आ गया उसे सुख-दुख दोनों ही तिक्त और कड़वे हो जाते हैं। और शांति में जो थिर होता गया--शांति यानी ध्यान; शांति में जो थिर होता गया, बैठ गई जिसकी ज्योति शांति में, तार जुड़ता गया, एक दिन अचानक पाएगा, आनंद बरस गया।
शांति है साज का बिठाना; और आनंद है जब साज बैठ जाता है, तो परमात्मा
की अंगुलियां तुम्हारे साज पर खेलनी शुरू हो जाती है। शांति है स्वयं को तैयार करना; जिस दिन तुम तैयार हो जाते हो, उस दिन परमात्मा से मिलन हो जाता है। इसलिए हमने परमात्मा को सच्चिदानंद कहा है। वह सत है, वह चित है, वह आनंद है। उसकी गहनतम आंतरिक अवस्था आनंद है।

चौथा प्रश्नः क्या बुद्धपुरुष के होते हुए भी साधक को अपना स्वयं का समाधान खोजना अनिवार्य है?

समाधि उधार नहीं हो सकती। कोई तुम्हें दे नहीं सकता। कोई देता हो तो भूल कर लेना मत। वह झूठी होगी। समाधि तो तुम्हें ही खोजनी पड़ेगी। क्योंकि समाधि कोई बाह्य घटना नहीं, तुम्हारा आंतरिक विकास है।
धन में तुम्हें दे सकता हूं। धन बाहरी घटना है। लेकिन ध्यान रखना जो बाहर से दिया जा सकता है, वह बाहर से छीना भी जा सकता है। कोई चोर उसे चुरा लेगा। अगर दिया जा सकता है, तो लिया जा सकता है।
वह समाधि ही क्या, जो ली जा सके। जो चोर चुरा ले, डाकू लूट ले, इनकम टैक्स का दफ्तर उसमें कटौती कर ले, वह समाधि क्या! समाधि तो वह है, जो तुमसे ली न जा सके। समाधि तो वह है कि तुम्हें मार भी डाला जाए, तो भी समाधि को न मारा जा सके। तुम कट जाओ, समाधि न कटे। तुम जल जाओ, समाधि न जले। तुम्हारी मृत्यु भी समाधि की मृत्यु न बने। तभी समाधि है। नहीं तो क्या खाक समाधान हुआ!
तो फिर ऐसी समाधि तो कोई भी दे नहीं सकता, तुम्हें खोजनी होगी। बुद्धपुरुष भी नहीं दे सकते। अनिवार्य है कि तुम अपना विकास खुद खोजो। हां, बुद्धपुरुष सहारा दे सकते हैं, उनकी मौजूदगी बड़ी कीमत की हो सकती है, उनकी मौजूदगी में तुम्हारा भरोसा बढ़ सकता है।
ऐसे ही जैसे मां मौजूद होती है तो छोटा बच्चा खड़े होने की चेष्टा करता है। उसे पता है, अगर गिरेगा तो मां सम्हालेगी। मां नहीं चल सकती बेटे के लिए; बेटे को ही चलना पड़ेगा। बेटे के पैर ही जब शक्तिवान होंगे तभी चल पाएगा। मां के मजबूत पैरों से कुछ न होगा। लेकिन मां कह सकती है कि हां, बेटा चल। डर मत, मैं मौजूद हूं। गिरेगा नहीं। मां थोड़ा हाथ का सहारा दे सकती है। खड़ा तो बेटा अपने ही भरोसे पर होगा, अपने ही बल पर होगा लेकिन मां की मौजूदगी एक वातावरण, एक परिवेश देती है। उस परिवेश में हिम्मत बढ़ जाती है।
मनोवैज्ञानिकों ने बहुत अध्ययन किए हैं। अगर बच्चों के पास परिवेश न
हो प्रेम का तो वे देर से चलते हैं। अगर प्रेम का परिवेश हो, जल्दी खड़े

होने लगते हैं। अगर प्रेम का परिवेश न हो, तो उन्हें बहुत देर लग जाती है बोलने में। अगर प्रेम का परिवेश हो, तो वे जल्दी बोलने लगते हैं। अगर उन्हें प्रेम बिल्कुल भी न मिले तो वे खाट पर ही पड़े रह जाते हैं। वे पहले से ही रुग्ण हो जाते हैं। फिर उठ नहीं सकते, चल नहीं सकते। किसी ने भरोसा ही न दिया कि तुम चल सकते हो।
बच्चे को पता भी कैसे चले कि मैं चल सकता हूं? उसका कोई अनुभव नहीं, कोई पिछली याद नहीं। बच्चे को पता कैसे चले कि मैं भी बोल सकता हूं? उसने अपने कंठ से कभी कोई शब्द निकलते देखा नहीं। हां, अगर प्रेम का परिवेश हो, कोई उसे उकसाता हो, सहारा देता हो, कोई कहता हो घबड़ाओ मत; आज नहीं होता है, कल हो जाएगा। ऐसे ही हम भी चले थे, ऐसे ही हम भी गिरे थे, ऐसी चोट खानी ही पड़ती है, यह कोई चोट नहीं है, यह तो शिक्षण है। ऐसा कोई सहारा देता हो, प्रेम की हवा बनाता हो, तो चलना आसान हो जाता है, उठना आसान हो जाता है, बोलना आसान हो जाता है।
जो छोटे बच्चे के लिए सही है, वही साधक के लिए भी सही है। साधक छोटा बच्चा है आत्मा के जगत में। बुद्ध तुम्हें देते नहीं, दे नहीं सकते; सिर्फ तुम्हारे चारों तरफ एक प्रेम का परिवार बना सकते हैं। उस हवा में बहुत कुछ घट जाता है। तुमने कभी सोचा, कभी निरीक्षण किया? अगर दस आदमी प्रसन्नचित्त बैठे हों, हंस रहे हों, गपशप कर रहे हों, तो तुम उदास भी हो, तो जल्दी ही उदासी भूल जाते हो। उनकी हंसी संक्रामक हो जाती है। वह तुम्हें छू लेती है। तुम भूल ही जाते हो कि तुम उदास आए थे।
दस आदमी उदास बैठे हों, कोई मर गया हो, रो रहे हों, तुम गीत गुनगुनाते रास्ते से जा रहे थे। अचानक किसी ने कहा कि कोई मर गया परिचित। वहां घर में गए हो, तुम एकदम उदास हो गए। हृदय बैठ गया। जैसे श्वास बंद हो गई। खून बहता नहीं, जम गया। क्या हो गया? एक हवा है वहां उदासी की।
इसलिए परिवार बनाए हैं बुद्धों ने। बुद्ध ने संघ बनाया। बुद्ध ने संघ
के तीन सूत्र बनाए। पहला सूत्र थाः बुद्धं शरणं गच्छामि। कि मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। लेकिन बुद्ध जब तक जीवित हैं, तब तक यह आसान होगा। बुद्ध के जीवित न होने पर साधारण आदमी को मुश्किल हो जाएगा कि जो बुद्ध नहीं हैं उनकी शरण कैसे जाऊं? कहीं दिखाई नहीं पड़ते, अदृश्य हैं, चरण भी दिखाई नहीं पड़ते, शरण कैसे जाऊं?
तो बुद्ध ने दूसरा सूत्र बनायाः धम्मं शरणं गच्छामि। अगर बुद्ध नहीं
हो तो धर्म की शरण जाना। लेकिन धर्म भी बड़ी वायवीय बात है, हवाई बात है। धर्म यानी नियम, जिससे जगत चल रहा है। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता।
तो बुद्ध ने फिर तीसरा सूत्र बनायाः सघं शरणं गच्छामि। संघ का अर्थ हैः भिक्षुओं का संघ; परिवार।
बुद्ध सर्वाधिक सूक्ष्म बात है। बुद्धत्व का अर्थ हैः धर्म को उपलब्ध, जाग कर उपलब्ध हुआ व्यक्ति। फिर बुद्ध से थोड़ा नीचे आएं, तो नियम, गणित विज्ञान की बात है--धर्म। फिर उससे और नीचे आए तो संघ, परिवार।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप हजारों लोगों को संन्यास दे रहे हैं, क्या मतलब? क्या प्रयोजन? क्या आप का कोई इरादा है समाज को, दुनिया को बदलने का? बिल्कुल नहीं है। समाज को बदलने का कोई इरादा नहीं। दुनिया को बदलने
का कोई इरादा नहीं। दुनिया कभी बदलती नहीं; बदलने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि दुनिया भी चाहिए। जिनको उस ढंग से रहना है, उनके लिए वैसी दुनिया चाहिए। उतनी स्वतंत्रता चाहिए। बाजार को मिटा दोगे, अच्छा न होगा। रहने दो; कुछ लोगों को बाजार चाहिए। वे बाजार में ही जी सकते हैं, वे बाजार के कीड़े हैं। उनको कहीं और ले जाओ, वे मर जाएंगे। संसार जिनको चाहिए उनके लिए संसार है।
नहीं, ये जो हजारों लोगों को मैं संन्यास दे रहा हूं, यह एक संघ है, एक परिवार है, एक हवा है। जहां दस संन्यासी बैठेंगे वहां रंग बदल जाएगा। इसलिए तुम्हें लाल रंग दिया है। वह अग्नि का रंग है। वह लपट का रंग है।
जिसको दादू लौ कह रहे हैं, उसका रंग है।
जहां दस संन्यासी बैठेंगे, वहां रस बदल जाएगा, वहां चर्चा बदल जाएगी, वहां हवा और हो जाएगी। तुम बात परमात्मा की करोगे। तुम बीज परमात्मा के

बोओगे। तुम नाचोगे, तुम गाओगे, तुम उत्सव मनाओगे। वह जो उदास भी आया था, थका-मांदा आया था, पुनरुज्जीवित हो उठेगा।
एक परिवेश चाहिए। बुद्ध सिर्फ परिवेश देते हैं, इशारा देते हैं, सहारा देते हैं। चलना तुम्हें है, पाना तुम्हें है, खोजना तुम्हें है।
मोक्ष कोई दूसरा दे भी कैसे सकता है। अन्यथा वह क्या खाक मोक्ष होगा। वह तुम्हारा अंतर-विकास है। वह तुम्हारे अंतर्तम की आत्यंतिक अवस्था है। इससे निराश मत होना। उसे सहारा दिया जा सकता है, उसे बड़ा सहारा दिया
जा सकता है। और अगर तुम अपने गुरु के प्रेम में हो, तो सहारा ही सहारा है।

पांचवां प्रश्नः ध्यान करते समय एक ओर शांति और आनंद का अनुभव होता
है तो दूसरी ओर विचार की एक हलकी धारा भी चलती रहती है। इस हालत में अनुभूत शांति मन का धोखा है क्या?

मन बहुत अदभुत है। वह कभी शक नहीं करता... । अगर दुख हो तो वह कभी नहीं पूछता कि मन का धोखा है? क्रोध हो, कभी नहीं पूछता कि मन का धोखा है? लेकिन अगर थोड़ी शांति मिले तो भरोसा नहीं आता। मन पूछता है, धोखा होगा। तुम्हें और शांति मिल सकती है? असंभव। तुम और आनंद अनुभव कर सकते हो? यह हो ही नहीं सकता। जरूर कहीं कोई भूल हो रही है।
तुमने अपने पर कितनी आस्था खो दी है। तुमने अपने भाग्य को बिल्कुल अंधकार के साथ जोड़ रखा है। तुमने विषाद को नियति बना लिया है। अगर उस विषाद के क्षण में कभी एक सूरज की किरण भी उतरे, तो तुम मानते हो कि सपना होगा। सूरज की किरण और मुझ पर उतर सकती है? हो ही नहीं सकता। अंधेरा ही उतर सकता है तुम पर, ऐसा तुमने भरोसा क्यों कर लिया है?
और अगर यह भरोसा तुम्हारा है, तो ऐसा ही होगा। क्योंकि तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा भाग्य बन जाता है। सूरज की किरण उतरेगी, तो तुम स्वागत न कर पाओगे, तुम संदेह से देखोगे। अंधेरा आएगा, तुम छाती से लगा लोगे। स्वभावतः अंधेरा बढ़ेगा। सूरज की किरण धीरे-धीरे कम आएगी। जहां स्वागत ही न होता हो, वहां आने का भी क्या प्रयोजन? जहां अतिथि की तरह सम्मान न होता हो, वहां परमात्मा भी धीरे-धीरे बचने लगेगा। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे द्वार पर आ जाए तो यह पक्का है, तुम भरोसा न करोगे कि यह परमात्मा हो सकता है। हो सकता है पीछे के दरवाजे से भाग कर तुम पुलिस में रिपोर्ट लिखवा आओ कि पता नहीं कौन खड़ा है। परमात्मा तो हो ही नहीं सकता। कोई न कोई झंझट आ गई। परमात्मा और हमारे द्वार पर!
तुमने क्यों अपने को इतना दीन समझ लिया है? तुमने क्यों अपने को इतना दुर्बल मान लिया है? तुम क्यों इतने अपने शत्रु हो गए हो?
अब दो घटनाएं घट रही हैं। मन में शांति आ रही है ध्यान में। आनंद की थोड़ी सी पुलक आ रही है। पास ही थोड़े से मन की तरंगें चल रही हैं, विचार चल रहे हैं। दो घटनाएं घट रही हैं।
लेकिन पूछने वाला यह नहीं पूछता कि ये जो मन की तरंगें चल रही हैं, यह कहीं धोखा तो नहीं है। नहीं, वह पूछता है कि यह जो शांति मालूम हो रही है, यह कहीं धोखा तो नहीं है। जिसको तुम धोखा समझोगे, वह मिट जाएगा। जिसको तुम सत्य समझोगे, वह हो जाएगा। विचार वस्तुएं बन जाते हैं भाव-दशाएं स्थितियां हो जाती हैं। जिसने जैसा माना, वैसा हो जाता है।
बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है धम्मपद में, कि तुमने जो सोचा, तुम वही
हो जाओगे। तुम आज जो हो, वह तुम्हारे बीते कल के सोचने का परिणाम है। आज तुम जो सोचोगे, वह तुम कल हो जाओगे। सोचना तो बीज बोना है। फिर तुम रोते हो जब फल काटते हो।
चलने दो विचारों की तरंगों को। तुम अपने ध्यान को शांति पर लगाओ और अहोभाव से भरो। और तुम धन्यवाद दो परमात्मा को कि इतनी शांति मिली। परमकृतज्ञ हो जाओ, शांति रोज बढ़ने लगेगी। जितनी शांति बढ़ेगी, उतनी ही मन की जो तरंगें हैं, वे कम होने लगेंगी। क्योंकि, वही तो ऊर्जा है, जो अब शांति बनने लगेगी। मन उसको पा न सकेगा।

एक दिन तुम अचानक पाओगे कि मन की सब तरंगें खो गई। वह कोलाहल अब होता
ही नहीं। वह रास्ता ही चलना बंद हो गया। उस पर कोई यात्री नहीं गुजरते। अब वहां विचारों का कोई आवागमन नहीं है। अब गहन शांति तुममें विराजमान हो गई है।
लेकिन अगर तुमने शांति पर संदेह किया, तो जल्दी ही तुम पाओगे कि जो ऊर्जा शांति की तरफ बहती थी, वह विचारों की तरफ वापस बहने लगी है। यह संदेह उन्हीं विचारों से आ रहा है। वे जो किनारे पर चलती हुई थोड़े से विचार की तरंगें हैं, आखिरी कोशिश कर रही हैं अपने को बचाने की। वे तुम्हारे मन को आच्छादित कर रही है। वे कह रही हैं, क्या शांति! शांति हो ही नहीं सकती। शांति कभी किसी को हुई है?
पश्चिम का एक मनोवैज्ञानिक इधर कुछ महीनों पहले मेरे पास था। बहुत विचारशील व्यक्ति है। उसने मुझे कहा कि मैं मान ही नहीं सकता कि मन कभी शांत हो सकता है। यह अस्वाभाविक है। मन में विचार का चलना तो ऐसे ही है, जैसे शरीर में खून का बहना। और मनोविज्ञान मानता ही नहीं कि कभी ऐसी घड़ी आ सकती है कि मन में विचार न चले। यह तो ऐसी ही होगी, जैसे शरीर में खून न बहे, तो आदमी मर जाए। विचार की गति तो रहेगी ही।
मैंने उन्हें कहा कि थोड़ा प्रयोग करो। अब कोई उपाय नहीं है तुम्हें समझाने का फिलहाल। थोड़े प्रयोग करो, शायद किसी दिन क्षण भर को भी मन में विचार रुक जाए, तो जो क्षण भर को हो सकता है, वह दो क्षण को भी हो सकता है, तीन क्षण को भी हो सकता है। फिर हम आगे बात करेंगे।
संयोग की बात! कोई पंद्रहवें-सोलहवें दिन वह घटना घटी कि कुछ क्षणों
के लिए विचार बंद हो गए होंगे ध्यान में। वह व्यक्ति भागे हुए आए और उन्होंने कहाः मैं यह मान ही नहीं सकता, यह असंभव है। अब यह हो गया है तो भी नहीं मान सकते, यह असंभव है! वे कहने लगे कि जरूर मैंने कल्पना कर ली होगी। पर शांति की तुम कल्पना भी कैसे कर सकते हो, अगर तुम शांति को जानो न? कल्पना भी उसकी हो सकती है, जिसको तुमने जाना हो। तुम ऐसी कोई कल्पना कर सकते हो जो बिल्कुल ही अपरिचित, अनजान, अज्ञात की हो? असंभव। हां, तुम ऐसी कल्पना कर सकते हो, जिसमें ज्ञात के कुछ खंड जोड़ लिए हों। जैसे कि तुम एक ऐसे घोड़े की कल्पना कर सकते हो जो सोने का है और आकाश में उड़ता है। इसमें कोई अड़चन नहीं। क्योंकि उड़ने वाले पक्षी तुमने देखे हैं, सोने का सामान तुमने देखा है, घोड़ों को तुम जानते हो। तीनों को तुमने जोड़ दिया। लेकिन क्या तुम ऐसी कोई कल्पना कर सकते हो, जो तुमने जानी ही नहीं।
मैंने उन मित्र को कहा कि तुमने शांति पहले कभी जानी है? उन्होंने कहा
कि नहीं। पहली दफा जानी है। मगर ऐसे लगता है, मन की कल्पना है।
जिसको तुमने कभी जाना नहीं, तुम उसे कैसे कल्पना करोगे? कल्पना का तो अर्थ ही यह होता है, जाने हुए की पुनरुक्ति। हां, जाने हुए को थोड़ा सुधार सकते, संवार सकते हो, सजा सकते हो। लेकिन अनजाने की कोई कल्पना नहीं हो सकती। हां, परमात्मा की तुम कल्पना कर सकते हो, क्योंकि मंदिरों में तस्वीरें लटकी हैं, मूर्तियां रखी हैं। लेकिन शांति की कहीं तुमने कोई तस्वीर देखी है? शांति की कहीं कोई मूर्ति देखी है? शांति तो भाव है। उसे तो कहीं भी कोई चित्रित करने का कोई उपाय नहीं।
मैंने उनसे कहा कि चलो कल्पना ही सही; बुरी तो नहीं है? उन्होंने कहाः बुरी तो नहीं, आनंद तो बहुत आया। लेकिन शक होता है।
यह हो नहीं सकता। कुछ दिन और चलाओ, थोड़ा और अनुभव करो। तुम्हारा मन जो दुख पर कभी संदेह नहीं करता, अशांति को बिल्कुल स्वीकार करता है, वह शांति पर संदेह करता है। मन तुम्हारा शत्रु है।
ऐसी जब घड़ी आए तो तुम मन की सुनना ही मत। तुम मन से यह कह देना कि कल्पना ही सही। लेकिन तेरे सत्यों से यह कल्पना बेहतर है। तेरा सत्य है-- दुख, चिंता, विषाद। तेरा सत्य है, अशांति, तनाव, संताप। तेरे सत्यों में यह कल्पना बेहतर है शांति की, संतोष की, एक गहन आनंद की। कल्पना में ही रहेंगे। तेरे सत्यों से छुटकारा चाहिए। अगर तुम अपने ध्यान को इस शांति को स्वीकार करने के लिए राजी कर सको, और तुम्हारा सारा ध्यान शांति की तरफ लग जाए और तुम्हारी जीवन-ऊर्जा शांति को पल्लवित करने लगे, पोषित करने

लगे, भोजन देने लगे, तो जल्दी ही तुम पाओगे कि जो तुम्हें आज कल्पना जैसे लगी है, वहीं जीवन का सबसे बड़ा सत्य हो जाती है। और जिस मन को तुमने सत्य समझा था, वह सिर्फ एक अतीत का सपना हो जाता है।
मन सपना है; लेकिन सपना बहुत पुराना है। उसकी बड़ी गहरी जड़ें तुम्हारे भीतर हैं। और शांति सत्य है; लेकिन वह बिल्कुल नया पौधा है। आज ही अवतरित हुआ है। बल दो उसे, भूमि दो उसे, जल दो उसे, पोषण दो, ताकि वह बड़ा हो सके। और अगर आज ही तुमने मन से उसे लड़ाया, तो मन बहुत पुराना है, बहुत मजबूत है। स्वभावतः लड़ने में ज्यादा समर्थ है। उसकी जड़ें बहुत मजबूत हैं। मन को कह दो कि तू अपना सम्हाल, हमें थोड़ी कल्पना का आनंद लेने दे। जल्दी ही तुम पाओगे, वह बड़ा वृक्ष मन का गिरने लगा सूखने। वह तुम्हारे सहारे से जीता है, तुम्हारी ही ऊर्जा के शोषण से जीता है। अगर तुम्हारी ऊर्जा शांति के पौधे पर लगने लगी, उपेक्षित मन का पौधा अपने आप सूख जाएगा। और जिस दिन मन का पौधा सूख कर गिर जाता है, उस दिन तुम अचानक पाते हो, जहां स्वर्ग था, वहां मन के कारण तुमने नरक बना रखा था।

छठवां प्रश्नः कल आपने समझाया कि सुखपूर्वक सुरति से समाधान घटता है, परंतु, मुझे तो बड़े प्रयास, अभ्यास और श्रम से गुजरना पड़ रहा है, क्यों? साधक को बहुत प्रयास, श्रम और तपश्चर्या से कब तक और क्यों गुजरना पड़ता है?

आलस्य हो मन में, तो छोटी-मोटी चीजें बड़ा प्रयास मालूम होती हैं। तुम्हारी व्याख्या की बात है। कुछ भी तुम्हें श्रम नहीं करना पड़ रहा है। मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे निकट जो लोग साधना में लगे हैं, पृथ्वी पर सबसे कम श्रम उन्हें करना पड़ रहा है। तुम्हें श्रम का कुछ पता ही नहीं है।
मगर महाआलसी व्यक्तित्व हो; तो छोटी-छोटी बातें श्रम मालूम पड़ती हैं।
कर क्या रहे हो तुम? किस बात को तुम बार-बार कहते हो कि बड़े प्रयास। कौन सा बड़ा प्रयास कर रहे हो?
थोड़ा नाच लेते हो, इसको बड़ा प्रयास कहते हो? नाचना प्रयास है? नाचना
तो आनंद है। लेकिन तुम्हारी दृष्टि गलत है! आनंद को प्रयास समझोगे, चूक गए। नाचना तो उत्सव है, एक रसपूर्ण घटना है, प्रयास क्या है? अगर नाचना भी प्रयास है, तो फिर अप्रयास क्या होगा?
अगर मैं तुमसे कहूं कि खाली बैठे रहो, तो भी तुम कहते हो कि बड़ा प्रयास करना पड़ता है। खाली बैठे रहो, आंख बंद करके बैठो। बड़ा प्रयास करना पड़ता है। नाचने को कहूं तो बड़ा प्रयास है। तुम्हारे आलस्य का कोई अंत नहीं मालूम पड़ता। और तुम इसे बड़ा गौरवपूर्ण समझ रहे हो कि बड़ा प्रयास कर रहे हो।
मैंने सुना है कि एक गांव में वन-महोत्सव चल रहा था और एक बड़े नेता ने व्याख्यान दिया और लोगों को समझाया कि वृक्षों को बचाना चाहिए, रक्षा करनी चाहिए। वृक्ष जीवन है, उनके बिना पृथ्वी उजाड़ हो जाएगी। और फिर उसने कहा कि जहां तक मैं जानता हूं, यहां जो लोग भी मौजूद हैं, इनमें से किसी ने भी कभी अपने जीवन में किसी वृक्ष की कोई रक्षा नहीं की। कोई नहीं उठा, लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन बड़े गौरव से खड़ा हो गया। उसने कहा, आप गलत कहते हैं। एक बार मैंने पत्थर से एक कठफोड़वा को मारा था--वह जो कठफोड़वा पक्षी होता है--उसको मैंने पत्थर से मारा था। मरा नहीं, मगर चेष्टा मैंने बड़ी की थी।
इसको वे वृक्षों की रक्षा समझ रहे हैं। कठफोड़वा को मारा, क्योंकि कठफोड़वा वृक्षों को खराब करता है। वह भी मरा नहीं। मगर पत्थर चूक जाए तो इसमें मेरा क्या कसूर है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः मैंने कोशिश की थी। बड़ा प्रयास कर रहे हो--कठफोड़वा मार रहे हो! थोड़ी श्वास ले ली जोर से, इसको तुम बड़ा अभ्यास कहते हो? इससे सिर्फ तुम्हारा महातमस और आलस्य पता चलता है और कुछ भी नहीं।
तो तुम्हें साधना का कुछ पता ही नहीं। तुमको तो कोई महावीर मिलता, तब तुम्हें पता चलता कि साधना क्या है! जब वे तुम्हें तीन-तीन चार-चार महीने

भूखा रखवाते, बारह साल तक मौन करवाते तब तुम्हें पता चलता कि साधना क्या है? मैं तो तुमसे नाचने को कह रहा हूं, मैं तुमसे हंसने को कह रहा हूं, मैं तुम्हें जीवन में कुछ भी तोड़ने को नहीं कह रहा हूं, जीवन ने जो कुछ दिया है उसका उपभोग करने को कह रहा हूं। मैं तुम्हें पहाड़ों पर भागने को नहीं कह रहा हूं, पहाड़ को तुम्हारे बाजार में लाने की चेष्टा कर रहा हूं!
वस्तुतः तुमसे कुछ करने को नहीं कह रहा हूं, तुमसे कह रहा हूं, तुम समर्पण कर दो। समर्पण का मतलब है कि कुछ भी तुम अपने ऊपर मत लो। करने की बात ही छोड़ दो। करने दो परमात्मा को। तुम चरणों को पकड़ लो और कह दो, अब तू जो करे, तेरी मर्जी। तुम नाचो कृतज्ञता से। बहुत मिला है।
मैं तुम्हें अहोभाव सिखा रहा हूं, साधना करवा ही नहीं रहा। वही दादू
का अर्थ है, जब वे कहते हैं, सुखपूर्वक सुरति--सुख सुरति।
लेकिन तुम कहते होः "मुझे तो बड़े प्रयास, अभ्यास और श्रम से गुजरना पड़ रहा है।"
मुझे दिखाई नहीं पड़ता कौन सा श्रम तुम कर रहे हो, कौन सा बड़ा अभ्यास कर रहे हो, कौन सी तपश्चर्या तुमसे करवाई जा रही है? लेकिन तुम्हारे आलस्य को मैं समझता हूं। तुम्हारी दृष्टि से हो सकता है नाचना भी बड़ी भारी तपश्चर्या हो। इससे तुम केवल अपनी दृष्टि की खबर देते हो।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र के साथ एक वृक्ष के नीचे लेटा था। आम पक गए थे, एक आम गिरा। मित्र ने नसरुद्दीन से कहा कि देख बिल्कुल तेरे पास पड़ा है, उठा कर मेरे मुंह में लगा दे। नसरुद्दीन ने कहाः तू मित्र नहीं शत्रु है। थोड़ी ही देर पहले एक कुत्ता मेरे कान में मूत रहा था, तूने उसे भगाया तक नहीं, और मैं आम उठा कर तेरे मुंह में लगा दूं।
बस, ऐसा ही तुम्हारा जीवन है। पड़े हो, आम भी कोई उठा कर तुम्हारे मुंह में लगा दे। कुत्ता भी तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार कर रहा हो, तो भगा नहीं सकते। खुद नहीं भगा सकते, उसकी भी अपेक्षा दूसरे से कर रहे हो। और सोचते हो कि महातपश्चर्या में तुम संलग्न हो।
छोड़ो व्यर्थ की बातें। अपने आलस्य को तोड़ो, प्रमाद को हटाओ। जितने कम
पर मैं तुम्हें जीवन-यात्रा को ले जाने के लिए कह रहा हूं उससे कम पर कभी किसी दूसरे ने नहीं कहा है। और अगर तुम मेरे द्वारा चूक जाते हो, तो फिर तुम्हारे लिए कोई उपाय नहीं है।

आखिरी प्रश्नः अत्यल्प ही सही, मन का घोड़ा और चेतना का सवार समझ में आता है; वैसे ही गुरु के शब्द का कोड़ा भी। लेकिन जिस लौ के लगाम की बात संत कहते हैं, दादू कहते हैं, वह कहां उपलब्ध है?

उसे अपने भीतर खोजो।
ये सब बातें समझ में आ जाती हैं। क्योंकि ये सब बातें बुद्धि की हैं। बुद्धि इन्हें समझ लेती हैं। लौ की बात हृदय की है, वह समझ में नहीं आती, क्योंकि बुद्धि से उसका लेना-देना नहीं।
मन का घोड़ा समझ में आता है। चौबीस घंटे भागा है। ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर
ले जाता है, उलटी-सीधी यात्राएं करवाता है, जहां नहीं जाना था, वहां पहुंचा देता है। जहां जाना था, वहां नहीं पहुंच पाते क्योंकि, घोड़ा कहीं और भागा जा रहा है। समझ में आता है। बुद्धि समझ लेती है इस बात को। इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
चेतना का सवार भी समझ में आता है कि अगर होश साधो, कभी घोड़ा भी साधो, तो घोड़े पर सवारी हो जाती है। होश अगर हो, तो फिर घोड़ा तुम्हें हर कहीं नहीं ले जा सकता। तुम जहां जाना चाहते हो, उस तरफ यात्रा शुरू हो जाती है, एक दिशा मिलती है, एक भाव-दशा निर्मित होती है, जिसमें यात्रा हो पाती है। मन तो केवल भटकाता है, चैतन्य पहुंचाता है। वह भी समझ में आ जाता है।
गुरु के शब्द को कोड़ा भी समझ में आ जाता है, क्योंकि गुरु सदा ही कोड़े मारते रहे--यह सब बात समझ में आ जाती है।
समझ में नहीं आती एक बात--लौ की बात। कि वह प्यास कैसे जगे? वह आग कैसे उठे? और अगर वह न उठे, तो सब समझ बेकार है। वह ऐसा ही है कि भूख ही न लगी थी,

भोजन तैयार था। प्यास ही न लगी थी। सरोवर घर के सामने आ गया था। लेकिन प्यास ही न हो, तो क्या करोगे सरोवर को? बाकी सब समझ बेकार है, जब तक लौ न हो।
लेकिन लौ को कहां पाओगे? कहीं और तो पाने का उपाय नहीं। अपने भीतर ही खोजनी पड़ेगी। लौ जल रही है, लेकिन तुम्हारे हृदय में और तुम्हारे सिर में संबंध टूट गया है। लौ तुम्हारे हृदय में जल रही है। हृदय की तुमने सुनना बंद कर दिया है, और बुद्धि सोचे चली जाती है। और उसे लो कहीं मिलती नहीं। क्योंकि लौ सदा हृदय की है। उतना पागलपन सिर्फ हृदय ही कर सकता है--जलने का, विरह का, लौ का, प्यास का।
जब तुम प्रेम करते हो किसी को, तो तुम ऐसा नहीं कहते कि किसी से प्रेम
हो गया है और सिर पर हाथ रख कर बताओ। हृदय पर हाथ रख कर बताते हो। तुमने कभी कोई प्रेमी देखा, जो सिर पर हाथ रख कर बताता हो? वह बात ही न जंचेगी। सारी दुनिया में सभी संस्कृतियों में, सभी सभ्यताओं में जब भी कोई व्यक्ति प्रेम में पड़ता है तो वह हृदय पर हाथ रखता है, कुछ हृदय में होने लगता है। कोई सुगबुगाहट, कोई अंकुर का फूटना, जमीन का टूटना, हृदय के भीतर कोई हलचल-- हृदय पर हाथ रखता है। वहां--जहां से तुम प्रेम करते हो, वहीं से तुम प्रार्थना भी करोगे। वहीं खोजो। उतरो नीचे की तरफ, अपने हृदय में आओ। जब भी सवाल उठे कि कहां खोजें उस लौ को, तो आंख बंद करो और हृदय में तलाशो। हृदय पर हाथ रखो और खोजो।
लेकिन कठिनाई यह हो गई है कि तुमने प्रेम भी बंद कर दिया है, प्रार्थना भी बंद हो गई है, परमात्मा का द्वार भी अवरुद्ध हो गया है। प्रेम करो! अगर तुम प्रेम करने लगो, तो जल्दी ही तुम्हें लौ में गति मालूम होगी। लौ भभकने लगेगी। थोड़ा प्रेम का ईंधन दो।
प्रेम से मेरा मतलब है, अगर वृक्ष को छुओ तो प्रेम से छुओ। कुछ भी तो जाता नहीं, कुछ भी तो खर्च नहीं होता। प्रेम से छुओ। कभी छोटे प्रयोग करके देखो। वृक्ष के पास बैठे हो, हाथ रखो वृक्ष पर और ऐसा भाव करो, जैसे वृक्ष से तुम्हारा बड़ा गहरा प्रेम है। वृक्ष एक मित्र है, तुम बहुत दिन बाद आए हो, वृक्ष से हाथ में हाथ लिए बैठे हो कि वृक्ष को आलिंगन करके छाती से लगा लो। और आंख बंद करके थोड़ी देर वृक्ष के साथ रह जाओ।
और देखो, क्या घटता है! तुम पाओगे, हृदय की धड़कन बदली, हृदय का गुण बदला, तुम मस्तिष्क से नीचे उतरे। क्योंकि वृक्ष के पास तो कोई मस्तिष्क नहीं है। उसके पास तो सिर्फ हृदय है। अगर तुमने उससे थोड़ी हृदय की बात की, थोड़ा हृदय का राग-रंग जोड़ा--वह बड़ा सरल है--वह जल्दी ही तुम्हारी तरफ प्रेम की किरणें फेंकने लगेगा। तुम्हारे हृदय ने अगर उसे पुकारा, तो वह तुम्हारे हृदय को पुकारेगा।
चट्टान को भी छुओ तो प्रेम से छुओ और तुम फर्क पाओगे। चट्टान को अगर तुम प्रेम से छुओगे तो लगेगा, चट्टान में भी एक ऊष्मा है, एक गरमी है। और अगर तुम मनुष्यों के हाथ के भी हाथ में लोगे और बिना प्रेम के लोगे तो पाओगे एक ठंडापन है, एक मुर्दापन है।
थोड़ा अपने प्रेम को फैलाओ। भोजन करो तो प्रेम से करो। क्योंकि भोजन तुम अपने भीतर ले जा रहे हो। ले जाओ अहोभाव से। बड़े प्रेम से निमंत्रण दो। हिंदू बड़े कुशल थे। वे पहले परमात्मा को चढ़ाते फिर अपने को। बड़ा प्रेम का कृत्य था। वे यह कहते थे कि अन्न ब्रह्म है। इसको ऐसे ही नहीं ले जाना है। प्रार्थना करनी है, पूजा करनी है, परमात्मा को प्रसाद लगा देना है। फिर भोग लगाना परमात्मा को, फिर प्रसाद लेना है।
स्नान करो तो जल के साथ प्रेम से भरो। क्योंकि जल है तुम्हारा शरीर। तुम्हारे शरीर में निन्यानबे प्रतिशत तो जल है। तुम सागर से आए हो। सारा जीवन सागर से आया है, सागर के पास बैठो, तो सागर की तरफ बड़े प्रेम से देखो। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को देखता है। तब तुम लहरों में आमंत्रण पाओगे। और जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारा सिर तो अलग हो गया, बीच से हट गया, हृदय का तार जुड़ गया।
पहाड़ पर जाओ। हरियाली को देख कर प्रसन्न होते हो, नाचो। आकाश को देखो, चांद-तारों को! तुम सारे अस्तित्व से जुड़े हो! प्रेम जोड़ेगा, मस्तिष्क ने

तोड़ा है। और जैसे-जैसे यह जोड़ जगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे, दादू की लौ भभकने लगी।
पहले तो तुम प्रेम में पड़ो अस्तित्व के, उसी प्रेम में उतरने से धीरे- धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारा प्रेम इतना बड़ा होता जा रहा है कि अब छोटे- मोटे प्रेम-पात्र काम न देंगे, अब परमात्मा ही चाहिए। समग्र अस्तित्व चाहिए। प्रेम की पात्रता बढ़ाओ, तभी तुम परमात्मा को प्रेम-पात्र बना सकोगे।
तुम्हारी जितनी पात्रता होती है, वैसा ही तुम्हारा प्रेम होता है। कोई आदमी तिजोड़ी को प्रेम करता है, उसके पास लोहे का हृदय है। वह आदमी को प्रेम नहीं कर सकता, रुपये को प्रेम करता है। रुपया यानी धातु; बस उसी तल की उसकी दुनिया है। उसके हृदय में धातु भरी है, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं। कोई आदमी मनुष्यों को प्रेम करता है--ऊपर उठा। कोई आदमी बुद्ध, महावीर, कृष्ण को प्रेम करता है--और ऊपर उठा। अवतारों को प्रेम करता है-- ऊपर आ गया।
फिर एक ऐसी घड़ी आती है, तुम्हारा प्रेम का पात्र इतना बढ़ा हो जाता है, सिवाय परमात्मा के कोई तुम्हारा पात्र नहीं हो सकता प्रेम का। उस दिन लौ भभकती है।
इसे तुम कहीं और न पा सकोगे। तुम्हारे हृदय में मौजूद है चिनगारी। राख जम गई है। उतरो हृदय में। डरो मत।
हृदय में उतरने में डर लगता है। यह ऐसे ही है, जैसे कोई खाई, कुएं में उतरता है, गहरे में। घबड़ाहट होती है, भीतर जाने में घबड़ाहट होती है। खोपड़ी में बने रहने में सब ठीक मालूम पड़ता है। वहां तुम बिल्कुल परिचित हो। वहां सुपरिचित भूमि पर चलते हो। सब नक्शा साफ है।
हृदय में जाओ। बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। क्योंकि हृदय इतना जाम पड़ा है, इतने दिनों से यंत्र काम ही नहीं कर रहा है, तुम भूल ही गए हो, कहां है हृदय। प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। प्रतीक्षा करना भी भूल गए हो। जो प्रेम करना जानता है, वह प्रतीक्षा करना भी जानता है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ एक स्टेशन पर बैठा था, ट्रेन लेट हो गई थी। उसने एक कुली को बुलाया। वह बड़ा नाराज हो रहा था और एक क्षण भी शांति से नहीं बैठ पा रहा था। फिर खड़ा हो जाता, फिर टाइमटेबल देखता। फिर तख्ते पर जाकर पढ़ता, फिर जाकर स्टेशन मास्टर को पूछता कि कितनी देर है? फिर घड़ी मिलाता, यह करता, वह करता। एक कुली को बुलाया। पूछा कुली से कि यहां कोई कब्रिस्तान है पास में? उस कुली ने पूछाः कब्रिस्तान यहां किसलिए, यहां स्टेशन है।
मुल्ला ने कहा कि यहां जो लोग प्रतीक्षा करते-करते मर जाते हैं उनको कहां दफनाते हो?
प्रतीक्षा की तो जरा भी सुविधा नहीं रही। मरते हैं--जैसे प्रतीक्षा यानी मौत आई। एक क्षण रुकना पड़े कहीं, प्रतीक्षा करनी पड़े, मरे! दौड़ने में जिंदगी मालूम पड़ती है, रुकने में मौत मालूम पड़ती है।
और हृदय में वही उतर सकता है जो बहुत प्रतीक्षा करने को राजी हो। हृदय
और मस्तिष्क में इतना फासला है कि प्रतीक्षा... ऐसा मत सोचना कि पास-पास है। शरीर में पास-पास दिखाई पड़ते हैं कि हाथ भर का फासला है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि हृदय और मस्तिष्क में उतना फासला है, जितना फासला और दो चीजों में और कभी भी हो नहीं सकता। ये बिंदु दो अत्यंत विपरीत बिंदु हैं। इनमें जमीन-आसमान का फासला है।
यात्रा लंबी है। और वहां जाए बिना कोई उपाय नहीं। इसलिए करनी ही पड़ेगी। जितना समय यहां-वहां गंवाओगे, व्यर्थ गंवाया हुआ सिद्ध होगा। मत भटको कहीं। खोपड़ी से नीचे उतरो, और हृदय की तरफ जाओ। और जीओ हृदय से। विचार से जीना बंद करो। अगर लुट भी जाओ हृदय के साथ जीने में, तो लुट जाना। उस लुट जाने में बड़ी संपदा पाओगे। और अगर सिर के साथ जीकर जरा भी न लुटे और दुनिया को लूट लिया, तो भी आखिर में पाओगे, खाली हाथ जा रहे हो; कुछ कमा न पाए, जिंदगी गंवा दी है। केवल वे ही जीवन की संपदा को पाते हैं, जो हृदय की लौ को जगा लेते हैं।

वहीं मंदिर है, वहीं जल रही है अहर्निश अग्नि। मत पूछो कि कहां खोजें, कहां पाएं? तुम्हारे भीतर है।

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
नौवां प्रवचन

मन चित चातक ज्यूं रटै

ओशो, सदगुरु दादू के वचन हैं--

मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।।
विरहिन दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस।
पंथ निहारत पीव का, विरहिन पलटे केस।।
ना वहु मिलै न मैं सुखी कहु क्यूं जीवन होइ।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोइ।।
कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खेंचि कसीस।
लागी चोट सरीर में नख सिख सालै सीस।।
विरह जगावै दरद को दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को पंच पुकारै पीव।

ओशो, कृपापूर्वक हमें इसका अभिप्राय समझाएं।

अंधेरा है घना, चारों दिशाओं में--बाहर भीतर; पर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आंख चाहिए ही, अंधेरे को भी देखने के लिए आंख चाहिए।
अंधा अंधेरे को नहीं देखता। ऐसा मत सोचना कि अंधा अंधेरे में ही रहता होगा। अंधे को अंधेरे का भी पता नहीं है। आंख चाहिए। आंख हो, तो अंधेरा दिखाई पड़ता है। और आंख हो, तो रोशनी की खोज शुरू हो जाती है। जिसे अंधेरा दिखा वह बिना प्रकाश को खोजे कैसे रहेगा? अगर तुम बिना खोजे बैठे हो, तो एक ही अर्थ हो सकता है कि तुम्हें अंधेरा दिखाई नहीं पड़ता है।
सत्य की खोज अंधकार की प्रतीति से शुरू होती है। प्रभु की खोज अंधकार
के अहसास से शुरू होती है। प्रकाश की यात्रा अंधकार की गहन पीड़ा से शुरू होती है। तुमने अंधकार को ही जीवन मान रखा है। अंधकार के साथ तुमने तादात्म्य जोड़ लिया है। तुम शायद सोचते हो बस, यही जीवन है। यह तो जीवन की शुरुआत भी नहीं है।
जन्म के साथ जीवन की संभावना भर शुरू होती है। लेकिन लोग मान लेते हैं
कि जैसे वे पूरे के पूरे पैदा हुए हैं। सिर्फ संभावना थी; खो भी सकते हो संभावना को, वास्तविक भी बना सकते हो। एक-एक पल जाता है, उतनी ही संभावना क्षीण होती चली जाती है।
जिसे जीवन का यह बोध होगा वह बैठा न रह सकेगा। रोएगा, चीखेगा, चिल्लाएगा। एक अज्ञात की आकांक्षा उसके भीतर जन्म लेगी। उसकी जीवन-धारा एक यात्रा बन जाएगी। वह डबरे की तरह पड़ा न रहेगा, सड़ेगा नहीं। वह सरिता की तरह बहेगा, वह खोजेगा सागर को।
और अगर बिना प्यास के तुम खोजने निकल गए और बिना अंधकार को अनुभव किए तुमने प्रकाश की चर्चा शुरू कर दी, जिज्ञासा शुरू कर दी, तो कुछ हाथ न आएगा। क्योंकि जिसे अंधेरा साल नहीं रहा है, कांटे की तरह चुभ नहीं रहा है, उसकी प्रकाश की बातचीत सिर्फ बातचीत होगी, मन बहलाव होगा, मनोरंजन होगा। एक बहाना होगा समय को काटने का; लेकिन यात्रा नहीं हो सकती। उसके पैर उठेंगे न।
जिसने अनुभव नहीं किया प्यास को, सरोवर उसके सामने भी आ जाएगा तो वह पहचानेगा कैसे! प्यास ही पहचानती है। अंधेरे के प्रति जाग गई आंख ही प्रकाश को पहचानती हैं। जीवन की पीड़ा को जब तुम अनुभव करोगे तभी तुम परमात्मा के उस महासुख की आशा से, आकांक्षा से, अभीप्सा से भरोगे।
और हमने उलटा ही किया है। हमने ऐसी व्यवस्था की है कि हमें जीवन की पीड़ा कम से कम अनुभव हो। सारी संस्कृति, सभ्यता, समाज इसी प्रकार का आयोजन है कि जिससे तुम्हें चोट न लगे ज्यादा चोट न लगे। इतनी चोट लगे जितनी तुम

सह सको, असह्य न हो जाए। इतनी बेचैनी न हो जाए कि तुम अनंत की खोज पर निकलने लगो। तुम बंधे रहो खूंटे से यहीं।
थोड़ी स्वतंत्रता भी तुम्हें चाहिए, तो खूंटे की रस्सी तुम्हें थोड़ी स्वतंत्रता देती है। रस्सी से बंधे हो, थोड़ा घूम-फिर लेते हो आसपास। घूमने-फिरने से तुम्हें लगता है, स्वतंत्रता है। लेकिन तुम्हें ख्याल नहीं है, वह स्वतंत्रता केवल रस्सी की लंबाई है। ऐसे तुम खूंटे से ही बंधे हो।
संस्कृति की पूरी चेष्टा यही है, सारे संस्कारों का आयोजन यही है, जिसको जार्ज गुरजिएफ ने बफर पैदा करना कहा है। जैसे रेलगाड़ी के दो डब्बों के बीच में बफर लगे होते हैं; अगर धक्का लगे, एक्सीडेंट हो जाए, अचानक इंजन रुक जाए और बीच में बफर न हों, तो सारे डब्बे एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाएंगे। सारे डब्बे एक-दूसरे को इतनी भयंकर चोट देंगे कि कई यात्री मर जाएंगे। सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। तो दो डब्बों के बीच में बफर लगे हैं। बफर चोट को पी जाते हैं। चोट तो लगती है, थोड़ा सा धक्का आता है, लेकिन सहने योग्य होता है।
कार में स्प्रिंग लगे होते हैं वे रास्ते के गड्ढों का पता नहीं चलने देते। गड्ढे तो आते हैं, पता भी चलता है, लेकिन इतना चलता है, भीतर का यात्री यात्रा ही बंद नहीं कर देता; जारी रखता हैं, आदी हो जाता है।
जीवन के रास्ते पर भी गड्ढे बड़े हैं, अंधकार भयंकर है, पीड़ा बड़ी है, नारकीय है, लेकिन बफर समाज पैदा कर देता है। वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। बफर झेल लेता है सारी तकलीफ को। तुम्हारे तक तकलीफ ही नहीं आ पाती पूरी तरह से, तो तुम पीड़ा से ही न भरोगे, तो आनंद की खोज कैसे शुरू होगी?
जिस व्यक्ति को भी उस यात्रा पर जाना हो, उसे बफर तोड़ देने पड़ेंगे। उसे रास्ते के गड्ढों का सीधा-सीधा साक्षात्कार करना पड़ेगा। उसे जीवन की पीड़ा जैसी वह है, उसकी सचाई में ही एहसास करनी पड़ेगी।
अहसास करते ही तुम पाओगे कि एक क्रांति शुरू हो गई। अब तुम इस जीवन से राजी नहीं हो सकते, महा-जीवन चाहिए। क्योंकि यह भी कोई जीवन है! धोखा है जीवन का। सुबह उठ आते हो, सांझ सो जाते हो, फिर रोज सुबह वही दोहराते हो, फिर रोज सांझ वही दोहराते हो--कोल्हू के बैल हो। घूमते रहते हो एक परिधि में। लगता है, कहीं पहुंच रहे हो। ऐसा ख्याल बना रहता है, भीतर भनक होती रहती है कि अब--अब आई मंजिल; पर कोल्हू के बैल की कोई मंजिल होती है! वह गोल घेरे में घूमता रहता है। वह वहीं के वहीं सदा है।
तुमने कभी इस पर ख्याल किया कि तुम सदा वहीं के वहीं हो, रत्ती भर भी आगे नहीं गए, ऊंचे नहीं उठे? जहां बचपन में थे, तुम मरते वक्त अपने को वहीं पाओगे। शायद कुछ खो भला दो, उपलब्धि कुछ भी न होगी। बचपन का भोलापन खो जाएगा, निर्दोषता खो जाएगी, कुंआरापन खो जाएगा, ताजगी खो जाएगी, लेकिन पाओगे क्या खोकर? सौदा बड़ा महंगा है। खो तो सब जाता है, मिलता कुछ भी नहीं। बफर निश्चित ही बड़े होंगे जो पता नहीं चलने देते।
कोई मर जाता है--मेरे पड़ोस में, एक गांव में मैं रहता था। कोई मर गया,
तो मैं गया। वहां देखा मैंने कि लोग आत्म-ज्ञान की बातें कर रहे हैं। समझा रहे हैं कि आत्मा तो अमर है, क्यों रोते हो? जो समझा रहे थे मैंने समझा कि बड़े ज्ञानी होंगे। क्योंकि इनको आत्मा की अमर होने का पता है। और दूसरों में दुख में सहारा देने आए हैं।
फिर संयोग की बात! जो समझा रहे थे--वे बड़े प्रखर थे समझाने में--कोई चार-छह महीने बाद उनकी पत्नी चल बसी। तो मैं वहां भी गया। मैंने सोचा कि ये तो रोते न होंगे, परेशान न होते होंगे। ये तो जानते ही हैं। देखा, तो बड़ा हैरान हुआ। जिनके घर वे समझा रहे थे, वे अब उनको समझा रहे हैं कि आत्मा तो अमर है, क्यों रोते हो? शरीर तो वस्त्रों की भांति है, छूट गया। आत्मा दूसरी जगह चली गई, दूसरे घर में प्रवेश कर लिया। कोई मरता थोड़े ही है।
यह बफर है। जब तुम्हारी जरूरत थी, पड़ोसी ने आकर बफर सम्हाल लिए। अब पड़ोसी की जरूरत है, तुम गए; तुमने उसके बफर संभाल लिए। अन्यथा मौत तुम्हारी सारी व्यवस्थाओं को तोड़ देगी।

मौत भी नहीं तोड़ पाती है। मौत से भी बचाने के लिए तुमने स्प्रिंग लगा रखे हैं चारों तरफ--आत्मा अमर है। पर इस बात का तुम स्मरण तभी करते हो, जब कोई मर जाता है। मरघट पर जाओ, जहां लोग मुर्दों को भेजने आते हैं, वहां बड़ी ब्रह्म चर्चा होती है, वहां बड़ी ज्ञान की बातें होती हैं। और तुम सोच भी नहीं सकते कि ये लोग गांव में कभी ज्ञानी न मालूम पड़े, ये उपनिषद और वेदों का उल्लेख कर रहे हैं। वे बफर सम्हाल रहे हैं। किसी का टूट गया है मौत से, उखड़ गए हैं स्क्रू, यहां-यहां, वे कस रहे वापस; ताकि वह फिर जीने के योग्य हो जाए। यह कोल्हू का बैल घबड़ा कर मौत को देख कर बैठ गया, उठता नहीं। वे उसे उठाने की कोशिश कर रहे हैं, वेद-उपनिषद का सहारा ले रहे हैं। जूते रहो कोल्हू में।
यदि मौत तुम्हें ठीक से दिखाई पड़े, अगर तुम मौत का साक्षात्कार करो,
तो क्या तुम्हें यह स्मरण न आएगा कि तुम भी मर रहे हो? दूसरे की मौत क्या दूसरे की ही मौत रहेगी, तुम्हारी अपनी मौत न बन जाएगी?
जब भी कोई मरता है, तुम भी मरते हो। जब भी कोई मरता है, तुम्हारा एक हिस्सा मरता है। जब भी कोई मरता है, तुम्हारी मौत का संदेश घर आता है। हर मौत तुम्हारी मौत की खबर है। लेकिन तब तुम आत्म-ज्ञान की बातें करते हो, ताकि खबर तुम तक न पहुंच जाए। तुम्हारी छाती में छिद न जाए तीर मौत का, नहीं तो फिर तुम जीओगे कैसे! फिर कल सुबह तुम कैसे गुनगुनाते उठोगे? फिर कैसे तुम दफ्तर जाओगे, बाजार जाओगे, फिर तुम कैसे अपने कोल्हू में जुतोगे? अगर मौत दिख गई, तो तुम बैठ ही जाओगे। तुम कहोगे, जब मौत होनी ही है, तो
यह जीवन जीवन नहीं है। जिस जीवन का अंतिम परिणाम मौत हो, जिस जीवन का आखिरी हिसाब-हिसाब बस, सिर्फ नष्ट हो जाना हो, उसको कौन जीवन कहेगा?
कोई महा जीवन चाहिए। कोई ऐसा जीवन चाहिए, जिसका आधार अमृत हो; जहां मिटना न होता हो, जहां खोना न होता हो। जब तक मिटना है, खोना है, तब तक होना ही नहीं है। जब मिटना-खोना सब समाप्त हो जाता है, तभी तो शुद्ध होने का पहली दफा आविर्भाव होता है।
लेकिन बफर जागने नहीं देते। हजार बार मौके आते हैं तुम्हारे जीवन में, जब तुम जाग सकते थे। वे मौके तुम्हें दादू बना देते, कबीर बना देते, लेकिन तुम नहीं जागते। तुम जल्दी से इंतजाम जुटाने लगते हो कि कैसे फिर से सो जाओ। यह सो जाने की प्रक्रिया कैसे तुम्हें समझने देगी कि कबीर क्या कह रहे हैं, दादू क्या कह रहे हैं, नानक क्या कह रहे हैं। वे कुछ ऐसी भाषा बोल रहे हैं, वह उसी आदमी को समझ में आ सकती है जिसने थोड़ा सा अपनी व्यवस्थाओं को तोड़ना शुरू किया। जिसने थोड़ा वातायन बनाया, अपने चारों तरफ जुड़े हुए जाल को जिसने थोड़ा काटा, संध बनाई, ताकि जीवन को देख सके।
यहां तो जीवन मृत्यु पर खड़ा है। यहां तो हर चीज मिटने को है। यहां तो
सब कंपता हुआ है। यहां तो प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु की तरफ जा रहा है। पूरब से जाओ, पश्चिम से जाओ, दक्षिण से जाओ, कही से जाओ, आखिर में मौत मिल जाती है। और जब मौत होनी ही है दस साल बाद, बीस साल बाद, पचास साल बाद, सत्तर साल बद, तो जिसको थोड़ा होश है वह समझेगा, मौत हो ही गई।
बुद्ध को ऐसे ही होश के क्षण में सारी संस्कृति की मूढ़ता स्मरण आ गई। देखा एक मुर्दे को, पूछा अपने सारथि से, क्या हुआ इसे? उस क्षण में बुद्ध की आंखों पर कोई भी संस्कार न होगा। असल में बुद्ध को बचाया गया था, संस्कार आंख पर पड़ने न दिए गए थे। बुद्ध जब पैदा हुए, ज्योतिषियों से पिता ने पूछा था कि इस लड़के का भविष्य क्या है? ज्योतिषियों ने कहाः या तो यह होगा चक्रवर्ती सम्राट, और या हो जाएगा संन्यासी। दुनिया में दो ही तरह के सम्राट हैं; एक तो चक्रवर्ती सम्राट है और एक संन्यासी सम्राट है। बाप न समझ पाए। बाप को बड़ी चोट लगी कि संन्यासी हो जाएगा बेटा।
अब यह बड़े मजे की बात है, दूसरे का बेटा संन्यासी हो जाए, तो लोग उसके पैर छूने जाते हैं और कहते हैं, धन्यभाग तुम्हारे! खुद का बेटा संन्यासी होने लगे, तो प्राण पर आ बनती है। क्या मामला होगा? तुम दूसरे का बेटा संन्यासी होता है तो कहते हो, धन्यभाग! कैसी धार्मिक भावना पैदा हुई, कैसी उदभावना, कैसे सच्चे संस्कार! धन्य वह कुल जिसमें तुम पैदा हुए! और जब

तुम्हारे कुल में पैदा हुआ कोई संन्यासी होने लगे तो प्राण कंपते हैं; क्यों?
क्योंकि हर संन्यासी संस्कार को तोड़ता है। हर संन्यासी संस्कृति के पार जाता है। समाज के पार जाता है। हर संन्यासी यह कहता है कि तुम्हारे जीवन का ढंग गलत है। और जब बेटा संन्यासी होता है तो वह यह कह रहा है कि बाप तुम्हारे जीवन का ढंग गलत है और यह बाप को बरदाश्त नहीं होता। अपने ही बेटे से यह सुनना! कोई कहता नहीं है बेटा, लेकिन उसके संन्यासी होने से यह घटना फलित होती है कि तुम्हारे होने का ढंग गलत है। यह बाप के अहंकार को बड़ी चोट हो जाती है। और फिर भय लगता है कि मेरा सारा जीवन अस्तव्यस्त हुआ जा रहा है। खुद भी दिखाई पड़ने लगती है संध, खुद भी भूल अहसास होने लगती है, लेकिन अपने ही बेटे से हारने को कहीं कोई तैयार होता है!
बाप थोड़े दुखी हुए और उन्होंने कहा कि कुछ करना होगा। इसके पहले कि यह संन्यासी हो जाए, रोकना होगा। ज्योतिषियों ने कहाः फिर ऐसा करें कि इस व्यक्ति को समाज से बिल्कुल दूर ही रखें। इसको समाज में जाने ही मत दें। न जाएगा समाज में, न कभी संन्यासियों को देखेगा, न कभी बात सुनेगा संन्यासियों की, हवा ही न लगेगी तो रंग ही न चढ़ेगा। इसको जाने ही मत दें उस तरफ।
और दूसरा यह ख्याल रखें कि इस मौत के निकट मत आने दें। अगर पत्ता भी सूख जाए इसके बगीचे का, तो इसके जाने बिना अलग कर दिया जाए। अगर यह पत्ते को सूखता देखेगा तो शायद मन में प्रश्न उठे कि अगर पत्ता सूख जाता है, तो कहीं ऐसा तो न होगा कि मैं भी सूख जाऊंगा? कुम्हलाए हुए फूल को मत देखने देना इसे। बूढ़े आदमियों को पास मत आने देना इसके, अन्यथा यह पूछेगा कि यह आदमी बूढ़ा हो गया, कहीं मैं तो बूढ़ा न हो जाऊंगा?
इसे एक सपने में रहने दो। इसे घेर दो सुंदर युवतियों से, शराब से, नाच-गान से, संगीत से। इसे याद ही मत आने दो कि मौत भी है; क्योंकि जिसमें मौत की याद आ गई वह संन्यस्त हो ही जाएगा। जिसे मौत की याद आ गई उसे जीवन व्यर्थ हो गया। उसे नये जीवन की खोज शुरू हो गई। इसे मौत के करीब मत आने देना। इसे एक झूठे सपने में लुभाए रखना।
ऐसा ही बुद्ध को बड़ा किया गया--एक झूठे सपने में। मगर वहीं भूल हो गई। कभी तो आदमी सपने के बाहर आएगा!
बुद्ध जवान हो गए। वे एक युवकों के महोत्सव का उदघाटन करने जाते थे।
अब राज्य का भार उनके ऊपर आने को है, तो जीवन में आना पड़ेगा। जाना पड़ेगा दरबार में, समाज से जुड़ना पड़ेगा। और अब तक संस्कार से बिल्कुल दूर रखा, जैसे यह आदमी सोया ही रहा, एक मीठे सपने में खोया रहा। चारों तरफ काव्य था। कहीं कांटे न थे, बस फूल ही फूल थे। कहीं कोई पीड़ा न थी, जाना ही नहीं बुढ़ापे को, देखा ही नहीं बूढ़े आदमी को, जीवन में दुर्दिन पहचाना ही नहीं; बस, सौभाग्य ही सौभाग्य की वर्षा थी।
यह आदमी बड़ा कमजोर था; इसके पास बफर न थे। बफर पैदा करने हों, तो जीवन
के संघर्ष में पैदा होते हैं, टकराहट में पैदा होते हैं, रोज मौत को देख-देख कर आदमी अपना बफर तैयार करता है, ताकि मौत से बच सके। रोज बूढ़े आदमी को देख-देख कर बफर तैयार करता है। ताकि यह याद न आए कि मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा। रोज आदमी मरता है, धीरे-धीरे तुम्हें पता ही नहीं चलता कि कोई मर गया। तुम देख लेते हो ऐसे, जैसे कुछ भी नहीं हुआ; जैसे साधारण सी घटना है तुम मान लेते हो। तुम अंधे हो गए।
बुद्ध के पास संस्कार न थे, संस्कृति न थी, समाज न था। वे अकेले बड़े हुए और सोए-सोए बड़े हुए। सपने में खोए-खोए बड़े हुए। बड़ी मुश्किल पड़ गई।
पहले ही आघात में नींद टूट गई। बचाने वाली सुविधा संरक्षण की दीवाल न थी।
राह पर देखा उन्होंने एक आदमी को मरा हुआ।
कहानी बड़ी मधुर है। मैंने बहुत बार कही। हर बार कहता हूं, तब मुझे लगता है उसमें कुछ नये आयाम हैं।
पहले तो उन्होंने देखा एक बूढ़े आदमी को; तो पूछा सारथी से यह आदमी को क्या हो गया? यह ऐसा लंगड़ा कर लूला सा झुका-झुका क्यों चलता है? इसके चेहरे पर झुर्रियां क्यों पड़ी हैं? इसकी आंखें धुंधली क्यों मालूम पड़ती हैं? यह

किसी का सहारा क्यों लिए हैं? पहली दफा बूढ़ा देखा हो--स्वभावतः तुम्हें यह प्रश्न नहीं उठता। तुमने इतनी बार देखा है और तुमने सुरक्षा कर ली है। तुमने इतने बचपन से देखा है; जब प्रश्न उठ ही नहीं सकता था, तबसे तुम बूढ़े को देखते रहे हो। अब क्या प्रश्न उठेगा!
बुद्ध को उठा, नई घटना थी। सारथी ने कहा कि यह आदमी बूढ़ा हो गया है। बुद्ध ने कहाः यह बूढ़ा होना क्या है? सारथि ने कहाः मैं आपको कैसे समझाऊं? आज्ञा भी नहीं है। लेकिन आपने पूछा है तो झूठ भी नहीं बोल सकता।
कहानी यह है कि सारथि तो झूठ बोलना चाहता था लेकिन देवताओं ने उसको झूठ न बोलने दिया। देवता उसमें प्रविष्ट हो गया। कहानी तो यह है कि सारथि को रोका देवताओं ने कि झूठ मत बोल क्योंकि यह घड़ी मुश्किल से कभी आती है कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। इस घड़ी के लिए हम सदियों से प्रतीक्षा कर रहे हैं; इस आदमी को भटका मत।
मतलब इतना है कहानी में कि अशुभ तो चाहेगा कि संसार बचा रहे; शुभ चाहेगा कि संन्यास फलित हो। शैतान तो चाहेगा तुम संसार में आंख बंद करके कोल्हू के बैल बने रहो, लेकिन शुभ वृत्तियां चाहेंगी कि तुम जागो, प्रकाश का आरोहण करो। अभियान बड़ा है सामने, सूरज तक पहुंचना है तुम उसी की किरण हो।
देवताओं ने सारथि की जबान पर सवारी कर ली। उन्होंने उसके प्राणों को पकड़ लिया। उसने बोलना भी चाहा लेकिन वह बोल न सका झूठ। उसने कहाः यह आदमी बूढ़ा हो गया है, और हर आदमी बूढ़ा हो जाता है और इससे बचने का कोई उपाय नहीं। आप एक सपने में जीए हैं।
बुद्ध ने पूछाः क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा?
बस, इसी प्रश्न पर सारा बुद्ध का जीवन-रूपांतरण टिका। जब कोई मरता है, क्या तुम पूछते हो मैं भी मर जाऊंगा? अगर तुमने पूछ लिया तो तुम कोल्हू के बैल न रह जाओगे। लेकिन तुम पूछते ही नहीं। तुम सदा सोचते हो कोई और मरता है, तुम तो कभी मरते ही नहीं। कभी "अ" मरता, कभी "ब" मरता, कभी "स" मरता। तुम तो हमेशा मौजूद रहते हो पूछने को कि कौन मर गया भाई! तुम तो सदा सांत्वना देने को रहते हो कि बहुत बुरा हुआ, अभी उम्र ही क्या थी! तुम तो सदा जिंदा रहते हो। हमेशा कोई और मरता है।
लेकिन बुद्ध ने जो प्रश्न पूछा वह कोई भी व्यक्ति जिसके बफर न हों, पूछेगा ही स्वभावतः। असली सवाल यह नहीं है कि कौन मर गया। असली सवाल यह है कि क्या मैं भी मरूंगा! क्योंकि उस पर ही तो सारे जीवन की व्यवस्था निर्भर होगी। अगर मुझे भी मरना है तो कैसे जीऊं, यह सवाल उठेगा। कैसे जीऊं कि मरने के पार जा सकूं? और अगर मरने के पार जाने का कोई उपाय ही नहीं है, तो जीने में कोई सार नहीं है। तो फिर जीऊं ही क्यों? फिर कल तक भी प्रतीक्षा किस बात की? फल तो लगने ही नहीं हैं, जीवन ऐसे ही जाना है।
कोल्हू का बैल भी बैठ जाएगा अगर उसको भी पता चल जाए कि जिंदगीभर ऐसे
ही कोल्हू चलाना है। और कोई परिणति नहीं है, कोई परिणाम नहीं है, कोई फल नहीं है, कहीं पहुंचूंगा नहीं। ऐसे जुता-जुता ही कोल्हू में मर जाऊंगा। बुद्ध ने पूछाः क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? सारथि कहना चाहता था, आप कैसे बूढ़े हो सकते हैं, लेकिन देवताओं ने जबान पकड़ ली और उससे कहलवाया कि नहीं; कहना तो मैं नहीं चाहता हूं, लेकिन मजबूरी है, सत्य को झुठला भी नहीं सकता। आप भी बूढ़े हो जाएंगे, कोई भी अपवाद नहीं है।
बुद्ध उदास हो गए। जो भी जीवन को देखेगा वह तत्क्षण उदास हो जाएगा। यह सारा जीवन एकदम झूठा है। यह जीवन सपने से भी पतला है। इसे जरा कुरेदो और मौत मिल जाती है। यह बड़ी पतली धार है। इसके भीतर मौत ही मौत छिपी है। बुद्ध का मन लौटने का होने लगा लेकिन तभी उन्होंने देखा कि एक अरथी गुजर रही है, तो पूछा यह कौन है इसको क्या हुआ? इस आदमी को क्यों बांधा हुआ है बांसों के ऊपर? इसने क्या भूल-चूक की है? सारथि ने कहाः भूल-चूक कुछ भी नहीं की, यह मर ही गया। यह अब जिंदा ही नहीं है। बुद्ध ने कहाः क्या मैं भी मर जाऊंगा? सारथि ने कहाः बुढ़ापे के बाद वही कदम है, अनिवार्य कदम है, सभी को मरना होता है।

बुद्ध ने कहाः फिर लौटा लो रथ को वापस; फिर युवक-महोत्सव में जाने का क्या अर्थ! बूढ़ा तो मैं हो ही गया। और मौत तो आ ही गई। कल आएगी कि परसों, इससे क्या फर्क पड़ता है। आ ही गई।
लेकिन हटने को ही थे, रथ लौटने को ही था कि एक संन्यासी को देखा। यह ठीक क्रम है। बुढ़ापे की स्मृति, मृत्यु का बोध, संन्यास का भाव। एक गैरिक वस्त्र संन्यासी को देखा। ऐसा आदमी बुद्ध ने कभी न देखा था। उन्होंने पूछाः इस आदमी को क्या हुआ है? इसने गैरिक वस्त्र क्यों पहन रखे हैं? और यह कुछ अलग ही मालूम पड़ता है। इसकी चाल में ढंग और! इसकी आंख में रंग ओर! इसकी जीवन-शैली ही अलग मालूम पड़ती है, ऐसा आदमी मैंने कभी नहीं देखा। इसके चलने में एक गरिमा है, एक प्रखर प्रकाश है। इसके चेहरे पर दीप्ति कहां से आई? इसे क्या हो गया है?
उस सारथि ने कहा कि जैसे आपने बूढ़े को देखा और मुर्दे को देखा, इसने भी देखा और पहचान लिया। इसने संसार छोड़ दिया है। इसने एक नये जीवन को बनाने की कसम ले ली है, प्रतिज्ञा ले ली है।
संन्यास का अर्थ हैः यह जीवन जैसा हम उसे जीते हैं मूढ़तापूर्ण है। यह रेत से तेल निचोड़ने जैसा है। इसकी परिणति कुछ भी नहीं है। यह पानी पर उठे बबूलों जैसा है। आज है, कल फूट जाएगा। फूट जाएगा तो पीछे कोई रूप-रेखा भी न बचेगी। इसमें जो गया वह व्यर्थ ही गया है। जितना समय बीता, वह यूं ही बीत गया है।
संन्यास का अर्थ हैः एक नये जीवन की उदभावना, एक नये जीवन का सूत्रपात, जीने का एक नया ही ढंग, जागे हुए जीने की तरकीब, बिना बफर के, बिना किसी सुरक्षा के--असुरक्षित, बिना किसी व्यवस्था के, बिना किसी धारणा के, बिना समाज, बिना संस्कृति-संस्कार के, एक निर्दोष जीवन की प्रक्रिया। सारथि ने कहाः यह व्यक्ति संन्यस्त हो गया। बुद्ध को उसी दिन संन्यस्त होने का भाव पैदा हो गया। उसी रात उन्होंने महल छोड़ दिया।
जिस दिन तुम्हें भी दिखाई पड़ जाएगा कि जीवन एक अंधकार है, उसी दिन तुम प्रकाश की खोज पर निकल जाओगे। अभी तुमने अंधकार को ही प्रकाश समझ रखा है। तुम बड़े मजे से जी रहे हो।
इसलिए तुम डरते भी हो उन लोगों के पास जाने से, जो तुम्हें जगा दें और चौंका दे। क्योंकि वे तुम्हारी नींद तोड़ देंगे। और उनके कारण तुम्हारे जीवन में एक नई यात्रा शुरू होगी, जो कि बड़ी कठिन है। कठिन इसलिए कि तुम्हारे पैर अंधेरे में इस तरह जम गए हैं कि प्रकाश की तरफ उठेंगे ही नहीं। तुम्हारी आंखें अंधेरे की इतनी आदी हो गई हैं कि तुम प्रकाश की तरफ देखोगे तो बंद हो हो जाएगी। कठिन इसलिए नहीं है कि सत्य कठिन है।
सत्य तो बड़ा सहज है--सुख सुरति, सहजै सहजै आव। वह तो बड़ा सुखपूर्वक आ जाता है। सीधे-सीधे, चुपचाप चला आता है। पगध्वनि भी नहीं होती, कुछ करना भी नहीं होता और आ जाता है। सत्य तो सरल है। तुम कठिन हो, इसलिए यात्रा कठिन होगी।
तो जो डरे हुए हैं, कमजोर हैं, कायर हैं, वे यात्रा पर ही नहीं निकलते, हारने के भय से, टूटने के डर से। पराजित होने के कारण वे युद्ध के स्थल पर ही नहीं जाते। वे पीठ किए खड़े रहते हैं।
और युद्ध पर न जाना हो तो सबसे अच्छी तरकीब यही है कि तुम कहो, युद्ध
है ही नहीं। क्योंकि अगर युद्ध है और तुम नहीं जा रहे, तो मन कचोटेगा, अपराध अनुभव होगा। अगर परमात्मा की तरफ न जाना हो तो सबसे गहरी व्यवस्था नास्तिक की है। वह कहता है, परमात्मा है ही नहीं। वह यह कह रहा है कि प्रकाश है ही नहीं, कहां की बातों में पड़े हो? अंधेरा ही बस है। नास्तिक डरा हुआ है। अगर प्रकाश है, तो जाना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा। अगर सत्य है, तो फिर कैसे असत्य में बैठे रहोगे? इसलिए वह कह रहा है कि सत्य है ही नहीं। मैं एक आदमी को जानता हूं, वे डाक्टर के पास जाने से डरते हैं। उनको कैंसर है, लेकिन वे डाक्टर के पास जाने से डरते हैं। वे कभी-कभी मेरे पास आते हैं। वे मुझसे कहलवाना चाहते हैं कि मैं कह दूं, कैंसर नहीं है। वे कहते हैं, आप तो मुझे जानते हैं। आप तो सभी जानते हैं, मैं कहीं बीमार हूं! मैं तो बिल्कुल ठीक हूं।

लेकिन जब वे यह कहते हैं, मैं बिल्कुल ठीक हूं, तब उनके हाथों में कंपन साफ है। उनकी आंखों में भय है। उनसे सच बोलने में मुझे भी कठिनाई होती है कि उनको कहना क्या! वे अपनी पत्नी से पूछते हैं, अपने बेटों से पूछते हैं, मैं ठीक हूं न? कोई गड़बड़ तो नहीं है। और अगर कोई उनसे कहे कि जरा डाक्टर के पास चलकर जांच-पड़ताल करवा लो, तो वे कहते हैं, किसलिए? जब मैं ठीक ही हूं। तो बहुत दिन तक तो वे गए न। डाक्टरों को शक था। उनकी पत्नी मेरे पास आई और उसने कहाः हम थक गए हैं इनको भेजने से। ये तो जाते नहीं और जाने की बात करो तो ये कहते हैं किसलिए? मैं बिल्कुल ठीक हूं। और ये ठीक हैं नहीं। इनकी हालत खराब है, ये रोज दुर्बल होते जाते हैं, रोज इनका वजन गिरता जा रहा है, मगर ये कहते हैं कहां गिर रहा है वजन? सब ठीक है। ये बात ही नहीं उठने देते बीमारी की। बीमारी की चर्चा से ही भयभीत होते हैं। इनको कोई भय समा गया है भीतर। इनको मैं कैसे डाक्टर के पास ले जाऊं?
मैंने कहाः तुम मेरे पास लाओ। वे लाए गए। मैंने उनसे पूछाः क्या आप क्या बीमार हो? उन्होंने कहा कि नहीं। तो मैंने कहाः डाक्टर के पास जाने से क्यों डरते हो? यह बेचारी पत्नी परेशान हो रही है, इसको भय समा गया है, इसका दिमाग खराब है। आप तो बिल्कुल ठीक हैं। मैं भी देखता हूं कि आप बिल्कुल ठीक हैं। पत्नी की तृप्ति के लिए आप चले जाओ। उन्होंने कहाः अब आप ऐसा कहते हैं, तो चला जाऊंगा। लेकिन उनके हाथ-पैर कंप रहे हैं। अब बड़ी मुश्किल में खड़े हो गए हैं कि अब क्या कहें! जब हैं ही नहीं बीमार, तो डरना क्या है?
ईश्वर नहीं है, ऐसा नास्तिक कह कर अपने को सांत्वना दे रहा है। नहीं है, तो फिर खोज पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। सो जाओ, विश्राम करो। जहां हो, वहीं ठीक है।
जो नास्तिक नहीं है, उन्होंने भी बचने की तरकीबें निकाल ली हैं, उन्होंने और भी सस्ती तरकीबें निकाल ली हैं। मंदिर हो आते हैं, मस्जिद हो आते हैं, गुरुद्वारा चले जाते हैं, चर्च पर रविवार को जाकर प्रार्थना कर आते हैं। एक सामाजिक औपचारिकता है, पूरी कर लेते हैं कि पता नहीं भगवान हो ही! तो कहने को रहेगा कि हम हर शनिवार को मंदिर आते थे कि हर रविवार को चर्च आते थे कि हर शुक्रवार को मस्जिद आते थे। याद ही होगा, आपके हिसाब-किताब में तो लिखा ही होगा। कहीं हो, तो कुछ कर लेते हैं, ताकि ऐसा न हो कहने को कि हमने कुछ भी न किया।
वे भी अपने को बचा रहे हैं। क्योंकि मंदिर जाने से कहीं कोई परमात्मा
तक पहुंचा है। हां, परमात्मा तक जो पहुंच जाता है, वह मंदिर तक जरूर पहुंच जाता है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना। मंदिर जाने से कोई परमात्मा तक अगर पहुंचता होता, तो सभी लोग मंदिर जाते हैं, पहुंच गए होते। मंदिर जाने से तो कोई पहुंचता नहीं दिखाई पड़ता। जरूर मंदिर तरकीब है बचने की। वह धोखा है, वह असली मंदिर तक जाने से बचने का उपाय है; तो तुमने एक नकली मंदिर बना लिया है। उस नकली मंदिर में तुम हो आते हो, वह बिल्कुल सस्ता है। उनमें कुछ भी नहीं लगता। दो पैसे चढ़ा आए, दो फूल रख आए, वे भी किसी दूसरे के बगीचे से तोड़ लिए हैं। सिर झुका दिया--बिना झुके। अहंकार तो अकड़ा ही खड़ा रहा, सिर लगा दिया। पत्थर के सामने सिर लगाने में अड़चन भी नहीं होती। जिंदा आदमी के चरणों में सिर लगाने में अड़चन भी होती है।
महावीर को छूने में डर लगा होगा। महावीर की मूर्ति के चरणों में सिर रखने में किसी को डर नहीं लगता। वहां कोई है ही नहीं, तो झुकने में डर क्या है। बुद्ध के सामने झुकने में पीड़ा हुई है। लेकिन बुद्ध की प्रतिमा के सामने करोड़ों लोग झुक रहे हैं। जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, वे ही उनके चर्च खड़े करके उनके चरणों में झुक रहे हैं। क्रास के सामने झुक रहे हैं, जीसस के सामने न झुके। कुछ मजा मालूम होता है।
जीसस में खतरा है। अगर झुके तो यह आदमी तुम्हें जगाएगा। तुम झुके कि इसने तुम्हारी गर्दन पकड़ी। यह तुम्हें हिलाएगा। यह तुम्हारी नींद को तोड़ देगा। इसके पास जाने से तुम डरते हो। हां, मिट्टी के गणेश बिल्कुल ठीक हैं। वे कुछ कर नहीं सकते। वे तुम्हारे ऊपर ही निर्भर हैं। जब तुम उनको

बनाओ, तब बन जाते हैं। तब तुम उनको डुबाओ नदी में, तो डूब जाते हैं। उनका कुछ है नहीं; उनका कोई बस तुम पर नहीं। तुम्हारे बस में वे हैं।
तो तुमने झूठे भगवान खड़े किए हैं, जो तुम्हारे बस में हैं। झूठे मंदिर खड़े किए हैं। यह मंदिर से बचने की तरकीब है। यह परमात्मा के पास जाने से बचने का उपाय है। तुमने अपने घरघूले बना लिए हैं, खेल बना लिया है। तुम उसी में रमे हुए हो। अगर तुम ये उपाय न करो, तो तुम्हें एक न एक दिन परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए तैयार होना पड़ेगा।
नास्तिक बच रहे हैं इनकार करके; आस्तिक बच रहे हैं स्वीकार करके। कभी- कभी कोई आदमी न तो इनकार करता, न स्वीकार करता, खोज पर निकलता है। मैं उसी को धार्मिक कहता हूं, जो न तो आस्तिक है, न नास्तिक है; खोजी है, यात्री है, जो कहता है, जीवन दांव पर लगा देंगे, लेकिन खोज कर रहेंगे। उसके जीवन में अंधेरे के प्रतीति हुई है। अब वह प्रकाश चाहता है। उसने प्यास को जाना है और जीवन के मरुस्थल को जाना है। वह मरूद्यान की खोज में है। वह किसी सरोवर की तलाश में है। और वह तलाश बौद्धिक नहीं है, उसका रोआं-रोआं प्यास से प्यासा है।
दादू उसी की बात कर रहे हैं। वे कहते हैंः
मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
ऐसी बौद्धिक बातचीत से परमात्मा कुछ मिलेगा नहीं कि तुम बैठ कर गीता
पढ़ लो, कि दर्शनशास्त्र का विचार कर लो; नहीं, इससे कुछ न होगा।
मन चित चातक ज्यूं रटै, ... जैसे चातक चिल्लाता है रात भर--पिव पिव लागी प्यास! पियू पियू कहे चला जाता है। साधारण जल से राजी नहीं होता, स्वाती की बूंद की प्रतीक्षा करता है। वर्ष बिता देता है। दिन आते हैं, जाते हैं, चातक की रटन बढ़ती चली जाती है।
चातक तो एक काव्य-प्रतीक है। चातक तो कवियों की कल्पना है कि स्वाती नक्षत्र में यह चातक नाम का पक्षी केवल स्वाति नक्षत्र के पानी को ही पीता है। बाकी साल भर रोता रहता है। साधारण जल उसे तृप्त नहीं करता, स्वाती का परम जल चाहिए।
यह तो कवि की कल्पना है। लेकिन संत के लिए यह कल्पना नहीं है, यह उसका अनुभव है। संत साधारण जल से राजी नहीं, परमात्मा के जल से ही राजी है। साधारण भोजन उसकी भूख को नहीं मिटा पाता, वह तो जब परमात्मा के साथ ही लीन न हो जाए, तब तक भूखा रहेगा। साधारण प्रेम उसे तृप्त नहीं कर पाता। जब तक परमात्मा की ही वर्षा उस पर न हो जाए, जब तक परम प्रेम न आ जाए तब तक वह प्यासा ही रहेगा। तब तक यह साधारण जगत का प्रेम तो उसकी प्यास में और जैसे अग्नि में घी का काम होता है, ऐसा काम करेगा। इस प्रेम से तो वह और भी प्यासा होने लगेगा। इस प्रेम से तो उसे खबर मिलने लगेगी कि और भी बड़ी संभावनाएं हैं जिनके द्वार खुलते हैं। यह प्रेम उसे केवल प्रार्थना की याद दिलाएगा। यह प्रेम उसे परमात्मा की तरफ और भी आतुरता से भरेगा।
मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
बस, उस प्यारे की ही प्यास लगी है। वही बुझा सकेगा।
दादू के शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं, वे कहते हैं, "मन चित।" मन के लिए भारत में बहुत शब्द हैं ऐसा दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। अंग्रेजी में एक ही शब्द है--"माइंड", लेकिन भारत में बहुत शब्द हैं। इसमें दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं दादूः मन, चित-चातक।
साधारण मन तो तुम्हारे पास है, चित तुम्हारे पास नहीं है। जब तक मन अंधेरे से राजी है तब तक वह चित नहीं है। जब मन चैतन्य की प्यास से भरता है और चैतन्य के आरोहण पर निकलता है; और जब कहता है चैतन्य होना है और चेतना है, जागना है, जागरण की अभीप्सा जब मन में पैदा होती है तब मन चित्त हो जाता है। तब मन साधारण मन न रहा। तब एक नई ही घटना घट गई। वह चैतन्य होने लगा। मन साधारणतः अचित है, वह बेहोश है। तुम्हारा मन तो बिल्कुल बेहोश है। तुम्हें पता नहीं तुम्हारा मन तुमसे क्या करवाता है। तुम करते रहते हो। जैसे कि कोई शराब के नशे में कर रहा है। किसी ने गाली दी, तुम्हें क्रोध आ गया। तुम कहते जरूर हो कि मैंने क्रोध किया, अब मैं क्रोध न करूंगा; लेकिन तुम गलत कहते हो। तुमने क्रोध किया नहीं। मन ने क्रोध करवा लिया। तुम

मालिक नहीं हो। इसलिए तुम यह मत कहो कि मैंने क्रोध किया। अगर तुम करने ही वाले होते तब तो तुम्हारे बस में होता करते, या न करते। तुम मालिक नहीं हो। मन ने क्रोध करवा लिया है। तुम्हारा बस नहीं है। तुम कसम भी खाओ कि अब न करेंगे, कुछ हल नहीं होता। दूसरे दिन फिर जब घड़ी आती है, फिर क्रोध हो जाता है।
क्रोध तुम्हारी बेहोश अवस्था है--मूर्च्छित। मन मूर्च्छित है। मन मूर्च्छा है। इसलिए मन तो परमात्मा की प्यास से नहीं भर सकता। लेकिन मन जब चित हो जाता है--चित का मतलब मन जब जागने लगता है और चैतन्य होने लगता है, जब तुम प्रत्येक कृत्य को जाग कर करने लगते हो; भोजन करते हो--अभी तो भोजन करते हो, बैठे भोजन की थाली पर होते हो, मन दुकान पर होता है, बाजार में होता है, न मालूम कहां कहां होता है। एक बात पक्की है, तुम जहां होते हो वहां मन नहीं होता। तुम यहां बैठे हो, तुम्हारा मन कहीं और पहुंच गया होगा। तुम कहीं भी जा सकते हो--मन!
अगर तुम्हारा मन कहीं और चला गया और तुम यहां बैठे हो, तो तुम यहां बेहोश बैठे हो। तुम्हारा यहां होना न होना बराबर है। शरीर यहां है, तुम यहां नहीं हो। तुम्हारी मौजूदगी मौजूदगी नहीं है, एक तरह की गैर-मौजूदगी है।
मन मूर्च्छा है। उठते, बैठते, तुम सब काम कर रहे हो, लेकिन यंत्रवत। तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं है, क्यों कर रहे हो? अगर तुम कारण को खोजने जाओ तो तुम बड़े हैरान होओगे कि कारण कुछ और ही होंगे, कारण तुम कुछ और ही समझते रहे। अगर तुम अपने मन का निरीक्षण करो तो धीरे-धीरे तुम्हें समझ में आएगा। दफ्तर में तो तुम नाराज हुए थे और आकर पत्नी पर टूट पड़े। पत्नी का कोई कसूर ही न था। लेकिन तुमने कोई कसूर खोज लिया कि आज रोटी जल गई है कि दाल में नमक नहीं है। ऐसी घटनाएं रोज ही घटती थीं। लेकिन रोज तुमने न पकड़ी थीं, आज तुमने पकड़ लीं। आज क्रोध तैयार था। तुम दफ्तर से भरे आए थे। क्रोध तो आया था दफ्तर में मालिक पर, लेकिन मालिक पर क्रोध बताना बहुत महंगा सौदा हो जाएगा। वहां तुम न बता पाए। वहां तो तुम मुस्कुराते रहे। वहां तो तुम पूंछ हिलाते रहे। अब क्रोध भरा है हृदय में, वह बरसना चाहता है। तुम कोई कमजोर व्यक्ति चाहते हो, जिस पर टूट पड़े।
पत्नी हमेशा उपयोगी है। उसके कई उपयोग हैं। बड़ा उपयोग तो यह है कि हारे-पिटे बाजार से लौटे, पत्नी पर टूट पड़े। अब पति पत्नी पर टूटे तो पत्नी क्या--उसकी मार-पीट तो कर नहीं सकती। पश्चिम में तो उन्होंने शुरू कर दी, पूरब में अभी नहीं कर सकती। तो वह बेटे की राह देखेगी। जब वह स्कूल से लौट आए, तब वह बेटे पर टूट पड़ेगी। क्योंकि पति तो परमात्मा है। ऐसा पतियों ने ही पत्नियों को समझवा दिया है। हजारों साल से शिक्षण दिया है कि पति परमात्मा है। पत्नियां जानती भी हैं कि हैं नहीं परमात्मा; भलीभांति जानती हैं। उनसे ज्यादा और कौन जानेगा? लेकिन मानना पड़ता है।
जैसे पति डरता है दफ्तर में मालिक को नाराज करने से, ऐसा पत्नी भी डरती है इस मालिक को नाराज करने से, जो पति है। क्योंकि उसकी भी आर्थिक रूप से वैसी ही परतंत्रता है, जैसी तुम्हारी दफ्तर में है। वह कमा नहीं सकती। तुम पर आर्थिक रूप से निर्भर है। वह क्या करे? वह प्रतीक्षा करेगी। ऐसे ऊपर से कुछ नहीं कहेगी, सब ठीक चलेगा, लेकिन बच्चे की राह देखेगी। यह सब अचेतन हो रहा है। यह मूर्च्छा--
बच्चे का कोई कसूर नहीं है। बच्चा अपना खेलता-कूदता चला आ रहा है। उसे कुछ पता ही नहीं हैं कि घर में कौन सा उपद्रव राह देख रहा है। वह कोई भूल देख लेगी कि तुम आज कपड़ा खराब करके लौटे, कि धूल लगा ली, कि कीचड़ लगा ली, कि स्लेट फोड़ डाली। वह रोज ही यह करके लौट रहा है। मगर आज उसकी पिटाई हो जाएगी।
बच्चा क्या करे? वह जाकर कमरे में अपनी गुड़िया की टांगें तोड़कर खिड़की
के बाहर फेंक देगा। वह जो दफ्तर में शुरू हुआ था, गुड़िया पर पूरा हुआ।
ऐसी अंधी यात्रा है। तुम कहीं क्रोधित हो, कहीं निकालते हो। तुम कहीं प्रेम से भरते हो, कहीं उंडेलते हो। तुम जाग कर नहीं जी रहे हो। तुम आज क्रोधित होते हो, सालभर बाद निकालते हो। भरा रहता है। भरते चले जाते हो।

मनस्विद कहते हैं कि जो व्यक्ति रोज क्रोध कर लेते हैं, वे खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि उनका क्रोध छोटा-छोटा है। छोटा सा बादल आया, बरसा, चला गया। लेकिन जो लोग क्रोध को इकट्ठा करते चले जाते हैं और शांत बने रहते हैं, वे बड़े खतरनाक हैं। जिस दिन उनका बादल आएगा उस दिन वे किसी की हत्या करेंगे, इससे कम नहीं। वे किसी दिन किसी का प्राण लेंगे। ऐसे आदमी से जरा बच कर रहना, जो रोज-रोज क्रोध न करता हो। क्योंकि वह किसी दिन--जिस दिन फूटेगा तो विस्फोट होगा।
तुम्हारा मन तो मूर्च्छित है। इस मन से तो परमात्मा की रटन न लगेगी।
मन को चित बनाना पड़ेगा। चित का अर्थ है, कांशसनेस; चैतन्य। मन को पहले जगाओ।
बुद्ध से कोई पूछता था, हम परमात्मा को कैसे खोजें? वे कहते, यह बात ही
मत करो। परमात्मा का तुमसे क्या लेना-देना! तुम्हारा परमात्मा से क्या लेना-देना! तुम चित को जगाओ। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। वे कहते, तुम चित को जगाओ, फिर शेष अपने से होगा। एक बार तुम जाग कर देखने लगो जीवन को, थोड़ी सी होश की किरण आ जाए, थोड़ी सी तुम्हारी आंखों में देखने की क्षमता आ जाए, कानों में सुनने की क्षमता आ जाए, हाथ में छूने की क्षमता आ जाए, तो तुम खुद ही पाओगे कि यह जीवन कुछ भी नहीं है। तुम किसी और जीवन की खोज से भर जाओगे।

मन चित चातक ज्यूं रटै, ...
और जैसे चातक रटता ही रहता है, अपने प्यारे को ही पुकारता रहता है, पिऊ पिऊ की आवाज लगाए रहता है और प्रतीक्षा करता है, ऐसा यह मन चित-चातक अब एक ही रटन से भर गया है--पिव पिव लागी प्यास!
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।
कुछ चाहिए नहीं; सिर्फ दर्शन के कारण, सिर्फ दर्शन की इच्छा है। कुछ चाहिए नहीं। परमात्मा की तरफ अगर तुम कुछ मांगते गए तो तुम गए ही नहीं। क्योंकि तुम्हारी सब मांग संसार की मांग होगी। तुम मांगोगे कि बेटा बीमार है, ठीक हो जाए। अदालत में मुकदमा है, जीत जाऊं। बेटा पैदा नहीं होता, पैदा हो जाए। तुम कुछ भी मांगते जाओगे, तुम परमात्मा को नहीं मांग रहे। तुम्हारी हर मांग संसार की मांग होगी।
परमात्मा को मांगने वाला तो कुछ भी नहीं मांगता। वह तो कहता है, दर्शन काफी है। तुम दिख जाओ, बस, इतना पर्याप्त है। तुम दिख गए फिर और बचता भी क्या है? तुम्हें देख लूं भर आंख--पर्याप्त है। इससे ज्यादा की कोई आकांक्षा नहीं है। "दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस। बस, मेरी एक आस है, एक ही आकांक्षा है कि तुम्हें देख लूं। सत्य को देख लूं।
क्यों? इतनी सी आस पर क्यों रुक जाता है भक्त? क्योंकि भक्तों ने जाना
है सदियों में निरंतर अनुभव से कि जिसका दर्शन हो गया परमात्मा से, दिखाई पड़ गया, वह उसके साथ एक हो जाता है। जान लिया जिसने सत्य, वह सत्य हो जाता है। परमात्मा को देख लिया जिसने, वह परमात्मा हो जाता है। उस दर्शन के बाद कोई लौटता नहीं है। उस दर्शन के बाद तुम बचते नहीं। वह दर्शन इतनी महाअग्नि है कि वह तुम्हें समाहित कर लेती है अपने में। तुम अपने घर वापस लौट जाते हो। इसलिए दर्शन की बात मांगनी काफी है; बाकी शेष अपने आप हो जाता है।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।
दादू विरहिन दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस।
पंथ निहारत पीव का, विरहिन पलटे केस।
कहते हैं कि मैं किससे कहूं अपना दुख? विरहिन दुख कासनि कहै? दुख मैं किससे कहूं? क्योंकि मेरा दुख दूसरे लोग समझ भी न पाएंगे। वे तो समझेंगे कि तुम दीवाने हो गए, पागल हो गए। अगर तुमने किसी से कहा... ।
बैठे रो रहे हो; अगर तुम किसी से कहो--किसलिए रो रहे हो? और तुम कहो कि तिजोड़ी खो गई, वह समझ लेगा कि बात ठीक है। वह भी रोता अगर तिजोड़ी खो जाती है। तुम कहो कि पत्नी मर गई, वह कहेगा बिल्कुल ठीक है। हम भी रोते अगर पत्नी मर जाती। लेकिन तुम अगर कहो कि परमात्मा का दर्शन नहीं हो रहा है

इसलिए रो रहे हैं, तो वह तुम्हारी देखेगा इस तरह, जैसे तुम पागल हो गए हो।
तिजोड़ी की बात समझ में आती है, दीवाला निकल गया, रो रहे हो, समझ में आता है; पत्नी जल गई, रो रहे हो, समझ में आता है; हार गए जीवन में, समझ में आता है। लेकिन परमात्मा के दर्शन के लिए रो रहे हो, किसी की समझ में न आएगा। वह प्यास जिनको समझ में आती है, उनको ही वह भाषा भी समझ में आएगी।
दादू विरहिन दुख कासनि कहै, ...
किससे कहूं यह अपना दुख? किससे कहूं यह विरह? किससे कहूं यह पीड़ा?
और, कासन देइ संदेस--और किसके हाथ संदेश भेजूं? परमात्मा के पास कैसे संदेशा जाए? कैसे परमात्मा को खबर करूं कि मेरी पीड़ा का अब अंत करो? कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। संदेश भेजने की कोई सुविधा नहीं है। अपने दुख को किसी से कहने का उपाय नहीं है।
पंथ निहारत पीव का, ...
इसलिए भक्त क्या करे? वह राह देखता है प्रेमी की, परमात्मा की।
पंथ निहारत पीव का, विरहिन पलटे केस।
और तैयार करता रहता है अपने को कि पता नहीं तुम किसी भी क्षण में आ जाओ। ऐसा न हो कि तुम मुझे गैर-तैयार पाओ। तो अपने केस को सम्हालती जाती है और राह को देखती रहती है। विरहन केश को सम्हालती जाती है। यह बड़ी प्यारी बात है। सारा संन्यास केश को सम्हालना है परमात्मा के लिए। सारी साधना स्वयं को तैयार करना है उस घड़ी के लिए कि अगर वह आ ही जाए, तो ऐसा न हो कि वह मुझे गैर-तैयार पाए।
रवींद्रनाथ की एक बड़ी महत्वपूर्ण कविता है। एक बड़ा मंदिर है, जिसमें
सौ पुजारी हैं। प्रधान पुजारी को स्वप्न आया है कि परमात्मा ने कहा कि कल मैं आता हूं। हजारों साल पुराना मंदिर है। हजारों साल से पूजा-अर्चना हुई है। ऐसा कभी हुआ नहीं कि परमात्मा आया हो। वह पत्थर की मूर्ति की ही पूजा चलती रही है। पुजारी भी थोड़ा चौंका। उसको भी सपने पर भरोसा न आया। फिर भी उसे डर लगा सुबह, कि अगर कहीं ऐसा हो कि यह हो ही जाए, तो फिर मैं ही फंसूंगा।
तो उसने सब पुजारियों को इकट्ठा कर लिया और कहा कि ऐसा सपना आया है। भरोसा मुझे है नहीं, यह मैं कहे देता हूं। मैं कोई पागल नहीं हूं कि सपने पर भरोसा करूं। लेकिन तुमसे सपना भी कहे देता हूं। अब तुम जैसा सब सोचो वैसा हम करें। सभी ने कहा कि कहीं आ ही जाए, तो फिर सब क्या करेंगे? इसलिए तैयारी तो कर लेनी चाहिए। हर्ज कुछ भी नहीं है। अगर न आया तो जो भोग के लिए तैयार करेंगे वह हम ही प्रसाद ले लेंगे। और ऐसे भी मंदिर की सफाई नहीं हुई बहुत दिन से, सफाई हो जाएगी।
तो दिन भर मंदिर की सफाई की गई, भोग तैयार किया गया, फूल सजाए गए, धूप बारी गई, मगर भरोसा तो किसी को था नहीं। मंदिर के पुजारियों से ज्यादा कम भरोसे वाले आदमी और कहीं पाना भी मुश्किल है। पुजारी तो भलीभांति जानता है कि यह सब ढौंग है, धंधा है। वह तो जानता है, यह पत्थर की मूर्ति है, इसमें कुछ सार नहीं है। अगर वह उसके सामने आरती भी झुलाता है, तो वह पत्थर की मूर्ति को प्रसन्न करने के लिए नहीं, वे जो पीछे खड़े भक्तगण हैं जिनसे उनकी तनख्वाह मिलती है, उनको प्रसन्न करने के लिए। उसकी आरती समाज की आरती है, सत्य की नहीं। वह तुम्हारी पूजा कर रहा है क्योंकि तुमसे नौकरी पा रहा है। वह तो भलीभांति जानता है कि सब सपने सपने हैं।
लेकिन तैयारी की, सब तरफ आयोजन किया। सांझ होने लगी, परमात्मा सांझ तक
न आया। फिर शक-शुबहा पैदा हो गया। लोगों ने कहाः हम पहले ही जानते थे यह सपना है। फिजूल हमने मेहनत की। पर अब जो हुआ, हुआ। दिन भर के थके-मांदे थे भोग का प्रसाद लगा लिया, फिर सब गहरी नींद में सो गए।
रात आधी रात एक पुजारी ने घबड़ा कर नींद में कहाः मुझे रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। दूसरे पुजारी चिल्ला पड़े, नाराज हुए, और उन्होंने कहाः बंद करो बकवास। एक के सपने के पीछे दिन भर परेशान हुए, अब तुम्हें सपने में रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। शांति से सो जाओ। अब नींद खराब मत करो, बहुत हो गई प्रतीक्षा। न कोई है, न कोई आने वाला है। लेकिन तब दूसरे पुजारी ने कहाः

नहीं, लेकिन गड़गड़ाहट तो मुझे भी सुनाई पड़ती है। रथ आता मालूम होता है। तो तीसरे ने कहाः यह रथ की गड़गड़ाहट नहीं है, आकाश में बादलों का गर्जन है। फिर वे सो गए। फिर रथ द्वार पर आकर रुका, ऐसा किसी को लगा कोई सीढ़ियां चढ़ने लगा, फिर किसी ने द्वार पर दस्तक दी। तब कोई चौंक कर बैठ गया और उसने कहा कि मुझे लगता है कि उसने द्वार पर दस्तक दी। अब तो बाकी लोग बहुत नाराज हो गए। उन्होंने कहाः रात भर सोने न देंगे। तुम सभी पागल हो गए? हवा का झोंका है, द्वार को थपथपा रहा है। न कोई है, न कोई आने को है। और अब किसी को कुछ भी सुनाई पड़े, वह अपने मन में भीतर रखे। कहने की जरूरत नहीं। हमारी नींद खराब मत करो।
फिर वे सब गहरी नींद में सो गए। सुबह उठे तब देखा कि द्वार पर रथ आया था। क्योंकि चाक के चिह्न थे। सीढ़ियों पर कोई चढ़ा था क्योंकि सीढ़ियों की धूल पर पद-चिह्न थे। द्वार पर किसी ने दस्तक दी थी लेकिन अब बड़ी देर हो गई थी। अवसर चूक गया था।
और ऐसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है। यह रवींद्रनाथ की कविता सिर्फ कविता नहीं है। एक बहुत गहरे सत्य का दर्शन है। बहुत बार परमात्मा ने तुम्हारे द्वार पर भी दस्तक दी है। बहुत बार उसकी छाया ने तुम्हारे सपनों को घेरा है। बहुत बार, बहुत-बहुत बार, अनंत-अनंत यात्राओं में तुम उसके बहुत करीब आ गए हो, लेकिन पहचान नहीं पाए। कभी तुमने कहा, बादलों की गड़गड़ाहट है। कभी तुमने कहा, हवा का झोंका है।
जिन्होंने जाना है वे तो बादलों की गड़गड़ाहट में भी उसी का गर्जन सुनते हैं। जिन्होंने नहीं जाना है, वे उसकी वाणी में भी बादलों की गड़गड़ाहट पहचानते हैं। जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो हवा की थपकी में भी उसी की थपथपाहट सुनी है, उसकी ही खटखटाहट सुनी है। और जिन्होंने नहीं जाना उन्होंने उसके द्वार पर आकर थपथपाने भी पर कहा है कि हवा का झोंका है। व्याख्या तुम्हारी है। जो जानता है, वह परमात्मा को सब जगह पाता है। सभी जगह उसका रथ है। और सभी जगह उसके रथ के चिह्न हैं। सभी तरफ से वह आता है। सभी तरफ उसके पद-चिह्न हैं। सब तरफ से तुम्हें ठकठकाता है, पर तुम सोए हो। और अगर तुम्हारे मन का कोई कोना कहता भी है कि जागो; तो तुम कहते हो, सोओ। नींद खराब मत करो। हवा का झोंका है। आया है, चला जाएगा। कहीं कोई परमात्मा है आने को!
दादू कहते हैंः पंथ निहारत पीव का, विरहिन पलटे केस।
अपने बाल भी सम्हालती जाती है, लौट-लौट कर राह पर भी देखती जाती है। आते हो, तो कम से कम बाल तो संवारे मिल जाएं। कहीं ऐसा न हो कि वह आ जाए और विरह की उदासी से ही स्वागत हो।
इसलिए संत की अवस्था को तुम ठीक से समझने की कोशिश करो। वह तुम्हें बाहर से बिल्कुल प्रसन्न और आनंदित दिखाई पड़ता है--केश संवारे। लेकिन भीतर एक गहन पीड़ा और गहन रुदन भी है। वह प्रभु के लिए पुकार रहा है। भक्त तुम्हें बाहर से तो बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता है। नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। भीतर उसके एक कांटा भी चुभा है। वह नाच रहा है किसी के लिए कि वह आए, तो उदास न पाए, नाचता हुआ पाए। लेकिन भीतर वह पुकारे जा रहा है--
मन चित्त चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।।
(दादू) विरहिन दुख कासनि कहै, कासनि देइ संदेस।
पंथ निहारत पीव का, विरहिन पलटे केस।।
ना बहु मिले न मैं सुखी कहु क्यूं जीवन होइ।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोइ।।
ना वहु मिलै न मैं सुखी...
जीवन में सिर्फ एक ही सुख है। वह है परमात्मा से मिल जाना। शेष सब कितना ही सुख दिखाई पड़े, दुख ही है। आज नहीं कल--
हर सुख को तुम पलटोगे और दुख छिपा हुआ पाओगे। हर सुख को उघाड़ोगे और दुख को छिपा हुआ पाओगे। सुख तो केवल घूंघट है दुख का। बस, जब तक घूंघट पड़ा है तब तक ठीक। घूंघट उठाया कि दुख से मिलन होगा। दुख असलियत है, सुख सिर्फ

घूंघट है। और ऐसा तुम्हें भी रोज-रोज अनुभव होता है, मगर तुम अपने अनुभव से सीख नहीं पाते।
मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि वह अपने अनुभव से भी सीख नहीं पाता। अनुभव तो होते हैं, लेकिन सीख नहीं निचोड़ पाता। अनुभव ऐसे पड़े रह जाते हैं, जैसे माला न हो, तो मनके पड़े रह जाएं अलग-अलग। सीख का अर्थ हैः जिसने मनके पिरो कर माला बना ली; एक धागा पिरो लिया।
तुमने भी अनुभव किए हैं। तुम्हारे अनुभव में और दादू के अनुभव में, कोई फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है, तुम्हारे पास पास मनकों का ढेर लगा है लेकिन हर मनका स्वतंत्र मालूम पड़ता है। तुम मनकों के बीच एक धारा को जोड़ने में समर्थ नहीं हो पाए। अनुभव तो तुम्हारे पास है, लेकिन सिखावन नहीं है। तुम सीख नहीं पाए। अनुभव तो तुम्हारे पास है, लेकिन सिखावन नहीं है। तुम सीख नहीं पाए अनुभव से। एक अनुभव हुआ, गया; दूसरा हुआ गया; लेकिन दोनों के बीच से तुम निचोड़ न पाए सार। ऐसे करोड़-करोड़ अनुभव तुम्हें हुए हैं, लेकिन तुम उनसे सीख नहीं ले पाए। सीख का मतलब है, सभी अनुभवों का सार। सीख इत्र है--हजार फूलों को निचोड़ कर जो बनता है, हजार अनुभव को निचोड़ कर जो बनता है। तुमने फूलों के तो ढेर लगा लिए हैं--लेकिन इत्र नहीं निकाल पाए। और इत्र ही असली बात है।
ना वहु मिले न मैं सुखी कहु क्यूं जीवन होइ।
और अगर उससे मिलन न हो, तो मुझे जीवन की कोई आकांक्षा नहीं। फिर जीवन न हो, यही अच्छा।
दादू यह कह रहे हैं कि अगर परमात्मा नहीं है और परमात्मा से मिलन नहीं है, तो जीवन से मौत भली। कम से कम विश्राम तो होगा। व्यर्थ की आपाधापी तो बचेगी। नाहक की दौड़-धूप से तो छूटेंगे। फिर जीवन का कोई अर्थ नहीं। जीवन का एक ही अर्थ हो सकता है और वह है, परमात्मा से मिलन। समग्र से एक हो जाऊं, तो ही जीवन में अर्थ हो सकता है। अलग-अलग तुम खड़े रहो, तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा। अर्थ का अर्थ ही होता है, समग्र के साथ तुम्हारी संगति बैठ जाए।
तुम ऐसा समझो कि एक कविता की एक पंक्ति को फाड़ कर मैं तुम्हें दे दूं;
उस पंक्ति में कुछ ज्यादा अर्थ न होगा। लेकिन वही पंक्ति पूरी कविता में बड़ी सार्थक थी। फिर ऐसा समझो कि पंक्ति को भी फाड़ कर एक शब्द ही तुम्हारे हाथ में दे दूं; उसमें और भी कम अर्थ रह जाएगा। पंक्ति में थोड़ा-बहुत अर्थ भी था।
फिर तुम ऐसा समझो कि शब्द को भी तोड़ कर बचे हुए वर्णों को तुम्हें दे दूं, तब तो और भी अर्थ हो जाएगा। अ ब स द इनमें क्या अर्थ हैं? लेकिन इसी बारहखड़ी से कालीदास के सारे ग्रंथ निर्मित होते हैं, शेक्सपीयर का सारा काव्य निर्मित है। इन्हीं शब्दों से बुद्ध के वचन निर्मित हैं कृष्ण की गीता, मोहम्मद का कुरान। तब बड़े अर्थपूर्ण हैं वे।
अब यह बड़े आश्चर्य की बात है। वर्णों में तो कोई अर्थ नहीं होता, अल्फाबेट तो अर्थशून्य होती है। फिर दो वर्ण मिलते हैं, शब्द बनता है। शब्द में थोड़ा अर्थ होता है। फिर शब्द मिलते हैं, पंक्ति बनती है; पंक्ति में और भी थोड़ा अर्थ होता है। फिर पंक्तियां मिलती हैं और गीत निर्मित होता है; फिर गीत में और भी अर्थ होता है।
तुम अभी वर्णाक्षरों की भांति हो। अकेले-अकेले खड़े अ ब स ड--कुछ अर्थ नहीं। शब्द बनो, पंक्ति में जुड़ो, फिर उसके महाकाव्य के हिस्से हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में अर्थ आएगा। अर्थ सदा परमात्मा का है। परमात्मा का अर्थ है, पूरे का। व्यक्ति का कोई अर्थ नहीं है, अर्थ समष्टि का है।
ना बहु मिले न मैं सुखी...
और बिना अर्थ के कभी कोई सुखी हुआ? व्यर्थ जीकर कभी कोई सुखी हुआ? सुख
तो अर्थपूर्ण जीवन की सुगंध है। जहां अर्थ होता है जीवन में, वहां सुख की सुगंध पैदा होती है। वह सुवास है।
ना वहु मिले न मैं सुखी कहु क्यूं जीवन होइ।
उसके बिना तो जीवन का कुछ होने का अर्थ नहीं है।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोइ।

कहते हैं दादू--और जिसने मुझे घायल किया है, वही मेरी दवा है। परमात्मा से कम दवा पर वे राजी नहीं हैं। शास्त्र से उन्हें तृप्ति नहीं होती। सिद्धांत से उन्हें प्यास नहीं बुझती। कितना ही प्रत्यय और धारणाओं का जाल खड़ा कर दिया जाए, उससे कुछ राहत नहीं आती। वे तो कहते हैं, जिन मुझको घायल किया--जिसने मुझे घायल किया है--मेरी दारू सोइ--वही मुझे दवा दे। वही मेरी दवा बने।
परमात्मा से कम पर जो राजी होने को राजी है, वह कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाएगा।
रास्ते में बड़े प्रलोभन हैं। बहुत चीजें रास्ते में आती हैं। पहले तो संसार है खड़ा हुआ। उसमें बड़े प्रलोभन हैं कामवासना के, पद-वासना के, धन-वासना के बड़े प्रलोभन हैं।
किसी तरह उनसे छूटो, सत्य की यात्रा पर चलो, तो भीतर की जगत की शक्तियां प्रकट होनी शुरू होती हैं, चमत्कारपूर्ण शक्तियां हाथ में आनी शुरू हो जाती हैं। तुम कुछ ऐसा कर सकते हो जिससे लोग चमत्कृत हो जाएं। डर है कि कहीं तुम मदारी बन कर समाप्त न हो जाओ।
अगर तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा के लिए ही नहीं है, तो तुम कहीं न कहीं रुक जाओगे; कहीं न कहीं पड़ाव को मंजिल समझ लोगे। रात रुकने के लिए ठीक था, लेकिन सदा वहीं रह जाने के लिए ठीक न था। और आगे जाना है। वहां पहुंचना है जिसके आगे "और आगे" समाप्त हो जाता है। उसके पहले नहीं रुकना है।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोइ।
दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खेंचि कसीस।
लागी चोट सरीर में नख सिख सालै सीस।
न तो उसके हाथ हैं, न उनके हाथों में कमान है, न कमान पर कोई तीर है, -- दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारे खींच कसीस; लेकिन फिर भी उसने ऐसा खींच कर निशाना मारा है। हाथ नहीं, हाथ में कमान नहीं, कमान पर तीर नहीं, फिर भी उसने ऐसा खींच कर निशाना मारा है--"लागी चोट शरीर में नख सिख सालै सीस।" और ऐसी चोट लगी है कि नाखून से लेकर पैर के और सिर तक पीड़ा ही पीड़ा हो गई है।
पूरा हृदय तन, मन, देह सब एक ही ज्वाला से जल रहे हैं।
मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।।
विरह जगावै दरद को दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को पंच पुकारै पीव।
चोट लग जाए उसकी, तो विरह पैदा होता है। विरह पैदा हो जाए तो दर्द पैदा होता है। दर्द पैदा हो जाए तो जीवन में जागरण आने लगता है। जागरण आ जाए तो सुरति सधती है। और सुरति सध जाए तो फिर न केवल आत्मा उसको पुकारती है, पंचतत्व भी, शरीर के पांच तत्व भी उसी की पुकार से भर जाते हैं। तब समग्र तन प्राण उसी को पुकारने लगता है।
विरह जगावै दरद को...
तो पहली बात है, विरह। वहां से सूत्रपात है, वहां से यात्रा का प्रस्थान-बिंदु। जिनको विरह ही नहीं है, उनके लिए तुम लाख समझाओ कि जागो; वे जगेंगे न। उनको तुम लाख समझाओ कि परमात्मा की प्यास से भरो; वे सुनेंगे, लेकिन उनकी समझ में कुछ भी न आएगा कि कैसी प्यास! किसकी प्यास! उनको लगेगा सब बातें हवाई हैं, हवा में हो रही हैं।
दर्द की बात है। और दर्द तो पैदा होता है विरह से।
मिश्र में एक पुरानी कहावत है कि इसके पहले कि तुम परमात्मा को चाहो, परमात्मा तुम्हें चाहता है। अन्यथा विरह कैसे पैदा होगा? विरह तो कोई पैदा नहीं कर सकता। वही पैदा कर सकता है। इसके पहले कि तुम उसकी तरफ जाओ, वह तुम्हें बुलाता है।
और यह ठीक भी है कि पहले वही बुलाए, पहले उसी का निमंत्रण आए; क्योंकि उसी का सब कुछ है। तुम भी उसी के हो। तुम अपने तईं उसको खोज भी कैसे पाओगे, अगर वह मिलने को राजी ही न हो? उसका मिलने के लिए राजी होना पहली घटना है।
जब वह मिलने को राजी होता है तभी तुम्हारे जीवन में विरह उठता है।

और विरह उठ जाए--विरह का अर्थ हैः एक गहरा आकर्षण। सब फीका फीका लगने लगता है। यह दुनिया सपना और माया जैसी लगने लगती है। करते हो, उठते हो, काम-धाम है। सब निपटाना है, कर्तव्य है; पर नाटक हो जाता है। रस खो जाता है। एक तटस्थता बनने लगती है। बाहर की तरफ से एक गहन उदासीनता आ जाती है। ठीक है! हो तो ठीक, न हो तो ठीक। चलते हो, क्योंकि चलना है। लेकिन अब पैरों में कोई पागलपन नहीं रह जाता चलने का। किसी भी क्षण राजी हो इस राह से उतर जाने को। जब मौका मिलेगा तभी उतर जाओगे। संसार एक बड़ा नाटक, एक बड़ा नाटक का मंच हो जाता है। जीवन एक अभिनय हो जाता है। विरह के जगते ही, होते यहां हो, यहां होते नहीं। खड़े होते हो बाजार में, बाजार में नहीं खड़े होते। याद उसकी ही सताए चली जाती है। पुकारता वही रहता है। जहां कहीं हो, सोओ, जागो तो भी उसकी पुकार लगी रहती है।
ऐसा हुआ कि स्वामी राम अमरीका से वापस लौटे। उनके एक मित्र सरदार पूर्णसिंह उनके पास ठहरे। पुराने बचपन के साथी थे। टिहरी गढ़वाल में दूर पहाड़ी में बने एक छोटे से मकान में थे। आस-पास कोई भी न था, मीलों तक सन्नाटा था पहाड़ों का। रात दोनों सोए। पूर्णसिंह को नींद न लगी, क्योंकि कुछ आवाज सुनाई पड़ने लगी। थोड़े हैरान हुए। गौर से सुना तो आवाज समझ आने लगी, राम-राम-राम की कोई धुन लगा रहा है। कौन यहां राम की धुन लगा रहा होगा? उठ कर बाहर आए, बरामदे में चक्कर लगाया, दूर-दूर तक सन्नाटा है। कहीं कोई नहीं दिखाई पड़ता।
और हैरानी हुई कि जितने कमरे से दूर गए उतनी ही आवाज धीमी सुनाई पड़ने लगी। कमरे में वापस आए, आवाज तेजी से सुनाई पड़ने लगी। और राम तो सो रहे हैं। राम के पास गए तो आवाज और और जोर से सुनाई पड़ने लगी। बहुत हैरान हुए। पैर की तरफ कान रखा, हाथ की तरफ कान रखा, सिर की तरफ कान रखा, पूरे तन-प्राण से राम की एक ही आवाज उठ रही है--राम-राम-राम। घबड़ा गए कि यह हो क्या रहा है? यह तो संभव नहीं मालूम होता। जगाया, राम से पूछाः क्या मामला है?
राम ने कहाः होता है; कुछ दिनों से होता है। पहले तो मैं राम की याद करता था, वह सिर में ही गूंजती थी। मेरी वाणी पर ही उतरती थी। कंठ तक रह जाती थी। फिर गहरी उतरी। हृदय तक पहुंची। फिर धीरे-धीरे मुझे कहने की जरूरत ही न रही, वह अपने आप गूंजने लगी। मैं सुनने वाला हो गया। फिर दिन में होती थी, रात नहीं होती थी। फिर धीरे-धीरे रात भी समा गई। अब चौबीस घंटे मेरे बिना किए चल रही है--अहर्निश!
ऐसी स्थिति को संतों ने अजपा जाप कहा है--जब तुम करते नहीं और होता है। ऐसी घड़ी के बाद ही उस परम से मिलन की संभावना बनती है। यह तुम्हारी तैयारी हो रही है। यह तुम्हारा संगीत सध रहा है। तुम लयबद्ध हो रहे हो।
लेकिन ध्यान रखना, वही जगाता है। पहले वही उठाता है। धन्यभागी हैं वे, जिनके जीवन में विरह की बूंद आ गई। उसका मतलब हैः सागर का निमंत्रण आ गया।
धन्यभागी हैं वे, जिनके मन में पीड़ा उठने लगी--अज्ञात की पुकार। धन्यभागी हैं क्योंकि परमात्मा ने उन्हें चुन लिया। तुम तो बाद में ही चुनोगे।
पहले वह तुम्हें चुन लेता है।
विरह जगावै दरद को दरद जगावै जीव।
और फिर जब दर्द से भर जाती है जीवन-धारा, तो तुम जाओगे ही। सुख में तो आदमी सो जाए, दर्द में कैसे सोएगा? सुख सुलाता है। इसलिए भक्तों ने कहा है, सुख मत देना, दुख देना।
जुन्नैद एक सूफी फकीर हुआ। वह रोज परमात्मा से प्रार्थना करता था कि दुख देना जारी रखना; सुख मत देना। एक दिन उसके भक्त ने सुन लिया, वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः इसका राज बताओ। या तो तुम पागल हो, या मैंने गलत सुना। क्या तुमने यही कहा कि सुख मत देना, दुख देना? यह कैसी प्रार्थना! जुन्नैद ने कहाः धीरे-धीरे समझे हम, तबसे यही प्रार्थना करते हैं क्योंकि दुख जगाता है, सुख सुला देता है। सुख तो एक तरह की तंद्रा है। इसीलिए तो लोग सुख में परमात्मा की याद भूल जाते हैं। बस, दुख में ही याद आती है।
विरह जगावै दरद को दरद जगावै जीव--तब जागरण सधने लगता है।
जीव जगावै सुरति को...

और जब जागरण बहुत गहन हो जाता है तो उसी जागरण की गहनता से स्मरण आता
है परमात्मा का; सुरति जगती है।
----पंच पुकारै पीव।
और फिर आत्मा ही नहीं पुकारती, फिर तो शरीर का रोआं-रोआं भी, यह पंच तत्वों से बनी देह भी उसी को पुकारने लगती है। है तो यह भी उसी की। छिपा तो इसमें भी वही है। यह देह भी तो कभी न कभी उस तक पहुंच ही जाएगी। सभी उसकी यात्रा पर हैं। कोई थोड़ा आगे है, कोई थोड़ा पीछे है। तुम थोड़े आगे, तुम्हारी देह थोड़ी पीछे; लेकिन है तो उसी की यात्रा; पहुंचना तो वहीं है। सारा अस्तित्व अंततः तो उसी में लीन होना है, जहां से स्रोत है। वही नियति है अंतिम।
लेकिन दर्द चाहिए, विरह चाहिए। तुम्हारे जीवन में कई बार विरह उठती है, तुम उसे सम्हाल लेते हो। तुम कहते हो, पागल थोड़े ही होना है! रोक लेते हो, थाम लेते हो अपने हृदय को। मौका चूक जाते हो। वह बुलाता है, तुम बहरे हो जाते हो। वह पुकारता है, तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम कहते हो, पागल थोड़े ही होना है!
अब जब दुबारा वह पुकारे, अब जब दुबारा--दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खेंचि कसीस। अब जब वह बिना हाथों के, बिना धनुष के, बिना बाण के खींचे और मारे तीर को और निशाने को, तो लग जाने देना चोट को। पागल होना हो, तो पागल हो जाना। क्योंकि अभी तुम्हारा जो जीवन है, वह पागलपन है। अभी तुमने जिसे प्रकाश समझा है वह अंधकार है और जिसे जीवन समझा है, वह सिर्फ मृत्यु का आवरण है।
ऐसी घटना मैंने सुनी है। अमीर खुसरो एक बहुत अदभुत कवि हुआ। वह साधारण कवि न था, ऋषि था। उसने जाना था, वही गाया है। और खूब गहराई से जाना था। उसके गुरु थे निजामुद्दीन औलिया, एक सूफी फकीर। निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई, तो हजारों भक्त आए। अमीर खुसरो भी गया अपने गुरु को देखने। लाश रखी थी, फूलों से सजी थी। अमीर खुसरो ने देखी लाश, और कहाः
"गौरी सोवत सेज पर मुख पर डारे केश। चले खुसरो घर आपने रैन भई यह देश।" खुसरो ने कहाः "गौरी सोवत सेज पर मुख पर डारे केश।" यह गोरी सो रही है सेज पर। मुख पर केश डाल दिए गए। "चल खुसरो घर आपने"--अब यह वक्त हो गया, अब रोशनी चली गई इस संसार से, अब यहां सिर्फ अंधकार है। "चल खुसरो घर आपने रैन भई यह देश।" यह देश अब अंधेरा हो गया, रात हो गई।
और कहते हैं, यह पद कहते ही खुसरो गिर पड़ा और उसने प्राण छोड़ दिए। बस,
यह आखिरी पद है, जो उसके मुंह से निकला। तुमने जिसे रोशनी जानी है, वह रोशनी नहीं है। खुसरो ने रोशनी देख ली थी निजामुद्दीन औलिया की। उस रोशनी के जाते ही सारा देश अंधकार हो गया--रैन भई इस देश। चल खुसरो घर आपने। अब हम भी अपने घर चलें, अब वक्त--अब यहां कुछ रहने को बचा न।
खुसरो ने निजामुद्दीन औलिया में जीवन का दीया पहली-दफा देखा। जाना कि जीवन क्या है! पहचाना, प्रकाश क्या है! होश में आया कि होना क्या है! उस दीये के बुझते ही उसने कहाः अब हमारे भी घर जाने का वक्त आ गया।
तुम जिसे अभी प्रकाश समझ रहे हो, वह प्रकाश नहीं है। और तुम जिसे अभी
जल समझ रहे हो, वह जल नहीं है। और जिससे तुम अभी प्यास बुझाने की कोशिश कर रहे हो, उससे प्यास बुझेगी नहीं, बढ़े भला!
एक ही बात का ख्याल रखो और प्रतीक्षा करो कि उसका तीर तुम्हारे हृदय में बिंध जाए। और तुम्हारे नख से लेकर सिर तक विरह की पीड़ा में तुम जल उठो। एक ही प्रार्थना हो तुम्हारी अभी, कि तेरा विरह चाहिए। तेरा निमंत्रण चाहिए। तू बुला। तेरी पुकार चाहिए। एक ही प्रार्थना और एक ही भाव रह जाए कि उससे मिले बिना कोई सुख, कोई आनंद संभव नहीं है।
तो फिर देर न लगेगी बिना हाथों के, बिना प्रत्यंचा और तीर के--उसका तीर सदा ही तैयार है। सदा सधा है, तुम इधर हृदय खोलो, उधर से तीर चल पड़ता है। तुम इधर राजी होओ, उसकी पुकार आ जाती है। कहना मुश्किल है कि उसकी पुकार पहले आती है कि तुम पहले राजी होते हो।
यह वैसा ही है, जैसे मुर्गी-अंडे का संबंध है। कौन पहले? मुर्गी या अंडा? बहुत मुश्किल है भक्त पहले कि भगवान पहले? बहुत मुश्किल है। पर तुम

इतना तो करो ही कि अपने हृदय को खोल दो। तुम राजी रहो। वह जब तुम्हें पुकारे तो तुम चल पड़ने को राजी रहो, पागल होने को राजी रहो। उस राजीपन में ही तुम्हारे जीवन में रूपांतरण होगा, महाक्रांति होगी।
ध्यान पर मेरा सारा जोर सिर्फ इसलिए है कि तुम्हारा हृदय अवरुद्ध न रहे, खुल लाए। दीवाल हट जाए, तो जब वह तुम्हें पुकारे, तुम सुन लो। जब उसका हाथ बढ़े, तो तुम अपने हाथ को बढ़ा कर उसके हाथ को पकड़ लो। जब वह तुम्हें अनंत की यात्रा पर ले चले, तो तुम चल पड़ने को राजी हो जाओ।
मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।।
ऐसी चातक जैसी पुकार तुम्हारे हृदय में भी भरे। तुम भी जलो उस विरह की अग्नि से। इसे ही तुम सौभाग्य समझना। अभी तुम्हारी जो सुख-सुविधा की जिंदगी है, वह झूठ है। वह सिर्फ एक मीठा सपना है, जो कभी भी टूट जाएगा। जितने जल्दी तुम जाग जाओ, उतना अच्छा। ऐसे ही बहुत समय जा चुका है। और
अब जब उसकी रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़े तो मत कहना कि आकाश में बादल का गर्जन है। अब जब आकाश में बादलों का गर्जन सुनाई पड़े तो सुनना कि उसका रथ आ रहा है। और जब तुम्हारे द्वार पर थपथपाहट हो उसकी, तो मत कहना कि हवा ने धक्का दिया है। अब तो जब हवा धक्का दे द्वार पर, तो उसके हाथों को पहचानने की कोशिश करना। हवा में उसी के हाथ हैं। आकाश में उसी की गड़गड़ाहट है, फूलों में उसी की गंध है। चारों तरफ उसी की चर्चा है। तुम नाहक ही बहरे बने बैठे हो।
जगाओ प्यास को। प्यास ही प्रार्थना बनती है। और प्यास की पूर्णता ही फिर परमात्मा बन जाती है।
पिव पिव लागी प्यास!

आज इतना ही।

पिव पिव लागी प्यास
दसवां प्रवचन

जिज्ञासा-पूर्तिः पांच

पहला प्रश्नः दादू और कबीर जिस गुरु-महिमा की चर्चा करते हैं, उसे हम आपमें पा लिए हैं। किंतु जब लोग आपके विषय में आपकी तत्व-चिंतना के विषय में पूछते हैं, तो हम अपने को असमर्थ पाते हैं। और तत्व-चिंतना के विषय में बोलते हुए निरंतर डर लगता है कि कहीं तार्किक या पंडित न हो जाएं। कृपया निर्देश दें कि हम लोगों से क्या कहें?

पहली बातः जिस व्यक्ति को तुम प्रेम करते हो उसके संबंध में कुछ भी न
कह सकोगे। प्रेम के संबंध में वाणी सदा असमर्थ है। प्रेम नहीं कर सकते हो, नहीं करते हो, तब बोलना सदा आसान है। तब तुम कुछ कह सकते हो--पक्ष में, विपक्ष में; समर्थन में, विरोध में। लेकिन प्रेमी तो गूंगा हो जाता है--"गूंगे केरी सरकरा।" स्वाद तो उसे मिलता है लेकिन कह नहीं पाता। और जितना गहन प्रेम होगा उतना ही मुश्किल हो जाता है। क्योंकि तब जो भी वह कहता है, पाता है, वह थोड़ा है। उससे उसके प्रेमी के संबंध में कुछ ठीक-ठीक पता नहीं चला, तो उसे अपराध की प्रतीति होती है। तब वह सोचता है, बेहतर होता चुप ही रह जाते। कम से कम अधूरा तो न कहा होता।
तो यदि तुम मेरे प्रेम में हो, तब तो असमर्थ पाओगे ही। कोई उपाय नहीं है। तुम कुछ कह न सकोगे। पर कहने की कोई जरूरत भी नहीं है।
तुम्हारा होना ही तुम्हारा कहना होना चाहिए। तुम्हारे जीवन की सुगंध
ही तुम्हारा वक्तव्य होना चाहिए। अगर तुम्हारे होने में कुछ रूपांतरण हुआ है तो वही मेरी संबंध में खबर होगी। अगर नहीं हुआ है तो कह कर भी क्या करोगे? कहने से भी क्या होगा? अगर तुम्हारा आनंद स्वयं प्रमाण नहीं है, और तुम्हारी शांति की स्वयं कोई क्षमता नहीं है, और तुम्हारा ध्यान किसी तरह के संगीत को पैदा नहीं किया है तो तुम कह कर भी क्या करोगे? कहोगे भी क्या? तुम जो कहोगे उसे ही तुम्हारा होना गलत सिद्ध कर देगा।
कहने की कोई जरूरत नहीं है, होने की जरूरत है। और यहां तुम मेरे पास कहना सीखने को नहीं हो, होना सीखने को हो। जब भी ऐसी घड़ी आए कि तुम्हें लगे कुछ कहना है, तब एक ही स्मरण करना कि अपने होने से ही कहना। तुम्हारा मौन भी तब सार्थक हो जाएगा। तब तुम चुप भी रहोगे, तो तुम्हारी चुप्पी भी कुछ कहेगी। और वह गुफ्तगू ज्यादा गहरी है। कोई चिल्ला कर थोड़े ही कहने की बात है। प्रेम कोई बाजार तो नहीं है। प्रेम का कोई विज्ञापन थोड़े ही होता है। प्रेम को प्रमाणित करने के लिए कोई भी तो तर्क संसार में नहीं है।
तुम अगर एक स्त्री के प्रेम पड़ गए, या एक पुरुष के प्रेम में पड़ गए, तो क्या तुम दुनिया को समझा पाओगे, जो तुम्हारे प्रेम की प्रतीति है? कोई भी नहीं समझा पाया है; न मजनू समझा पाता है, न फरिहाद समझा पाता है, न रांझा समझा पाता है। कोई भी नहीं समझा पाता। प्रेमी सदा असमर्थ रहा है। क्योंकि प्रेम शब्द से बड़ा है।
और जब संसार का ही साधारण प्रेम शब्द में नहीं समाता, तो शिष्य का जो प्रेम गुरु के प्रति पैदा होता है, उसके समाने का तो कोई भी उपाय नहीं है। वह तो सुगंध और लोक की है। वह तो रोशनी ही किसी और लोक की है। इस संसार के किसी भी दीये में तुम उसे समा न सकोगे। समाने की कोशिश में तुम हमेशा हारोगे।
और अच्छा है कि तुम हारते हो; उससे ज्योति का बड़ा होना सिद्ध होता है।
जो लोग अपने गुरु के संबंध में कुछ कहने में समर्थ हैं, वे शिष्य बड़े हैं, गुरु छोटा है। जो अपने गुरु के संबंध में कहने में सिर्फ असमर्थ पाते हैं, उनका गुरु बड़ा है। उन्हें कठिनाई होती है।
शब्द तो एकआयामी है, प्रेम बहुआयामी है। शब्द तो ऐसा है, जैसे घर का आंगन; और प्रेम ऐसा है, जैसे मुक्त आकाश। माना कि घर के आंगन में भी आकाश ही है, लेकिन बड़ी सीमा में बंधा है। और जिसने मुक्त आकाश जाना है वह इस सीमा की तरफ इशारा न करेगा।

तो तुम अपने होने से ही खबर देना। अगर कोई मेरे संबंध में तुमसे पूछे,
तो या तो मौन रहना--लेकिन वह मौन तुम्हारा मुखर हो। वह मौन उदासी का न हो। वह मौन निषेधात्मक न हो। वह मौन न बोलने जैसा न हो। वह मौन इतना गर्भित हो, वह चुप्पी इतनी गहरी हो कि बोले। वह सन्नाटा इतना परिपूर्ण हो कि इस सन्नाटे की चोट हो, आवाज हो। तुम चुप रह जाना। तुम आंख बंद कर लेना। तुम गीत गा सकते हो, तुम नाच सकते हो, लेकिन तुम कुछ होने से कहना।
और शब्द की झंझट में तुम पड़ना मत, क्योंकि सभी शब्द खंडित किए जा सकते हैं। तर्क में तुम पड़ना मत क्योंकि तर्क तो दुधारी तलवार है। जिस तर्क से तुम सिद्ध करते हो, उसी तर्क से असिद्ध किया जा सकता है। तर्क का कोई भी मूल्य नहीं है। तर्क देकर तो तुम झंझट में पड़ोगे। तर्क देने का मतलब ही हुआ कि तुमने दूसरे को मौका दिया कि वह तुम्हें खंडित कर सकता है। जिन्होंने ईश्वर के लिए प्रमाण दिए हैं, वे ईश्वर के जानने वाले लोग नहीं हैं। जो ईश्वर के संबंध में चुप रह गए हैं उन्होंने ही एकमात्र प्रमाण दिया है कि वह है। क्योंकि जिन्होंने भी तर्क दिए हैं ईश्वर के होने के लिए, वे सभी तर्क नास्तिकों के हाथ में सहारा बने हैं। जितने तर्क दिए गए हैं सभी खंडित कर दिए गए हैं। नास्तिक से आस्तिक जीत नहीं पाता। अगर तर्क देता है तो निश्चित हार जाता है। क्योंकि तुम अतर्क को समाने की कोशिश करते हो तर्क में। वहीं तुमने भूल कर दी।
तुम कहते हो, असीम है परमात्मा; और फिर आंगन की तरफ बताते हो। तुम हारोगे। क्योंकि वह नास्तिक तुम्हें दीवार बता देगा कि यह कैसा असीम है तुम्हारा परमात्मा! दीवार से घिरा है। तुमने तर्क दिया कि तुम नास्तिक के हाथ में पड़े। इसलिए परम ज्ञानियों ने परमात्मा के लिए तर्क नहीं दिया है। एक ईसाई फकीर हुआ, तर्तूलियन उसका नाम है; वह बेजोड़ है। उससे किसी ने पूछा कि तुम ईश्वर को क्यों मानते हो? उसने कहाः बिकाज ही कैन नॉट बी प्रूव्ड, क्योंकि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। उसने लिखा हैः आई बिलीव इन गॉड बिकाज ही इ.ज एब्सर्ड, मेरा परमात्मा में भरोसा है क्योंकि वह तर्कातीत है। यह भरोसा किसी अनुभव से आ रहा है। यह भरोसा किसी तर्क की निष्पत्ति नहीं है।
यूनान में महापंडित हुआ, प्लेटो। उसने अपने स्कूल के दरवाजे पर एक वचन लिख छोड़ा था। वचन था कि जो लोग तर्क नहीं जानते, गणित नहीं जानते हैं, वे कृपा करके यहां प्रवेश की कोशिश न करें।
अगर मुझे लिखना पड़े अपने द्वार पर कुछ, तो मैं लिखूंगा, "जो लोग गणित जानते हैं, तर्क जानते हैं, वे कृपया यहां आने की कोशिश न करें।" यह द्वार उनके लिए नहीं है। यहां तो दीवानों की जमात है। यहां तो जो पागल हैं, उनका जलसा है। जो तर्क से ऊब गए हैं और तर्क को देख लिया; जी लिया और व्यर्थ पाया है, उनके लिए निमंत्रण है। यह बुलावा हृदय के लिए है, मस्तिष्क के लिए नहीं।
कैसे तुम कह पाओगे हृदय की बातें मस्तिष्क से? यह तो ऐसे ही होगा जैसे सोने को कसने का पत्थर होता है, उस पर कोई फूल को कसने लगे। तो फूल तो सदा ही गलत सिद्ध होगा, क्योंकि फूल कोई सोना थोड़ी है। तुम मस्तिष्क से ही तो कह सकोगे। हृदय की बात जब भी मस्तिष्क से कहोगे, फूल मस्तिष्क तक आते आते कुम्हला जाता है, जल जाता है।
तो जहां दो प्रेमी मिलें, वहां तुम चाहे मेरी चर्चा कर लेना, लेकिन जहां तर्क की संभावना हो, वहां तुम चुप रह जाना। प्रेम की चर्चा प्रेमियों के बीच हो सकती है। जहां दो प्रेमी मिल बैठते हैं जहां दो मतवाले मिल बैठते हैं, वहां फिर वे अपनी चर्चा कर सकते हैं, क्योंकि उनकी चर्चा कोई तर्क नहीं है। वह एक तरह का गुणगान है, वह एक तरह का गीत है। वे दोनों उसमें सम्मिलित हैं। वे अकेले अकेले नहीं गा रहे हैं, इकट्ठे गा रहे हैं। वह एक कोरस है।
और मेरा कोई तत्व-चिंतन है नहीं। मेरी कोई फिलासफी नहीं है। इसलिए तुम मुश्किल में पड़ोगे ही। अगर मेरी कोई सुनिश्चित तर्क-व्यवस्था होती, तो तुम कुछ कह भी सकते थे। अगर तुम्हें महावीर के संबंध में कुछ कहना है, तो तुम निश्चित कह सकते हो। भला महावीर के संबंध में न कह सको, लेकिन

महावीर के विचार के संबंध में कह सकते हो। वह साफ-सुथरा है। महावीर का विचार राजपथ जैसा है। उस पर मील के पत्थर लगे हैं, नक्शा साफ है; भूल-चूक का उपाय नहीं है। गणित की पूरी व्यवस्था से बात कही गई है।
अगर तुम्हें जीसस के संबंध में कुछ कहना हो तो जीसस के संबंध में कहना मुश्किल हो, लेकिन जीसस के वचन सीधे-साफ हैं। पतंजलि तो बिल्कुल गणित जैसे हैं।
मेरे संबंध में अड़चन आएगी क्योंकि मैं कोई सीधे साफ-सुथरे राजमार्ग
पर नहीं चल रहा हूं। यह रास्ता ऊबड़-खाबड़ है। यह रास्ता ही नहीं है; चलते हैं, उतना ही बनता है। पहले से तैयार नहीं है। यह तो बीहड़ जंगल में प्रवेश है। यह तो अनछुई जमीन में जाना है। यह तो कुंआरे लोक में प्रवेश है। इसलिए अड़चन है।
मैं रोज बदल जाता हूं। तो मेरे तत्व-चिंतन के संबंध में कहोगे कैसे? तुम जो भी कहोगे वह बासा मालूम पड़ेगा। जब तुम लौट कर मेरे पास आओगे, मैं जा चुका हूं। गंगा रोज बही जाती है। तुम जहां उसे कल छोड़ गए थे, वहीं तुम उसे आज न पाओगे।
हेराक्लतु ठीक कहता है, एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। मुझमें
भी तुम दुबारा नहीं मिल सकते। मुझसे तुम दुबारा नहीं उतर सकते। कल भी तुम आए थे, तब रंग और था, तब सुबह ही और थी। आज भी तुम आए हो, आज रंग और है। इसलिए तुम गणित न बिठा सकोगे। मैं रोज बदलता जाऊंगा। तुम कैसे पक्का कर पाओगे कि जो तुम कह रहे हो मैं उससे अब भी राजी हूं? नहीं, मुश्किल पड़ेगी।
और फिर, मैं बुद्ध पर बोलता, पतंजलि पर बोलता, लाओत्सु पर बोलता, महावीर पर, मोहम्मद पर बोलता, जीसस पर। इस जगत में जिन्होंने भी जाना है उन सबके संबंध में बोलता हूं। उन सबकी विचार धाराएं बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। भिन्न-भिन्न ही नहीं, बड़ी विपरीत हैं। तो मेरे भीतर तो तुम बड़ी असंगतियां पाओगे, बड़े विरोधाभास पाओगे। तुम मुझमें एक ही बात संगत पा सकते हो और वह मेरी असंगति। उसमें मैं कभी नहीं चूकता। उस मामले में तुम हमेशा राजी रह सकते हो कि यह आदमी असंगत है। खुद कहता है, खुद गलत सिद्ध कर देता है। करना ही पड़ेगा मुझे। क्योंकि जब मैं पतंजलि पर बोल रहा हूं, तो कैसे महावीर को सही कह पाऊंगा? और जब महावीर पर बोल रहा हूं, तो कैसे बुद्ध को सही कह पाऊंगा? और जब बुद्ध पर बोलूंगा तो कैसे महावीर को सही कह पाऊंगा? और वे सब सही हैं।
सत्य सभी वक्तव्यों से बड़ा है। सत्य के संबंध में जो भी कहा गया है सत्य उस सबसे बड़ा है। मैं तुम्हें सत्य के बहुत पहलू दिखला रहा हूं। और मेरा कोई चुनाव नहीं है। मेरा कोई पक्षपात नहीं है। इसलिए जिस पहलू को मैं दिखलाता हूं, मैं तुम्हें पूरे हृदय से दिखलाता हूं। उस क्षण मैं चाहता हूं कि तुम और सब पहलू भूल जाओ, ताकि इस पहलू को तुम पूरा जी लो और पूरा जान लो। इस पहलू से पूरे परिचित हो जाओ। उस क्षण वही पहलू तुम्हें मैं पूरे सत्य की तरह प्रकट करता हूं। लेकिन वह भी एक पहलू है। और जब तुम मेरी सारी चर्चाओं को सुन लोगे, समझ लोगे, तो तुम अड़चन में पड़ जाओगे कि क्या मानना? इसमें से क्या चुनना? अगर तुम समझदार हो, तो तुम चुनोगे नहीं। अगर तुम समझदार हो, तो तुम समझ लोगे कि इस सबके पार हो जाना है। ये सभी दृष्टियां हैं। और दर्शन दृष्टियों के पार है। ये सभी देखने के ढंग हैं। जो देखा गया है, वह किसी ढंग से बंधा नहीं है।
सुबह ही सुबह एक आदमी--दुकानदार--बगीचे में आ जाता है। वह फूलों को देखता है--उन्हीं फूलों को, जिनको दूसरे देखते हैं। लेकिन वह तत्काल सोचता है कि इतने गुलाब अगर बेचे जा सकें, तो कितने पैसे मिलेंगे! गुलाब तत्क्षण रुपयों में बदल जाता है। गुलाब नहीं लगते पौधों पर, रुपये लग जाते हैं। वह रुपये गिनने लगता है।
मैं जबलपुर वर्षों रहा, तो मैंने बगीचे में बहुत फूल लगा रखे थे। जिनका बंगला था वे व्यवसायी थे। कभी-कभी आते थे, तो वे मुझसे कहते, ये फूल देखो, झाड़ों पर कुम्हलाए जा रहे हैं, झाड़ों पर ही सूख जाते हैं। इनको अगर तोड़ कर बिकवा दो, तो हजारों रुपये साल की आमदनी हो सकती है।

मगर मैं उनसे कहता कि फूलों को बेचने की हिम्मत मेरी नहीं होती बेचना
हो, तो दुनिया में और बहुत चीजें हैं। कम से कम फूल को तो छोड़ो, बेचने के लिए काफी हैं चीजें। एक फूल को छोड़ दो बाजार के बाहर।
लेकिन उनकी समझ में न आती बात। वे कहते, लाखों रुपये ऐसे ही गंवा जाएंगे। ये सब फूल तोड़ कर बिकवा देने चाहिए। आखिर ये कुम्हला तो जाते ही हैं। सांझ को गिर ही जाते हैं। जब गिर ही जाना है तो सुबह बेच ही लेना चाहिए। कम से कम रुपया तो हाथ में रहेगा।
दुकानदार बगीचे में भी आता है तो दुकान के बाहर नहीं जा सकता। उसकी अपनी दृष्टि है।
फिर एक कवि आता है बगीचे में, तो उसे फूलों में रुपये दिखाई नहीं पड़ते। वह फूलों में कभी अपनी प्रेयसी की आंखें देख लेता है, कभी प्रेयसी की कोमल त्वचा देख लेता है। वह प्रेयसी के गीत गाने लगता है फूलों को देख कर।
और फिर एक संत अगर फूलों के बगीचे में आ जाए तो उसे हर फूल में परमात्मा के हस्ताक्षर दिखाई पड़ते हैं।
और वे सभी सही हैं। दुकानदार भी बिल्कुल गलत तो नहीं है। उसकी बात में
भी इतनी सच्चाई तो है ही। फूल के संबंध में वे सभी दृष्टियां हैं।
एक वैज्ञानिक आ जाए, वनस्पतिशास्त्री हो, तो वह फूल में न तो सौंदर्य देखेगा, न प्रेयसी देखेगा, न परमात्मा देखेगा, न रुपये देखेगा। उसे फूल में तत्क्षण दिखाई पड़ेंगे--रस, द्रव्य, खनिज, किन-किन से मिल कर बना है। वह फूल को तोड़ कर ले जाना चाहेगा प्रयोगशाला में। जांचना चाहेगा, तोड़ना चाहेगा कि ये फूल किन-किन रसों से बना है, किन द्रव्यों से बना है। वह भी गलत नहीं है।
अगर ठीक से तुम देखो, तो इस संसार में कोई भी गलत नहीं है। और कोई भी पूरा सही नहीं है। सभी थोड़े-थोड़े सही हैं। और जिसने भी जिद की कि मेरा थोड़ा सा सच पूरा सच है, बस वही भ्रांत है। जिसने यह जान लिया कि मेरा थोड़ा सा सच थोड़ा सच है, उसने यह भी जान लिया कि मेरे से विपरीत जो है, उसके लिए भी सत्य में जगह है। मैं भी समा जाऊंगा, विपरीत भी समा जाएगा। सत्य में सभी विरोधाभास समा जाते हैं। सत्य विराट है।
जिस दिन तुम मेरी सारी बातें सुनते जाओगे, तो मेरी चेष्टा ही यही है
कि तुम किसी दृष्टि से न जकड़ जाओ। इसके पहले कि तुम जकड़ने लगते हो, मैं दूसरी दृष्टि की चर्चा शुरू कर देता हूं। अगर तुम मेरे आयोजन का अर्थ समझो, तो इतना ही है कि मैं तुम्हें सभी दृष्टियों से मुक्त कर देना चाहता हूं। मेरा कोई तत्व-दर्शन नहीं है। मैं तुम्हें तत्व-दर्शनों से मुक्त कर रहा हूं।
और एक दिन जिस दिन तुम्हें समझ आएगी, तुम हंसोगे। उस दिन तुम कहोगे, सभी ठीक है। और कोई भी ठीक नहीं है। उस दिन तुम कहोगे कि किसी को गलत कहने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन किसी को सही होने का दावा करने का भी कोई कारण नहीं है। उस दिन तुम शब्दों के पार उठोगे और शब्दातीत सत्य को समझ पाओगे। तत्वदर्शन मेरा कोई भी नहीं है। मैं सत्य का सीधा साक्षात चाहता हूं। तुम सीधे सत्य के आमने-सामने खड़े हो जाओ। तुम्हारी आंख पर कोई भी पर्दा न रहे, कोई भी धुआं न रहे। किसी विचारधारा का, किसी संप्रदाय का, किसी शास्त्र का तुम्हारी आंख पर कोई भी धुआं न हो, कोई भी रंग न हो। तुम्हारी आंख नग्न हो, शुद्ध हो, स्वच्छ हो, कुंआरी हो। बस, इतनी मेरी चेष्टा है। तुम्हारी आंख के सारे जाले कट जाएं। किसी की आंख पर जैन का जाला है, किसी की आंख पर बौद्ध का जाला है, किसी की आंख पर हिंदू का जाला है, वे सब जाले कट जाएं। तुम्हारी आंख निर्मल हो जाए।
मैं तुम्हें दर्शनशास्त्र नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें देखने की क्षमता दे रहा हूं। मैं तुम्हें कोई चश्मा नहीं दे रहा, मैं तुम्हारी आंख को स्वस्थ करने की चेष्टा कर रहा हूं। इसलिए तुम मेरे दर्शनशास्त्र के संबंध में किसी से कुछ भी न कह पाओगे। कोई जरूरत भी नहीं है। व्यर्थ की बातों में पड़ने का कोई प्रयोजन भी नहीं हूं।

तुम तो हंसना। मैं चाहूंगा कि जिन्हें मुझसे प्रेम है वे उनकी हंसी
से जाने जाएं। तुम मुस्कुराना, तुम नाचना, तुम गीत गाना। मैं चाहता हूं कि जो मुझसे जुड़े हैं, वे उनके गीत और उनके नृत्य से पहचाने जाएं। मैं चाहता ही यह हूं कि जो मुझसे जुड़े हैं, वे पागलों की तरह जाने जाएं, समझदारों की तरह नहीं। क्योंकि समझदारों ने दुनिया को इतनी नासमझी में डाल दिया है कि अब उनकी और कोई भी जरूरत नहीं है।
शास्त्र काफी हो गए, अब तुम उनकी होली मना लो। शब्दों का बोझ काफी है, तुम उसे पटको और भाग खड़े होओ और लौट कर मत देखना।
और इसकी बिल्कुल फिकर न करना कि दूसरे क्या सोचते हैं। जिसने यह फिकर
की कि दूसरे क्या सोचते हैं, वह कभी आनंदमग्न न हो पाएगा। वह दूसरों से डरा ही रहेगा। और दूसरों का डर इस जगत में बड़े से बड़ा डर है। मृत्यु के बाद वही सबसे बड़ा डर है। दूसरों का डर--कोई क्या कहेगा!
हम यहां किसी की अपेक्षाएं पूरा करने को नहीं है। कोई भी किसी की अपेक्षाएं पूरा करने को नहीं है। दूसरों का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हो। अगर परमात्मा तुम्हें किसी दिन मिलेगा तो वह यह न पूछेगा कि दूसरे तुम्हारे संबंध में क्या सोचते हैं? वह तुमसे पूछेगा कि तुम अपने संबंध में क्या सोचते हो?
एक यहूदी फकीर मर रहा था, उसका नाम था, झुसिया। मरते वक्त लोग इकट्ठे
हो गए थे। गांव का जो पंडित था, जो रबी था, वह भी आ गया था। उस रबी ने झुसिया को कहाः झुसिया, मो.जे.ज के साथ अपनी सुलह कर ली? मो.जे.जे--यहूदियों का पैगंबर, तीर्थंकर--उसके साथ सुलह कर ली?
झुसिया ने आंखें खोलीं और उसने कहा कि परमात्मा मुझसे यह न पूछेगा कि झुसिया, तू मो.जे.ज क्यों न हुआ? वह मुझसे यही पूछेगा कि ऐ झुसिया! तू झुसिया हो सका कि नहीं? मो.जे.ज से मेरा क्या लेना-देना! मोजे.ज का होना मो.जे.ज और परमात्मा के बीच; मेरा होना मेरे और परमात्मा के बीच। मैं मो.जे.ज के प्रति उत्तरदायी नहीं हूं। परमात्मा मेरी तरफ देखेगा और पूछेगा, झुसिया तू, झुसिया हो सका या नहीं?
यहां प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होने को है। तुम स्वयं होने का फिकर करो। दूसरे क्या सोचते हैं, इसकी चिंता छोड़ो। अगर तुमने उनकी चिंता रखी तो वे तुम्हें कभी मुक्त न होने देंगे। इस जगत में सबसे बड़ी गुलामी है, वह है, दूसरों के विचारों की गुलामी--कौन क्या सोचता है! और कई बार ऐसा होता है जिनसे तुम डरे हो, वे तुमसे डरे हैं।
बहुत अदभुत दुनिया है। तुम अपने पड़ोसियों से डरे हो, तुम्हारे पड़ोसी तुमसे डरे हैं। क्योंकि तुम उनके पड़ोसी हो। वे तुमसे भयभीत हैं कि ये क्या सोचेंगे। तुम उनसे भयभीत हो कि वे क्या सोचेंगे।
दूसरे के भय के कारण मत जीना। अपने आनंद से जीना। और तुम पाओगे कि आनंद इस जगत में इतनी अनूठी घटना है कि आज नहीं कल पड़ोसी उससे राजी हो जाते हैं। निश्चित ही पहले वे विरोध करेंगे। क्योंकि कोई भी यह मान नहीं सकता कि उसके पहले तुम कैसे आनंदित हो गए? कोई भी तुम्हें प्रतियोगिता में इतने आगे स्वीकार नहीं कर सकता।
फिर वे तुम्हारी उपेक्षा करेंगे। अगर तुम्हारे विरोध से तुम्हारे आनंद को खंडित न कर पाए तो फिर वे तुम्हारी उपेक्षा करेंगे कि होगा। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, टालो। अगर तुम उनकी उपेक्षा से भी न मरे और उनकी उपेक्षा के पार भी जीते रहे, तो एक दिन वे ही तुम्हारी पूजा करेंगे।
तीन ढंग अख्तियार करते हैं पड़ोसी। पहले विरोध, फिर उपेक्षा, फिर पूजा। या तो वे पहले ही हमले में तुम्हें मिटा देते हैं, जब विरोध करते हैं। अगर उसमें न मिटा पाएं, तो दूसरे हमले में मिटा देते हैं। क्योंकि विरोध से भी ज्यादा जहरीली बात उपेक्षा है। विरोध भी नहीं मारता है इतना, क्योंकि विरोधी भी तो कम से कम रस तो लेता है। स्वीकार तो करता है कि कुछ हुआ है तुम्हें। कुछ गड़बड़ी हो गई है माना, लेकिन कुछ हुआ है। कुछ गलत रास्ते पर चले गए, लेकिन कहीं गए हो। तुम पर ध्यान तो देता है। लेकिन उपेक्षा वाला ध्यान भी नहीं देता। वह ऐसे गुजर जाना चाहता है जैसे तुम हो

ही नहीं; जैसे तुम्हारे जीवन में कोई घटना ही नहीं घटी। अगर तुम उपेक्षा से भी बच गए, तो यही व्यक्ति तुम्हारी पूजा करेंगे।
यह सदा की कथा है। यही बुद्ध के साथ होता है, यही महावीर के साथ होता है, यही कबीर के साथ होता है, यही दादू के साथ होता है।

दूसरा प्रश्नः जीवन प्रति-पल बीत रहा है, ऐसा लगता है। सदगुरु भी मिल गए, फिर भी अगला कदम अस्पष्ट क्यों है?

अगला कदम है ही नहीं। अगले कदम की सोच क्यों रहे हो?
अगले कदम की सोचने का अर्थ है कि यह कदम आनंदपूर्ण नहीं है, अगला चाहिए। यह क्षण काफी नहीं है, अगला चाहिए। आज पर्याप्त नहीं है, कल चाहिए। वर्तमान में कहीं पीड़ा है, भविष्य चाहिए।
अगला कदम दुखी आदमी के मन की चिंतना है। सुखी आदमी के लिए यही कदम आखिरी कदम है। सुखी आदमी के लिए मार्ग ही मंजिल है। अगर तुम प्रसन्न हो मेरे साथ, बात बंद कर दो अगले कदम की। अगला कदम होता ही नहीं। अगला कदम तो रुग्ण चित्त की दशा से पैदा होता है। जब तुम आज सुखी नहीं हो, तब तुम कल का विचार करते हो। आज के दुख को भुलाने के लिए कल का विचार करते हो, कल की आशा बांधते हो, कल का सपना संजोते हो, कल में तल्लीन हो जाते हो, ताकि आज का दुख भूल जाए।
ऐसे ही तो तुमने जन्म-जन्म गंवाए हैं अगले कदम के पीछे। अब तुम कृपा करो। अब तुम अगले कदम की बात मत उठाओ। यह कदम काफी नहीं है? यह क्षण पर्याप्त नहीं है? कमी क्या है? इस क्षण क्या है कमी? सब पूरा है। बस, इस क्षण की मौज में उतर जाने की जरूरत है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, एक ही कदम है। और वह यही कदम है। दूसरा कोई कदम नहीं है। दूसरे की बात ही मन का जाल है।
मन या तो सोचता है अतीत की, जो जा चुका; या सोचता है भविष्य की, जो आया नहीं। मन कभी यहां और अभी नहीं होता। और यही अस्तित्व है--अभी और यहां। जो बीत गया, वह जा चुका। जो आया नहीं, आया नहीं। यह छोटा सा संधि का क्षण है, संध्या का काल है, जहां अतीत और वर्तमान मिलते हैं, जहां वर्तमान और भविष्य मिलते हैं। इस बीच के मिलन-बिंदु पर ही अस्तित्व है। यहीं से तुम अगर डूब सको, तो डूब जाओ। द्वार खुला है परमात्मा का। लेकिन अगर तुमने भविष्य की बात की, तुम चूक गए। फिर चूक गए।
तुम कहते होः "जीवन पल-पल बीत रहा है।"
नहीं; तुमने सुन लिया होगा किसी को कहते हुए। अगर सच में तुम्हें ही
लग गया है कि जीवन पल-पल बीत रहा है, तुम फिर पलों का उपयोग करना शुरू कर दोगे। तुम फिर इस पल को पूरा का पूरा आत्मसात कर लेना चाहोगे। तुम इस पल को इस तरह निचोड़ लेना चाहोगे, इस तरह जी लेना चाहोगे, जैसे कोई आम को चूस लेता है, फिर गुठली को फेंक देता है। फिर तुम फिकर करते हो गुठली की, कहां गई? अतीत की तुम्हें याद आती है, क्योंकि तुम आम ठीक से चूस नहीं पाए। गुठली में रस लगा रह गया। अन्यथा कोई याद करता अतीत की! कल जा चुका है। अगर तुमने जी लिया था तो बात खत्म हो गई। लेकिन वह तुमने जीआ नहीं। जब वह चल रहा था, तब तुम आज की सोच रहे थे। और जब आज आ गया, तो वह जो कल बीत गया, जो अब हाथ में नहीं है, जिसके संबंध में अब कुछ भी नहीं किया जा सकता, अब तुम उसकी सोच रहे हो। तुम्हारी मूढ़ता की कोई सीमा है!
संसार में दो ही चीजें अनंत हैं, एक परमात्मा और एक मूढ़ता। उनका कोई अंत नहीं आता मालूम पड़ता। जो भूल तुमने कल की थी, वही तुम आज कर रहे हो। फिर कल जब "आज" आ जाएगा, जब आने वाला कल आज बन जाएगा तब तुम फिर पछताओगे। क्योंकि फिर गुठली में रस लगा रह गया। ऐसे कब तक चूकते चले जाओगे आज ही है, जो कुछ है।
जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, एक जंगल के मार्ग से गुजरते हुए कि देखो लिली के फूलों को। ये कल की चिंता नहीं करते। इनका सौंदर्य कैसा अपरंपार है! सोलोमन सम्राट भी अपनी महामहिम अवस्था में इतना सुंदर न था।

तुम भी कल की चिंता मत करो। कल कल की फिकर कर लेगा। तुम लिली के फूलों
की भांति इसी क्षण जी लो। और मैं तुमसे कहता हूं, जीने के लिए और कोई योग्यता नहीं चाहिए। सिर्फ इतनी ही योग्यता चाहिए; कि तुम इसी क्षण में डूबने की क्षमता जुटा लो, बस! यही ध्यान है, यही पूजा है। इसी को दादू कहते हैं--"सुख-सुरति सहजै सहजै आव।" इस क्षण में ही डूब जाना सहज स्मरण है। अगर तुम इस क्षण में ठीक से डूब जाओ, तो तुम इतने सिक्त हो जाओगे आनंद
से कि परमात्मा के लिए धन्यवाद का स्वर अपने आप उठने लगेगा। वही प्रार्थना है। प्रार्थना के लिए कोई मंदिर की जरूरत थोड़ी है। उसके लिए क्षण में प्रवेश पाने की जरूरत है। उसके भीतर समय की धारा में डुबकी लगाने की जरूरत है। वहीं से उठता है अहोभाव और तब तुम्हारे सारे जीवन के दिग-दिगंत को घेर लेता है।
नहीं, तुम यह पूछो ही मत कि अगला कदम क्या है? अगला कदम है ही नहीं। एक
ही कदम है। अभी उठाओ यही कदम कल भी उठाओगे, यही कदम परसों भी उठाओगे। कल की राह मत देखो। आज ही दिल खोल कर उठा लो। अगर आज का कदम ठीक उठ गया, तो इसी कदम से कल का कदम भी निकलेगा। और कहां से आएगा?
तुमसे ही तुम्हारा भविष्य निकलता है। जैसे बीज से वृक्ष निकलता है, ऐसे तुमसे तुम्हारा भविष्य निकलता है। अगर इस क्षण में तुम आनंदित हो, तो आने वाला कल भी आनंदित होगा। फिकर छोड़ो उसकी। उसकी बात ही मत उठाओ। उसकी बात क्या करनी! उसकी बात में भी समय मत गंवाओ। क्योंकि उतना समय गंवाया, उतना ही आम अनचूसा रह जाएगा। फिर कल तुम पछताओगे।
पीते हो जल, पूरा पी लो। भोजन करते हो, पूरा कर लो। सोते हो, दिल खोल कर
सो लो। सुनते हो, मन भर के सुन लो। क्षण से यहां-वहां मत डांवाडोल होओ। घड़ी के पेंडुलम मत बनो। रुको। उस रुकने का नाम ही ध्यान है।
क्या कमी है इस क्षण में, मैं पूछता हूं? पक्षी गीत गा रहे हैं, तुम नहीं गा पाते। क्योंकि पक्षियों को अगले कदम की चिंता नहीं है। फूल खिल रहे हैं, तुम नहीं खिल पाते। क्योंकि फूलों को अगले कदम की चिंता नहीं है। आदमी को छोड़ कर सब प्रसन्न मालूम पड़ता है। आदमी विषाद में है। अगला कदम जान ले रहा है।
भविष्य से मुक्त जो हो जाए, वही संसार से मुक्त हो जाता है। वर्तमान में है, संन्यास; भविष्य में है संसार।
तो मैं तुमसे नहीं कहता, घर द्वार छोड़ कर भाग जाओ। मैं तुमसे कहता हूं, घर-द्वार में। यह छोड़ कर भागने की बात ही फिर भविष्य को बीच में ले आना है। तुम जहां हो--घर में हो, द्वार में हो, बाजार में हो--वहीं तुम उस क्षण को पूरा जीना सीख जाओ। तुम तत्क्षण पाओगे घर भी गया, द्वार भी गया, संसार दूर रह गया, तुम परमात्मा में उतर गए।
संन्यास, संसार से भागना नहीं है--संन्यास, संसार में परमात्मा को खोज लेना है।
तुम समय की धार पर ऐसे ही बहते रहते हो, डुबकी नहीं लेते। और फिर धीरे- धीरे यह बहने की आदत मजबूत हो जाती है। फिर तुम कभी भी डुबकी न ले पाओगे। फिर तुम हमेशा कल पर टालते रहोगे। और एक दिन कल आएगा और मौत लाएगा; और कुछ भी न लाएगा। मौत से आदमी इसीलिए इतना डरता है। मौत के डरने का और कोई कारण नहीं है।
पहली तो बात, मौत को तुम जानते नहीं, डरोगे कैसे? डर उससे पैदा होता है जिसका कोई अनुभव हो। मौत से तुम्हारा कोई अनुभव नहीं है। याद भी नहीं है, कभी अनुभव हुआ हो। हुआ भी हो, तो भी स्मृति नहीं है, तुम डरोगे कैसे? और कौन कह सकता है निर्णीत रूप से कि मौत के बाद जीवन इससे बेहतर न होगा? कोई भी लौट कर तो खबर देता नहीं कि जीवन मौत के बाद बुरा हो जाता है। भय का कोई कारण नहीं है।
लेकिन कारण कहीं दूसरा है। और वह दूसरा यह है कि तुम कल पर स्थगित करके जीने की आदत बना लिए हो। मौत कल को मिटा देगी। जिस दिन मौत आती है, उसके बाद फिर कोई कल नहीं है। और तुम पूरे जीवन कल पर ही आधार बना कर जीए हो। तुम्हारा जीवन सदा एक पोस्टपोनमेंट था। और मौत सब पोस्टपोनमेंट तोड़ देती है। मौत कहती है, आ गई। और मौत हमेशा आज आती है, कल नहीं। मौत जब आएगी

तब इस क्षण में आएगी। फिर उसके बाद एक क्षण भी नहीं रहेगा। मौत एक ही कदम उठाती है, दो नहीं उठाती। उसका कोई अगला कदम नहीं है।
और जो मौत के संबंध में सही है, वही जीवन के संबंध में सही है। जीवन भी
एक ही कदम उठाता है--यही क्षण। तुम अगर टालते रहे कल पर, तो तुम मौत से डरोगे क्योंकि मौत कहती है, अब कोई कल नहीं है। और तुम जिंदगी भर टालते आए। तुम जीए ही नहीं। तुमने हमेशा सोचा, कल जीएंगे।
बंद करो यह आदत। यह आदत ही संसार है। यह क्षण सब कुछ है। इस क्षण में सारी शाश्वतता है। इस कदम में ही छिपी है मंजिल।
और अगर तुम इसे समझ लो, तो तुम जिसे खोजने जा रहे हो, तुम उसे अपने भीतर
पा लोगे। खोजने वाले में ही छिपा है गंतव्य। फिर वह मिलता उसे है, जो अतीत और भविष्य की बात छोड़ कर क्षण में खड़ा हो जाता है। क्योंकि फिर अपने को देखने के सिवाय कोई उपाय नहीं रहता। न तो भविष्य है सोचने को, न अतीत है सोचने को। न कोई स्मृति है अतीत की, न कोई कल्पना है भविष्य की। तब तुम अपना साक्षात्कार करते हो। वह आत्म-साक्षात्कार ही मुक्ति है।
एक ही कदम है। मत पूछो कि अगला कदम स्पष्ट क्यों नहीं है? है ही नहीं। स्पष्ट होगा कैसे?

तीसरा प्रश्नः जिस शोले को आपने मेरे भीतर से कुरेद कर जला दिया, क्या
वह संसार में वापस जाने पर फिर राख से नहीं ढंग जाएगा?

संसार नहीं ढांकता है। अगर संसार ढांकता होता, तब तो फिर कोई भी व्यक्ति संसार में ज्ञान को कभी उपलब्ध न हो सकता था। मैं भी तुम्हारे बीच बैठा हूं, किसी हिमालय पर नहीं भाग गया हूं।
नहीं, संसार नहीं ढांकता है, ढांकती है मूर्च्छा।
तो अगर तुम्हें ऐसा लग रहा है कि वापस लौट कर कहीं संसार ढांक तो न लेगा मेरी आग को; अंगारा कहीं छिप तो न जाएगा राख में--तब तुम ठीक से समझ लो, अंगारा जला ही नहीं है। जैसे अंगारा अपनी ही राख से ढांकता है, किसी और की राख नहीं ढांकती--ऐसे ही तुम्हारी चेतना भी अपनी ही मूर्च्छा से ढंकती है, किसी और की मूर्च्छा तुम्हें नहीं ढांकती लेकिन आदमी का मन सदा दूसरे पर जिम्मेवारी फेंकना चाहता है।
अब तुम्हारी बेहोशी होगी तो भी संसार जिम्मेवार है। तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा संसार को गाली दिए चले जाते हैं; जैसे संसार की कोई जिम्मेवारी है उनको भ्रष्ट करने में। कौन किसको भ्रष्ट करेगा? तुम भ्रष्ट होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है। तुम मुक्त होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है।
संसार तो सिर्फ आयोजन है; उपयोग तुम पर निर्भर है।
अगर मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग तुम्हें जलती हुई लग रही है,
तो गलती हो रही है कहीं। तुम्हारे ध्यान से जलती हुई होनी चाहिए मेरी बातों से नहीं। मेरी बातें तुम्हें ध्यान पर ले जा सकती हैं। ध्यान से तुम्हारे भीतर का अंगारा जलेगा। लेकिन अगर तुमने समझा कि मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग जल रही है, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। किसी और की बातों से राख पड़ जाएगी। तब तुम मुझ पर निर्भर हो। मुझ पर निर्भर होने का मतलब है, तुम्हारी निर्भरता तुमसे बाहर है। तब तो फिर संसार तुम पर राख जुटा देगा। तुम बुनियाद में ही भूल कर गए।
मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग नहीं जलेगी। हां, मेरी बातों से तुम ध्यान को समझ लो। ध्यान से जलने दो तुम्हारी आग को; फिर तुम्हारी आग को कोई भी न बुझा सकेगा। तब तुम्हें आग को बुझाना हो तो ध्यान छोड़ना पड़ेगा। लेकिन यह मेरा अनुभव है, जिसने एक बार ध्यान का रस जान लिया, उसने कभी छोड़ा नहीं। रस को कोई कभी छोड़ता है? और जो छोड़ दे, समझना कि उसने रस नहीं जाना है।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। भारत में तो लाखों लोग कभी न कभी ध्यान करते
ही हैं। जिंदगी में ऐसा मौका कम ही आता है, कम ही लोग होंगे, जिनको कभी न कभी ध्यान की धुन न चढ़ी हो। आते हैं, वे कहते हैं कि पंद्रह साल पहले ध्यान

करता था, फिर छूट गया। मैं उनसे पूछता हूं आनंद आ रहा था? वे कहते हैं, बड़ा आनंद आ रहा था। झूठ की भी कोई सीमा है! आनंद कभी छूटता है? तो मैं उनसे पूछता हूं, छूट कैसे गया? वे कहते हैं कि घर-गृहस्थी, काम-धाम। मैं पूछता हूं, घर-गृहस्थी और काम-धाम में ज्यादा आनंद आ रहा है? वे कहते हैं, आनंद कहां, महाराज! दुख ही दुख है।
बड़ी आश्चर्य की बात है, कौन सा गणित चल रहा है? दुख के कारण आनंद छूट गया है इनका। दुख के लिए आनंद छोड़ दिया, इनसे बड़े त्यागी तुम खोज सकते हो कहीं?
इनको आनंद कभी मिला नहीं। यह झूठ है। और हो सकता है इन्हें पता भी नहीं हो कि ये झूठ बोल रहे हैं। झूठ कभी-कभी इतना गहरा हो जाता है व्यक्तित्व में कि सत्य जैसा मालूम पड़ता है। इनको पता भी न हो कि ये झूठ बोल रहे हैं। ये सिर्फ एक सामाजिक धारणा बोल रहे हैं। ध्यान से आनंद मिलना चाहिए, सो इन्होंने ध्यान किया था; आनंद मिला होगा। और कैसे कहो, ऋषि- मुनियों के वचन गलत हैं कि ध्यान से आनंद नहीं मिला। यह तो निश्चित सिद्धांत है कि ध्यान से आनंद मिलता है। इसलिए उसमें तो शक-शुबहा नहीं उठाते वे।
इन्हें ध्यान से आनंद मिला ही नहीं। इस जगत में आनंद जिसको मिल जाए जिस चीज से, वह छूटती ही नहीं। शराब नहीं छूटती आदमी से, अगर उसे आनंद मिलने लगे। सारे चिकित्सक चिल्लाए जाते हैं कि मरोगे, बीमार हो रहे हो, रुग्ण हो रहे हो। वह कहता है, सब ठीक है।
मुल्ला नसरुद्दीन पीता है। अस्सी साल की उम्र, कान बहरे हुए जाते हैं, कुछ सुनाई नहीं पड़ता। डाक्टर ने उससे कहा कि बड़े मियां, अब बंद करो। अन्यथा बिल्कुल कान से कुछ भी सुनाई न पड़ेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने क्या कहा पता है? उसने कहाः डाक्टर साहब, अस्सी साल का हो जाने के बाद अब सुनने को बाकी भी क्या रह गया!
जीवन खोता है आदमी, लेकिन शराब नहीं छोड़ता; और आनंद छोड़ देता है। ध्यान छोड़ देता है।
ऐसे-ऐसे नासमझ मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, समाधि तक लग चुकी; फिर छूट गई। चमत्कारी पुरुष हैं ये। समाधि किसी की लगी और छूटी? तो फिर ऐसा हुआ कि मोक्ष पहुंच गए लेकिन लौट जाएं; क्या करें! संसार का दुख बुलाता रहा।
अपने ध्यान पर ही भरोसा रखना, मेरे वचनों पर नहीं। मेरे वचन का इतना
ही उपयोग कर लेना कि वे तुम्हें ध्यान में लगाएं। लेकिन वहां भी मन बड़े धोखे देता है। मेरी बात सुन कर अच्छी लगती है। इससे जरूरी नहीं है कि वह अच्छा लगना बहुत देर टिकेगा। वह तो तुम मुझे सुनते रहोगे, तो अच्छा लगता रहेगा।
वह तो ऐसे ही है, जैसे की कोई वीणा बजा रहा है; अच्छा लगता है। मगर वीणा बजाने से कहीं कुछ होने वाला है! घड़ी टल जाएगी मनोरंजन में, सुखपूर्वक, घर पहुंच कर तुम वही के वही हो जाओगे। तो वीणा बजाने से कोई जीवन का संगीत थोड़ी ही पैदा हो जाएगा।
मैं तुमसे बोल रहा हूं, एक वीणा बजाता हूं, एक गीत गा रहा हूं, वह तुम्हें अच्छा लगता है। उसको सुनते-सुनते तुम संसार की चिंता भूल जाते हो। थोड़ी देर को बाजार विस्मृत हो जाता है। दुकानदारी, घर-गृहस्थी की उपद्रव है, वह भूल जाते हो। घड़ी भर को तुम मेरी बातों में लीन हो जाते हो और तुम्हें लगता है, एक अलग लोक का प्रारंभ हुआ।
लेकिन तुम फिर घर लौटोगे। मैं कोई चौबीस घंटे तुम्हें बात न करता रहूंगा। और अगर चौबीस घंटे बात करता रहूं, तो वह बात भी रसपूर्ण न रह जाएगी। तुम उससे भी ऊबने लगोगे। तुम उसके भी आदी हो जाओगे।
ऐसा हुआ; एक यहूदी कथा है कि वारसा में एक यहूदी रबी था। बड़ा सरल हृदय
था और इसलिए बड़ी मुसीबत में था। काफी यहूदियों की संख्या थी, बड़े उपद्रव थे, और उनको हल करना और सुलझाना और संगठन और मंदिर और पूजा और सबके लिए रुपया इकट्ठा करना, मकान बनवाना, सब उपद्रव थे। वह बहुत परेशान था। सो न सके, काम ही काम, चिंता ही चिंता--फिर उसे हार्ट अटैक हुआ, तो उसके डाक्टर

ने कहा कि आप इतनी चिंता में पड़े हैं यहां। मैंने सुना है कि एक दूसरे नगर में पोलैंड में जगह खाली हुई है रबी की। छोटी जगह है, शांत एकांत स्थान है, आप वहां चले जाएं। यह उपद्रव यहां का छोड़ें। यह राजनीति, यह चक्कर, यह सारा ज्यादा हो रहा है आपके सिर पर। आप सीधे-साधे आदमी हैं, आप वहां चले जाएं। उस रबी ने कहाः तो सुनो। मैं बहुत परेशान था, जब मैं विद्यार्थी था और अपने गुरु के पास पढ़ता था कि भगवान ने सात नरक क्यों बनाए? एक से काम न चला? तो मैंने अपने गुरु से पूछा कि भगवान ने सात नरक क्यों बनाए? तो मेरे गुरु ने कहा कि ऐसा है, भगवान बहुत न्यायपूर्ण है। कोई पाप करता है, उसको पहले नरक में डालता है। लेकिन महीने दो महीनों में वह उस नरक का आदी हो जाता है, फिर उसे तकलीफ ही नहीं होती वहां, तो उसको फिर दूसरे नरक में डालता है। फिर नई जगह दो-चार महीने तकलीफ पाता है, तब तक वह फिर आदी हो जाता है, फिर उसको तीसरे नरक में डालता है।
उस डाक्टर ने कहाः मैं समझा नहीं कि यह बात आप मुझसे क्यों कह रहे हैं?
तो उसने कहा कि इससे क्या फर्क पड़ता है? इस नरक का--वारसा के नरक का तो मैं आदी हो गया; अब तुम और पोलैंड के नरक में मुझे भेज रहे हो। इन दुष्टों से तो किसी तरह संबंध बन गया है, किसी तरह नाव चल रही है। जिंदा तो हूं! माना कि हार्ट अटैक हुआ है, मगर अब इस बुढ़ापे में इस कमजोर हालत को लेकर नये नरक में जाना! यही वहां दोहराया जाएगा। क्योंकि जहां आदमी है, वहां आदमी के उपद्रव हैं, वहां आदमी की राजनीति है।
अगर मैं चौबीस घंटे, तुमसे बोलता रहूं, तो तुम उसके भी आदी हो जाओगे। शायद उससे तुम्हें नींद आने लगे। मोनोटोनस हो जाएगा, एकरस हो जाएगा। नहीं, उससे भी कोई हल नहीं होगा। और तुम थोड़े ही उससे जागोगे। संभव है, तुम सो जाओ। मेरे बोलने पर इतना ज्यादा भरोसा मत करना। मेरे बोलने का उपयोग करना, लेकिन मेरे बोलने को सब कुछ मत समझ लेना।
मेरे पास बहुत लोग आते हैं। वे कहते हैं, आपको सुन कर ही काफी आनंद आता है, ध्यान वगैरह क्या करना! मुझे सुन कर जो आनंद आता है वह मुझ पर निर्भर है, तुम पर निर्भर नहीं है। तुम्हें उसमें कुछ भी नहीं करना पड़ रहा है, तुम सिर्फ बैठे हो, निष्क्रिय हो। ध्यान में तुम्हें करना पड़ेगा। प्रमाद गहन है। उतना भी करने की आकांक्षा नहीं है। तुम चाहते हो, मैं बोलता रहूं, तुम सुनते रहो, लेकिन उससे क्या हल होगा? उससे कोई हल नहीं हो सकता।
ध्यान रखो, अगर मेरे बोलने से तुम्हें लगता है अग्नि जल गई, तो झूठी अग्नि है। बोलने से कहीं सच्ची अग्नि जलती है! हां, बोलने से तो सिर्फ आयोजन का पता चलता है कि मैं तुम्हें बता देता हूं कि देखो ये चकमक पत्थर हैं, इनको रगड़ने से अग्नि जलती है। तुम मेरे शब्दों को मत रगड़ना। उनसे नहीं जलेगी। बोलना तो फार्मूले की तरह है। जैसे कि कोई कह देता है, एच टू ओ से पानी बनता है। अब तुम एच टू ओ को कागज पर लिख कर मत गटक जाना। उससे प्यास न बुझेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे की परीक्षा ले रहा था। उसने कई सवाल पूछे, कोई सवाल का जवाब न आया। फिर उसने आखिर में पूछाः अच्छा, अब मैं तुझसे आखिरी और रसायन शास्त्र का सवाल पूछता है, एच एन ओ थ्री का क्या मतलब होता है? वह लड़का सिर खुजलाने लगा। उसने कहा कि बिल्कुल पापा जबान पर रखा है। नसरुद्दीन ने कहा कि नालायक! थूक, जल्दी थूक। नाइट्रिक एसिड है, मर जाएगा।
कोई फार्मूले से थोड़ी मर जाता है! न कोई जीता है। मेरी बातों से आग को जला हुआ मत समझ लेना। वह केवल बुद्धि में जलेगी, हृदय में नहीं। वह केवल शब्दों की होगी। वह कितने दूर ले जाएगी। शब्दों की नाव से उस पार जाने का सोचते हो? शब्दों की नाव तो कागज की नाव है। कितनी ही नाव जैसी लगती हो, नाव नहीं है।
हां, कागज की नाव को देख कर तुम असली नाव बना लेना। उससे यात्रा करना। कागज की नाव तो माडल है। उसको अगर तुम समझो, तो उसको देख कर तुम असली नाव बना सकते हो। वह असली नाव तो ध्यान की होगी।
शब्द तो इशारे हैं। असली नाव ध्यान की है। और उससे जो आग जलेगी, फिर उसे कोई संसार नहीं बुझा सकता है।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि थोड़ी भी प्यास जगी हो और थोड़ा सा भी साहस हो
तो प्रभु को समर्पण कर दो। लेकिन भय से किया गया समर्पण निर्भयता को कैसे उपलब्ध होगा?

पहली तो बात, समर्पण ही जब कर दिया तो क्या उपलब्ध होगा, क्या न होगा
यह हिसाब तुम क्यों रखोगे? यह भी उसी पर छोड़ दो। हिसाब तुम रखोगे तो समर्पण हुआ ही नहीं।
और समर्पण तो तुम जब भी करोगे, वह अधूरे आदमी से ही निकलेगा। उसमें कुछ कमी तो रहेगी। क्योंकि अगर तुम पूरे ही आदमी होते, तो समर्पण की जरूरत ही क्या थी। तुम अधूरे हो, कमियां हैं, भय है, चिंता है, विषाद है, वासना है, सब है। इन सबके रहते ही यह करोगे। तुम कोई परमात्मा से यह थोड़े ही कह रहे हो कि मुझे स्वीकार करो। देखो, मैं बिल्कुल निर्वासना से भर गया; कि देखो मेरे भीतर अब कोई तृष्णा नहीं है; कि देखो मेरे भीतर कोई भय न रहा, मैं अभय को उपलब्ध हो गया!
नहीं, समर्पण करने वाला तो कहता है कि देखो, मेरे भीतर सारे संसार की वासना है। देखो, मैं मोह से भरा हूं, लोभ से भरा हूं, पात्रता मेरी कुछ भी नहीं है। तुम मुझे न स्वीकार करोगे, तो मैं शिकायत न करूंगा। क्योंकि स्वाभाविक है कि मेरी पात्रता ही नहीं है। तुम मुझे स्वीकार कर लोगे, तो वह प्रसाद है। वह मेरी पात्रता नहीं है। मेरी योग्यता नहीं है, मेरा दावा नहीं है। भय है, और यह समर्पण आधा-आधा है। इसमें भी पूरा मेरा हृदय नहीं है। करना भी चाहता हूं, नहीं भी करना चाहता। यह मेरी दशा है। इस मेरी रुग्ण चित्त-दशा को तुम स्वीकार करो।
समर्पण कोई योग्यता का दावा थोड़ी है! समर्पण तो अपनी सहजता का--जैसे
भी तुम हो, बुरे-भले, शुभ-अशुभ, वैसे के वैसे तुम प्रभु के चरणों में अपने को रख देते हो। समर्पण का अर्थ है कि मैंने तो अपने को बदलने की सब चेष्टा कर ली, कुछ होता नहीं। सब उपाय देख लिए, निरुपाय पाता हूं। सब तरफ से छलांग लगाई, कहीं से भी कहीं पहुंचता नहीं। सब तरफ असफल हो गया हूं।
समर्पण का अर्थ तो है, निरुपाय, बेसहारा, असहाय अवस्था की स्थिति। तब तुम कोई पात्रता का दावा थोड़े ही कर रहे हो! प्रभु स्वीकार कर लेगा तो तुम धन्यभागी होओगे। अस्वीकार कर देगा तो तुम जानोगे कि बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं योग्य ही नहीं हूं, स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है।
और अगर तुम सोचते हो, पहले अपने को पूर्ण कर लेंगे फिर समर्पण करेंगे,
तो फिर समर्पण की जरूरत क्या है? फिर तो तुम बिना उसके ही, पूर्ण हो गए। समर्पण का अर्थ ही तुम नहीं समझ पा रहे हो। समर्पण का अर्थ कि जैसा मैं हूं, वैसा का वैसा तेरे चरणों में रखता हूं, बिना किसी दावे के।
और अगर तुम पूरा का पूरा अपने को पूरा उघाड़ कर, नग्न, निर्वस्त्र होकर, कुछ भी न छिपाते हुए सारी दशा को उघाड़ कर रख दिए, तो तुम स्वीकृत हो जाते हो। क्योंकि स्वीकार का अर्थ केवल इतना ही होता है, जिसने अपना उपाय छोड़ दिया और परमात्मा के हाथों में पूरी बागडोर सौंप दी।
रामकृष्ण कहते थे, नाव दो ढंग से चल सकती है। एक तो पतवार से और एक पाल से। नासमझ पतवार से चलाते हैं, समझदार पाल से। समझदार तो पाल को खोल देता है, बैठ जाता है। हवा ले चलती है। नासमझ को पतवार चलानी पड़ती है। नाहक मेहनत करनी पड़ती है।
परमात्मा भी दो तरह से पाया जाता है, संकल्प से और समर्पण से। संकल्प
से पाना पतवार चलाना है। और नदी तो पार भी हो जाए, यह भवसागर का बड़ा विस्तार है। इसमें पतवार चला चला कर पार होना बड़ी मुश्किल है। इसमें डूबने की संभावना ज्यादा है, उबरने की संभावना कम है। इसमें पहुंचने का उपाय कम है, समाप्त हो जाने की संभावना ज्यादा है।
पाल से--तुम पाल खोल देते हो। हवा का रुख देख लेते हो, पाल खोल देते हो। बस, हवा का रुख देखने की कला आनी चाहिए। फिर पाल खोल दिया, नाव चल पड़ती है। पतवार चलाने की जरूरत नहीं पड़ती। पर इसके लिए बड़ी बुद्धिमानी चाहिए, परख चाहिए, हवाएं किस तरफ बह रही हैं--बस, उतना ही काफी है। ध्यान तुम्हें इतनी

बुद्धिमानी दे देगा कि तुम पहचान लोगे हवा किस तरफ बह रही है। कब किस तरफ बह रही है? तब तुम तट पर बैठे रहोगे, जब तक हवा विपरीत बह रही है। जब हवा अनुकूल हो जाती है, तुम पाल छोड़ देते हो। तुम यात्रा पर निकल जाते हो। समर्पण कला है। और पूर्ण होने की कोई आकांक्षा समर्पित भाव में है ही नहीं। इसलिए तुम यह तो सोचो ही मत कि अभी मैं निर्बल हूं निर्बल न होते तो काहे के लिए समर्पण करते? मत सोचो कि अभी भयभीत हूं; भयभीत न होते तो क्या समर्पण की जरूरत थी? अभय तो तभी उपलब्ध होगा, जब परमात्मा उपलब्ध होगा। उसके पहले तो तुम भयभीत रहोगे ही। क्योंकि परमात्मा को बिना पाए कैसे कोई व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो सकता है? और सौभाग्य है कि परमात्मा को बिना पाए कोई अभय को उपलब्ध नहीं होता। नहीं तो फिर परमात्मा तक जाने की जरूरत ही समाप्त हो जाएगी।
तुम अधूरे रहोगे ही। यह तुम्हारे हित में है। तुम पूरे तो उससे मिल कर
ही होओगे। तुम छोटी नदी की धार रहोगे। जब तुम सागर से मिलोगे, तभी विराट शुरू होगा। लेकिन यह नदी जा सकती है विराट तक, और समर्पित हो सकती है, सागर में गिर सकती है।
अगर तुम बहुत ज्यादा समझदारी बरते--नदी भी अगर समझदारी बरते, तो तालाब
बन जाएगी, नदी नहीं रहेगी। क्योंकि तालाब में अपना सब अपने पास है। कहीं जा नहीं रहा, कहीं कुछ खो नहीं रहे। लेकिन यही तो दुनिया की बड़ी तकलीफ है कि यहां जो खोते हैं, वे पा लेते हैं और यहां जो बचाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।
तालाब सड़ता रहता है। नदी रोज नई होती रहती है। नदी खोकर भी कहां समाप्त होती है। क्योंकि रोज उसके बादल उसे भरते रहते हैं। तुम जितना समर्पण करोगे उतना ही पाओगे, तुम्हारे पास समर्पण करने को आ गया। तुम जितना उलीचोगे उतना ही अपने को भरा हुआ पाओगे। और जितना अपने को बचाओगे, उतना ही तुम पाओगे कि सड़ गए। कृपण की आत्मा सड़ जाती है।
उलीचो। और इसकी फिकर मत करो कि हम बहुत सुंदर होंगे तभी उसके सामने जाएंगे। तब तो तुम कभी भी न जा पाओगे। उसके सौंदर्य के मापदंड को तो तुम कभी भी पूरा न कर पाओगे। योग्यता की बात ही छोड़ दो। असहाय होओ। छोटा बच्चा है, प्यासा है, भूखा है, चिल्लाता है, रोता है। मां दौड़ी चली आती है। अगर वह छोटा बच्चा भी सोचने लगे कि मेरी पात्रता है, योग्यता है? क्या मैं इस योग्य हूं कि मुझे दूध पिलाया जाए? मुझे बचाया जाए, मुझे जीवन दिया जाए? -- तो संकट में पड़ जाएगा।
मैंने एक कहानी सुनी है कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं स्वर्ग में, बैकुंठ में। रुक्मिणी ने थाली लगाई है। वह पंखा झलने बैठी है। उन्होंने एक या दो कौर ही लिए हैं, और एकदम उठ कर खड़े हो गए और भागे दरवाजे की तरफ। रुक्मिणी ने पूछाः कहां जाते हैं? क्या हुआ? लेकिन कुछ इतनी जल्दी है कि उन्होंने हाथ से इशारा कहा कि लौट कर--लेकिन दरवाजे पर जाकर ठिठक गए। एक क्षण रुके, वापस लौट कर बैठ गए थाली पर, भोजन करने लगे।
रुक्मिणी ने कहाः बेबूझ हो गई बात। मेरी कुछ समझ में नहीं आती। क्यों भागे? क्या कारण था? दरवाजे पर कोई कारण नहीं है। और फिर क्यों लौट गए? इतनी तेजी में गए?
तो कृष्ण ने कहाः मेरा एक प्रेमी एक राजधानी की सड़क से गुजर रहा है। लोग उसे पत्थर मार रहे हैं, लहूलुहान है। उसके सिर से खून की धाराएं बह रही हैं, लेकिन वह प्रसन्न है, मस्त है। और वह कहता है, मुझे क्या फिकर! जिसने दिया है शरीर, वही चिंता करेगा। मैं कौन हूं बीच में आने वाला! तू जान, तेरा काम जान! तेरे ही हाथ उस तरफ से पत्थर मार रहे हैं, तेरा ही सिर इस तरफ टूट रहा है। तेरी जैसी मर्जी! वह खड़ा हंस रहा है, लोग पत्थर मार रहे हैं। तो मुझे भागना पड़ा। जब किसी का समर्पण ऐसा हो, तो भागना ही पड़े। मैं उसे बचाने जा रहा था।
रुक्मिणी ने कहाः फिर आप लौट क्यों आए? फिर क्या हुआ?
उन्होंने कहाः जब तक मैं द्वार पर पहुंचा, उसका भाव बदल गया। उसने अब खुद पत्थर उठा लिया है। वह जवाब दे रहा है। मेरी कोई जरूरत न रही। वह अब खुद ही समर्थ है।

समर्पण का अर्थ हैः तुम असहाय हो, असमर्थ हो। तुम उसके हाथों में छोड़ते हो अपनी नाव, वह जहां ले जाए। फिर तुम यह भी नहीं पूछते, कहां ले जा रहे हो? क्योंकि यह पूछने का मतलब हुआ कि समर्पण किया ही नहीं। फिर तुम यह भी नहीं पूछते कि क्या परिणाम होगा? समर्पण में सभी छोड़ दिया। वह डुबाए, तो वह डूबना ही तट पर पहुंच जाना है। वह मिटाए, तो मिटाना ही सौभाग्य है। उसके हाथ में बागडोर सौंप दी, फिर हिसाब-किताब तुम्हें अपना रखने की जरूरत नहीं।
संकल्प कंजूस चित्त की चेष्टा है। समर्पण बड़ी भिन्न बात है। संकल्प
तो अहंकार के आस-पास खड़ा होता है। और संकल्प से कभी-कभी एकाध व्यक्ति पहुंच पाया है। पहुंच जाता है संकल्प से भी; लेकिन आखिरी क्षण में उसको अपने विराट अहंकार को गिराना पड़ता है। वह बहुत कठिन मामला है।
कोई महावीर कभी सफल हो पाता है। इसलिए मैं कहता हूं, महावीर को महावीर नाम देना ठीक है। क्योंकि मुश्किल से कभी उस यात्रा में कोई सफल होता है। बड़ी कठिन है। कठिन इस लिहाज से है कि पहले तुम अहंकार को निर्मित करते हो, शुद्ध करते हो। सब अपने हाथ में ले लेते हो और आखिरी घड़ी में जब कि सब परिपक्व हो जाता है, अहंकार सूक्ष्मतम रूप से निर्मित हो जाता है, हीरे की तरह कठोर हो जाता है कि सारी दुनिया की चीजें काट दो और कोई चीज उसको न काट सके, उस क्षण फिर तुम्हें समर्पण करना पड़ता है। उस क्षण फिर तुम छोड़ देते हो अस्तित्व में। कोई बहुत ही बहुत प्रज्ञावान पुरुष ऐसा कर पाएगा। अधिक तो मध्य में ही खो जाएंगे। अपने-अपने अहंकार का डेरा जमा लेंगे। परमात्मा तक नहीं पहुंच पाएंगे।
समर्पण से बहुत लोग पहुंचे हैं। वह सरल उपाय है। वह सहज भाव है। मीरा नाचते हुए पहुंच जाती है, चैतन्य गीत गाते हुए पहुंच जाते हैं। और जिनको भी चलना हो उस यात्रा पर, यही उचित है कि पहले ही अहंकार छोड़ दो। पहले बनाना, फिर छोड़ना--मुश्किल पड़ेगा।
छोड़ना तो पड़ता ही है क्योंकि बिना अहंकार को छोड़े कोई कभी परमात्मा
को उपलब्ध नहीं होता। संकल्प वाला व्यक्ति अंत में छोड़ता है, समर्पण वाला पहले से छोड़ देता है; तुम्हारे हाथ में है। लेकिन जो भी करो, पूरा पूरा करो।
अगर संकल्प ही करना है, तो फिर फिकर ही छोड़ दो परमात्मा की। इसलिए महावीर ने तो कहा, परमात्मा है ही नहीं। वह संकल्प का ठीक वक्तव्य है। क्योंकि अगर है तो फिर संकल्प नहीं चल सकेगा। फिर वह बीच से बाधा डालेगा। और वह खड़ा रहेगा सामने। फिर शक्ति उसके हाथ में है। इसलिए महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है। बस, तुम्हारा संकल्प ही परमात्मा है।
भक्त कहते हैं, तू ही है, हम नहीं हैं। साधक कहते हैं, मैं ही हूं, तू नहीं है। साफ कर लो अपने मन में। अगर संकल्प से जाना हो, तो परमात्मा की बात ही छोड़ दो। फिर न कोई भक्ति है, न कोई भगवान है, फिर तुम हो अकेले। और तुम्हारी ही बुद्धि है, जो तुम्हें करना हो, करो। लंबी यात्रा है। कभी-कभी कोई पहुंच भी गया है। नहीं पहुंचा, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। लेकिन सौ चलते हैं, एक पहुंच जाता है। निन्यानबे भटक जाते हैं। रास्ता उपद्रव का है। लेकिन जिनको शौक हो उपद्रव के रास्ते पर चलने का, उनका स्वागत है। समर्पण के मार्ग सौ चलते हैं, तो मुश्किल से एक भटक पाता है, निन्यानबे पहुंच जाते हैं। क्योंकि वह सरल भाव की बात है, वह प्रेम की बात है। उसमें बहुत आयोजन नहीं है, बहुत साधना नहीं है। इतना ही है कि तुम पूरा का पूरा परमात्मा के चरणों में रख दो।
सोच लो। अगर रखना है, तो पूरा रख दो, फिर कुछ बचाओ मत। अगर बचाना हो, तो कृपा करके पूरा बचा लो, फिर कुछ रखो मत। अगर दोनों के बीच डांवाडोल रहे, तो तुम दो नावों पर सवार हो जाओगे। तुम कहीं पहुंच न पाओगे। तुम बड़ी दुविधा में जीओगे।
और ऐसी ही हालत अधिक लोगों की मैं देखता हूं। अहंकार को छोड़ना भी नहीं चाहते; तो अहंकार को बचा लेते हैं, और मुफ्त में पहुंचना भी चाहते हैं। कुछ करना भी न पड़े। तो जाकर सिर भी टिका देते हैं। मंदिरों में जाओ, गौर से खड़े हो जाओ। आदमी की खोपड़ी को झुकते पाओगे, अहंकार को खड़ा हुआ पाओगे।

अगर किसी दिन फोटोग्राफी और थोड़ी कुशल हो गई, जो हो जाएगी; क्योंकि रूस में एक फोटोग्राफर किरलियान बड़े अदभुत प्रयोग कर रहा है; उससे तुम्हारे व्यक्ति का आरा, तुम्हारे व्यक्तित्व के प्रतिभा के चित्र आ जाते हैं। आज नहीं कल हर मंदिर में एक कैमरा लगा कर जांचा जा सकेगा कि आदमी सच में झुका? क्योंकि शरीर तो झुक जाएगा, तुम्हारा जो आरा है व्यक्तित्व का वह खड़ा रहेगा, अगर अहंकार नहीं झुका है। तुम्हारी भीतरी प्रतिमा खड़ी रहेगी। तुम्हारा असली प्रकाश-शरीर खड़ा रहेगा। सिर्फ यह मिट्टी की देह झुकेगी।
इसको भी क्या झुकाना। इसको तो मौत झुका देगी, मिट्टी में मिला देगी। इसको तुम झुका कर किसी पर कोई कृपा नहीं कर रहे हो। अगर झुकाना हो, तो भीतर का अंतर्भाव झुके। न झुकाना हो, कोई हर्ज नहीं है। वह भी रास्ता है, उससे भी लोग पहुंचे हैं। मगर साफ हो जाना चाहिए।
झुकना है, पूरे झुक जाओ। अकड़े रहना है, पूरे अकड़े रहो। समझौता मत करो। समझौता महंगी बात है।

पांचवां प्रश्नः प्रवचन के समय आपकी कोई कोई ध्वनि सुन कर मैं कांप जाता हूं, डर जाता हूं। भाग खड़े होने को जी चाहता है; ऐसा क्यों? क्या मैं डरपोक, कायर होता जा रहा हूं?

जिसने मृत्यु को पार नहीं किया, वह सिर्फ समझता है कि भयभीत नहीं है; होता तो भयभीत ही है। धोखा देता है अपने को कि मैं अभय हूं। मृत्यु के पार जाकर ही, मृत्यु से गुजर कर ही, मृत्यु के अनुभव से ही, अमृत को पहचान कर ही कोई अभय को उपलब्ध होता है।
लेकिन हर आदमी "मैं भयभीत नहीं हूं", इस तरह की आत्मवंचना करता है। इस तरह की खोल खड़ी कर लेता है कि मैं डरता नहीं हूं। जब तुम मेरे पास आओगे और मैं तुम्हारी पर्तों को उघाड़ने लगूंगा और तुम्हारे वस्त्र गिरने लगेंगे, तो तुमने जो भीतर छिपाया है वह प्रकट होना शुरू हो जाएगा।
नहीं, मेरी बात सुन कर तुम्हें भय पैदा नहीं होता, मेरी बात से तुम्हारे भीतर जो भय सदा से था, वह तुम्हें दिखाई पड़ता है। और भाग खड़े होने का जी चाहता है क्योंकि भाग खड़े होकर फिर तुम अपने कपड़े वगैरह पहन कर, सज-संवर कर खड़े हो जाओगे। फिर तुम्हारी असलियत तुम्हें भूल जाएगी।
सत्य को जानना पीड़ादायी है क्योंकि तुमने बहुत से असत्य अपने चारों तरफ बांध रखे हैं। सत्य को जानना पीड़ादायी है क्योंकि तुमने अपनी प्रतिमा बिल्कुल ही असत्य कर रखी है, झूठी कर रखी है।
तुम्हारी हालत वैसी है जैसे कि चेहरे को पाउडर इत्यादि से पोती हुई स्त्री वर्षा में बाहर जाने से डरती है। वर्षा हो गई, पाउडर बह गया। उनका सब सौंदर्य गया। वह सौंदर्य पोता हुआ था। तो स्त्रियों को एक हैंडबैग लटका रखना पड़ता है। उसमें सब साज-सामान रखना पड़ता है। वर्षा का क्या भरोसा! धूप का क्या भरोसा! धूप आ जाए, पसीना बह जाए, लकीरें पड़ जाती हैं सौंदर्य पर। तो जल्दी से निकाल कर अपने बैग से आईना वगैरह पोत-पात कर फिर ठीक-ठाक कर लिया।
लेकिन जिसके पास अपना सौंदर्य हो, वह क्या वर्षा से डरेगा? वर्षा उसके सौंदर्य को और निखार जाएगी। धूल वगैरह जम गई होगी, तो बह जाएगी। और निर्मल सौंदर्य प्रकट हो जाएगा।
बासा है, उधार है तुम्हारा सौंदर्य, तो मेरी चर्चा से टूटेगा। टूटने
से तुम्हें लगेगा, मैं कितना कुरूप हूं। कुरूप होने से भय होगा। लगेगा, भाग खड़े हो। यहां कहां आ गए? हम तो और सुंदर होने की तलाश में आए थे और यहां कुरूप हुए जा रहे हैं। हो नहीं रहे हो, तुम हो।
भय तुम्हारे भीतर छिपा है। तुमने अपने को किसी तरह सम्हाल कर खड़ा रखा है। तुम भूल ही गए हो कि तुम्हारी असलियत क्या है। तुम वस्त्रों में खो गए हो। और धीरे-धीरे तुमने मान लिया है कि तुम्हारे वस्त्र ही तुम हो। और जब मैं तुम्हारे वस्त्रों को उतार डालूंगा, जो कि उतारना ही पड़ेगा; क्योंकि

जब तक तुम अपने निज सत्य को न जान लो, तब तक जीवन से परिचित होने की कोई संभावना नहीं है। घबड़ाओ मत। जो भी है, उसे जानो।
रोज ऐसा होता है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, यह बड़ी अजीब बात है। हम तो शांति की तलाश में आए थे, और ध्यान करने से और अशांति बढ़ती है। ध्यान करने से अशांति बढ़ती नहीं, ध्यान करने से तुम्हारा होश बढ़ता है। होश बढ़ने से जो अशांति तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ती थी, वह दिखाई पड़ने लगती है।
जैसे एक आदमी घर में सोया है, नशे में धुत पड़ा है। और घड़े में कूड़ा- करकट भरता जा रहा है। लेकिन नशे में धुत पड़े आदमी को कुछ पता नहीं चलता। मकड़ियां जाले बुनती हैं, सांप-बिच्छू घर बनाते हैं, कोई मतलब नहीं है उसे; वह मस्त पड़ा है। सब स्वच्छ है। फिर होश आता है, नींद टूटी, नशा उतरा, चारों तरफ देखता है। शायद वह भी यही कहे कि यह होश तो बड़ी बुरी बात है। बेहोशी में तो सब साफ-सुथरा था, होश में सब गंदा हुआ जाता है।
तुम भीतर बेहोश पड़े हो। वहां जन्मों-जन्मों में कितने मकड़ियों के जाले भर गए हैं, उसका तुम्हें पता नहीं है। वहां कितना कूड़ा-करकट इकट्ठा हो गया है। शरीर का तो तुम ऊपर से स्नान भी कर लेते हो, भीतर का स्नान तो तुम्हें पता ही नहीं। उस स्नान का नाम ही तो ध्यान है। जब तुम भीतर थोड़े जागोगे, तो तुम्हें बहुत सी बातें दिखाई पड़ने लगेंगी।
तुम आए तो थे मेरे पास शांति खोजने, लेकिन पहले तो तुम्हें अपनी अशांति से परिचित होना होगा। क्योंकि अशांति से परिचित होना शांति की तरफ बुनियादी कदम है। अपने रोग को ठीक से जान लेना आधा निदान है और आधी चिकित्सा है। और निदान ठीक से हो जाए कि रोग क्या है, तो चिकित्सा हो ही गई। चिकित्सा तो गौण बात है। वह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।
इसलिए अगर तुम जाओगे, कोई निदान करने वाला डाक्टर हो, तो उसकी फीस बहुत होगी। फिर प्रिस्क्रिप्शन तो कोई भी केमिस्ट दे देता है, उसमें कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है। एक दफा पक्का पता चल जाए; बीमारी क्या है, फिर सब हल हो जाता है। असली सवाल पक्का पता चलने का है कि बीमारी क्या है? वह पता न चले, तो केमिस्ट की दुकान पर लाखों दवाएं रखी हैं, वे किसी काम की नहीं हैं।
तुम्हें मैं धीरे-धीरे-धीरे तुम्हारी बीमारी से परिचित कराता हूं।
भय है, अशांति है, क्रोध है, लोभ हैं, मोह हैं, सब तुम्हें घेरे हैं। और तुम उनको दबा कर बैठे हो। उनका दावानल तुम्हारे नीचे जल रहा है। उसको दिखाना पड़ेगा तुम्हें। जब तुम उसे पूरी तरह देखोगे, तभी तुम छलांग लगा कर उसके बाहर निकलोगे।
शांत होना हो, अशांति जाननी जरूरी है। अभय को उपलब्ध होना हो, भय से परिचित होना जरूरी है। स्वस्थ होना हो, तो स्वस्थ होने का एक ही उपाय है कि बीमारी से ठीक से परिचित हो जाओ।
और मजा यह है कि शरीर की बीमारी से परिचित होने पर इलाज की अलग जरूरत पड़ती है। लेकिन मन की बीमारी कुछ ऐसी बीमारी है कि परिचित होना ही इलाज है। जो व्यक्ति ठीक से अपने मन के प्रति जाग गया, इलाज हो गया। वहां निदान और औषधि दो नहीं हैं। वहां निदान ही औषधि है।

छठवां प्रश्नः आपने कहा है, जब तक मिटना है, खोना है, जीवन का परिवर्तन है, तब तक होना, शाश्वत होना संभव नहीं है। अभी हम हैं आपके सामने, वह क्या एक लंबा सपना है?

तुम्हारी तरफ से लंबा सपना है, मेरी तरफ से नहीं। तुम्हारे लिए सपने
से ज्यादा नहीं है। क्योंकि तुम सोए हुए हो। तुम जागोगे, तभी सपना टूटेगा। तुम जाग कर मुझे देखोगे तो तुम कुछ और ही पाओगे। तुम सोकर मुझे देखते
हो, तो कुछ और ही पाते हो। तुम जाग कर मुझे सुनोगे, तुम्हें कुछ और ही सुनाई पड़ेगा। तुम सोए-सोए मुझे सुनते हो, तुम्हें कुछ और ही सुनाई पड़ता है। तुम्हारी नींद बीच में खड़ी है एक पर्दे की तरह। और तुम्हारी नींद हर चीज को विकृत करती है।

तुम्हारे लिए तो एक सपना है। लेकिन चाहो, और जागना चाहो, तो तुम्हारे लिए भी सत्य हो सकता है।
बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों की कथाएं कही हैं। उसमें उन्होंने कहा है
कि मैं जब अज्ञानी था तब एक बुद्धपुरुष के पास गया था। मैंने झुक कर उनके चरण छुए। मैं उठ कर खड़ा भी न हुआ था कि मैं अचंभे से भर गया क्योंकि उन्होंने भी झुक कर मेरे चरण छुए। मैं घबड़ा भी गया, भयभीत भी हो गया कि यह तो पाप है कि बुद्धपुरुष मुझ अज्ञानी के चरण छुएं?
मैंने उनसे कहाः रुकिए, रुकिए! यह आप क्या करते हैं? लेकिन मैं रोक भी
न पाया और मैंने उनसे पूछा कि मैं अज्ञानी हूं, आपके पैर छूता, समझ में आती है बात; आप परम ज्ञानी--आप मेरे पैर क्यों छूते हैं?
तो उन बुद्धपुरुष ने मुझसे कहा था कि यह तेरी भूल है। यह तेरा सपना है
कि तू समझता है तू अज्ञानी है। जिस दिन मेरा सपना मेरे लिए टूट गया, उसी दिन मेरे लिए सबका सपना टूट गया। मैं तो तेरे भीतर उस प्रकाश को देखता हूं, जिसको अज्ञान ने कभी घेरा नहीं। तू भ्रांति में पड़ा है। लेकिन तेरी भ्रांति तेरी है, मेरी नहीं। किसी दिन तू जागेगा तब तेरी भ्रांति भी टूट जाएगी। तब तू समझेगा कि मैंने तेरे चरण क्यों छुए थे।
निश्चित ही, जो मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम्हारे लिए तो एक सपना है, एक मधुर सपना। सुखद है, सुनना प्रीतिकर है; लेकिन यह जागरण भी बन सकता है। मैं इसीलिए बोल रहा हूं। इसलिए नहीं कि तुम्हें एक सुखद सपना चलता रहे। मैं तो इसीलिए बोल रहा हूं ताकि तुम्हारी नींद में आवाज अगर पहुंच जाए, तो तुम जाग जाओ।
मैं तो इस तरह बोल रहा हूं, जैसे अलार्म घड़ी बोलती है। वह तुम्हारी नींद में सपना देने के लिए नहीं। कभी तुमने ख्याल किया? पांच बजे उठना है तुम अलार्म भर कर सो गए हो, दो घटनाएं संभव हैं। एक तो घटना यह है कि अलार्म घड़ी को तुम सुन लो, जाग जाओ। दूसरी घटना यह है कि तुम अलार्म घड़ी के आस-पास भी एक सपना बुन लो। और करवट लेकर सो जाओ। अक्सर ऐसा होता है कि जब अलार्म की घंटी बजती है, तब तुम एक सपना देखते हो कि मंदिर में बैठे हैं, घंटा बज रहा है। तुमने अलार्म घड़ी के बीच, अपने बीच एक सपना खड़ा कर लिया। अब कोई डर न रहा। अलार्म घड़ी को तुमने गलत कर दिया। अब कोई भय नहीं है। अब वह तुम्हें उठा न सकेगी। तुमने उसे अपने सपने में ही समाविष्ट कर लिया। अब तुम सपना देख रहे हो कि मंदिर में घंटा बज रहा है। लोग पूजा कर रहे हैं। जब तक वह घड़ी अलार्म बजती रहेगी, तब तक तुम सपना देखते रहोगे। फिर घड़ी बंद हो गई, सपना बंद हुआ। करवट लेकर तुम गहरी नींद में सो गए। तुमने घड़ी को व्यर्थ कर दिया।
मैं तो ऐसे ही बोल रहा हूं जैसे अलार्म घड़ी। मेरी तरफ से तो कोशिश यही
है कि तुम जागो। तुम्हारी तरफ से बहुत संभावना यह है कि तुम एक सपना देखोगे। तुम मुझे भी अपने सपने में सम्मिलित कर लोगे। तुम मेरे शब्दों को भी अपने सपने में समाविष्ट कर लोगे। तुम करवट लेकर फिर सो जाओगे।
लेकिन अगर सौ में से एक भी जाग जाए, तो भी श्रम सार्थक है।

आखिरी सवालः दादू ने दादू होने के बाद कहा है, पिव पिव लागी प्यास। क्या दादू ने दादू होने के पहले भी कहा था, पिव-पिव लागी प्यास?

दादू दादू ही न होते, अगर पहले न कहा होता। "पिव पिव लागी प्यास"--यही रटन तो दादू को दादू बना दी। इसी रटन ने, इसी प्यास ने, तो इसी पुकार ने तो परमात्मा तक पहुंचाया। दादू तो पहले ही कहे हैं, तभी दादू बने हैं। अगर पहले न कहा होता, तो दादू का जन्म ही न होता। वह तो हमने पीछे सुना है, जब दादू दादू हो गए।
इसे थोड़ा समझ लेना। दादू ने तो पहले ही कहा है, हमने पीछे सुना है। दादू ने तो प्यास का जीवन ही जीया है, तभी तो तृप्ति का क्षण आया। रोए, तभी संतुष्टि। लेकिन हमें तब नहीं सुनाई पड़ा, जब दादू रो रहे थे। वह रोना तो उनका निजी था, एकांत में था। वह तो उनका अपना था। हमने तो तभी सुना, जब दादू हो गए; जब उनका प्रकाश-स्तंभ प्रकट हुआ।

मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह मैंने अपने होने के बहुत पहले बहुत बार अपने से कहा है। उस दिन तुमसे नहीं कहा था, उस दिन तुम सुनते भी नहीं। आज भी तुम सुन लो, तो बहुत है। उस दिन तो तुम सुनते ही कैसे! पर मैंने बहुत बार उसे अपने से कहा है, तभी वह घड़ी आई, जहां जागरण हुआ। और अब मैं तुमसे कह सकता हूं।
बढ़ने दो रटन को, प्यास को, सागर दूर नहीं है। बस, प्यास की कमी ही एकमात्र दूरी है। उतरने दो तुम्हारे हृदय में भी इस रटन को--"पिव पिव लागी प्यास"--और मंजिल दूर नहीं है। मंजिल बिल्कुल आंख के सामने है। थोड़ी सी आंख खोलनी है। थोड़ी सी आंख खोल कर देखनी है। फासला नहीं है कि यात्रा करनी हो। तुम तीर्थ में ही खड़े हो, मगर शराब पीए खड़े हो।
मैंने सुना है, एक शराबी एक रात अपने घर आया। ज्यादा पी गया था। पहचान में नहीं आता था, अपना घर कौन सा है? पुराने अभ्यासवश पहुंच तो गया, पैर चला कर ले गए, लेकिन द्वार पर खड़े होकर सोचने लगा यह घर मेरा! समझ में नहीं आता कभी देखा हो। दरवाजा पीटने लगा। उसकी मां बाहर निकल कर आ गई। उसने उस मां के पैर पकड़ लिए और कहा कि ऐसा कर; मुझे मेरे घर पहुंचा दे। मेरी मां मेरी राह देखती होगी। वह मां उसे समझाने लगी कि नासमझ मैं तेरी मां हूं। वह कहने लगाः मुझे समझाने से कुछ न होगा, मुझे बातों में मत उलझाओ। मुझे मेरे घर पहुंचा दो। मेरी बूढ़ी मां मेरी राह देखती होगी।
पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। लोग हंसने लगे। लोग हैरान हुए। लोग उसे समझाने लगे, यही तेरा घर है। जितना लोग समझाने लगे उतना ही वह शराबी जिद करने लगा कि अगर यह मेरा ही घर होता तो किसी को समझाने की जरूरत ही क्या थी, मैं खुद ही समझ लेता। क्या मुझे अपना घर पता नहीं? क्या तुमने मुझे इतना मूढ़ समझा है? मैं पागल हूं?
एक दूसरा शराबी जो यह सब बात सुन रहा था, वह बैलगाड़ी जौत कर आ गया। और उसने कहाः तू बैठ; मैं तुझे तेरे घर ले चलता हूं। उसकी मां ने उसके पैर पकड़ लिए कि तू इसकी गाड़ी में मत बैठ, अन्यथा घर से बहुत दूर निकल जाएगा। और यह भी पीए है। मगर कौन सुने!
तुम घर के सामने ही खड़े हो। इसलिए जो गुरु तुमसे कहते हों, बैठो हमारी गाड़ी में, हम तुम्हें तीर्थयात्रा पर ले चलते हैं, जरा सम्हल कर बैठना। घर से दूर निकल जाओगे। वे भी पीए बैठे हैं।
मैं तुम्हें किसी यात्रा पर नहीं ले जा रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, तुम जाग कर देखो। तुम जहां खड़े हो, वह तुम्हारा घर है। यह अस्तित्व तुम्हारा घर है। चारों तरफ परमात्मा ने तुम्हें घेरा है। उसके अतिरिक्त और तुम्हें कोई भी घेरे हुए नहीं है। उसी की हवाएं हैं, उसी का आकाश है, उसी की पृथ्वी है, उसी के तुम हो। सब उसी का खेल है।
लेकिन प्यास जगे, तो उसी प्यास में से दर्द, पीड़ा उठेगी। उसी पीड़ा में
से होश आएगा। उसी होश में से सुरति जागेगी। गूंजने दो तुम्हारे हृदय में यह धुन--"पिव पिव लागी प्यास!"

आज इतना ही।